
भगवान् श्रीकृष्ण
स्वामी शिवानन्द

भगवान श्रीकृष्ण

Lord Krishna, His Lilas and Teachings

का हिन्दी अनुवाद

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनुवादिका

सुश्री चन्द्रावती सिंह

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय शिवानन्दनगर- २४९ १९२

जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dishq.orgप्रथम

हिन्दी संस्करण- १९६०

पंचम हिन्दी संस्करण -२०१६

(१००० प्रतियाँ)

ॐ द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट

ISBN 81-7052-118-1
HS 227

PRICE: ₹130/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए

स्वामी पद्यनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त

फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर- २४९ १९२,

जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड में मुद्रित।

For online orders and Catalogue visit: diabooks.org

जगद्‌गुरु तथा

वृन्दावन

के

मुरलीमनोहर

भगवान्‌ श्रीकृष्ण

के श्रीचरणों में

समर्पित

ॐ

आनन्द कुटीर,
ऋषिकेश

मधुर आत्मन् ।

भगवान् कृष्ण षोडश कला से युक्त पूर्णावतार हैं। उनके उपदेशों के हर शब्द तथा उनके जीवन के हर कर्म मानव-जाति के लिए अपूर्व सन्देशों से पूर्ण हैं।

उद्धव के प्रति भगवान् के उपदेशों का अध्ययन कीजिए। श्रीमद्भागवत-अमृत का पान कीजिए। उनकी महिमा का गायन कीजिए। उनके महान् मन्त्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप कीजिए। उनके प्रति पूर्ण आत्मार्पण कीजिए। आप शीघ्र ही उनके साथ सायुज्यता को प्राप्त करेंगे!

स्वामी शिवानन्द

प्रकाशक की ओर से

षोडश कलावतार भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा से कौन परिचित नहीं है। ईश्वरत्व का जितना निखार भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन में प्रकट हुआ, उतना अन्य किसी भी व्यक्तित्व में प्राप्त करना सम्भव नहीं है। उनका गीतोपदेश जगत् के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम है। भगवान् के हर शब्द तथा हर कर्म मानव जाति के लिए शाश्वत सन्देश रखते हैं। उनकी लीला में वह अमृत सरिता प्रवाहित हो रही है, जिसमें अवगाहन कर मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त कर सकता है।

जनता के कलि-सन्तप्त जीवन में कृष्ण-लीला-रूपी सुधा का संचार करने के लिए ही परम कारुणिक श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने भगवान् श्रीकृष्ण की बाल लीला तथा उनके उपदेशों को इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक से सभी प्रकार के मनुष्य प्रेरणा, शक्ति एवं सान्त्वना प्राप्त करेंगे। इस पुस्तक का दैनिक स्वाध्याय शुभ तथा मंगलकारक है। इसके उपदेशों पर चिन्तन तथा मनन करने से मनुष्य उस धाम को प्राप्त कर सकता है "यद्गत्वा न निवर्तन्ते"- जहाँ से पुन: इस नश्वर जगत् में लौटना नहीं पड़ता।

अनुवादिका सुश्री चन्द्रावती सिंह को धन्यवाद देते हैं जिनकी गुरु-सेवा के फल-स्वरूप यह अमूल्य रत्न हम जनता को प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण के अनुपम आशीर्वाद आप सभी प्राप्त करें।

- प्रकाशक

अनुवादकीय

भगवान् की पावन लीला का रहस्य सन्त-महापुरुषों को ही विशेषतः अवगत है। सन्तशिरोमणि शुकदेव जी ही भगवद्-भक्ति के रस से सुपरिचित हैं। उसी प्रकार सद्गुरुदेव शिवानन्द जी महाराज की लेखनी द्वारा हम भगवान् की लीला का अधिकाधिक रहस्य जान सकते हैं; क्योंकि वे सदा कृष्ण-प्रेम में गोते लगा रहे हैं तथा '**वासुदेवः सर्वमिति** — यह सब वासुदेव ही है' के विश्वात्म चैतन्य में परमानन्द का उपभोग कर रहे हैं।

अतः मैंने श्रीकृष्ण-लीला-सम्बन्धी अंगरेजी पुस्तक को जनता- जनार्दन की सेवा के लिए हिन्दी में अनूदित किया है। मुझे आशा एवं विश्वास है कि हिन्दी भाषा-भाषी जनता मेरे इस विनम्र प्रयास का हार्दिक स्वागत करेगी तथा भगवत्प्रेम की सरिता बहाने में सहायक सिद्ध होगी।

मैंने अनुवाद को सरल तथा स्वाभाविक बनाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। मैं भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना करती हूँ कि उनकी अपार कृपा से इस पुस्तक के सभी पाठकों में अपूर्व भगवत्प्रेम का जागरण हो तथा वे अमृत-पथ के धीर पथिक बने ।

-चन्द्रावती सिंह

एकश्लोकी भागवतम्

आदौ देवकिदेविगर्भजननं गोपीगृहे वर्धनं
मायापूतनजीवितापहरणं गोवर्धनोद्धारणम् ।
कंसच्छेदनकौरवादिहननं कुन्तीसुतापालनं
एतद्भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम् ।।

प्राचीन काल में भगवान् श्रीकृष्ण ने देवकी के गर्भ से जन्म धारण किया, वे गोपी यशोदा के गृह में पाले-पोषे गये। उन्होंने मायारूपिणी पूतना को मारा, गोवर्धन को धारण किया, कंस तथा कौरवों का हनन किया और कुन्ती के पुत्रों की रक्षा की। यही भागवतपुराण का सारांश है जो श्रीकृष्ण-लीला-रूपी अमृत से पूर्ण है।

चतुःश्लोकी भागवतम्

ज्ञानं परमगु मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्य तदंगं च गृहाण गदितं मया ।।

भगवान् श्रीकृष्णण उद्भव से कहते है-

हे उद्धव) मुझसे इस परमगुह्य ज्ञान का श्रवण करो जो विज्ञान से तथा उसके अंगों से समन्वित है।

यावानहं यथाभावी यदूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ।।

मेरी कृपा से तुम मेरे तत्वज्ञान तथा उसके रूप का साक्षात्कार करो कर्मों के रहस्य को समझो।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽयशिष्येत सोऽस्म्यहम् ।।१।।

सृष्टि होने से पहले मैं ही था। अन्य कुछ भी सत् या असत् न था । प्रलय के पश्चात् भी जो शेष बचा रहता है, वही मैं हूँ।

ऋतेऽर्थ यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥२॥

उसी को माया समझो, जिसका कुछ भी उद्देश्य न हो, जिसको आत्मा में प्राप्त नहीं किया जा सके तथा जो ज्योति एवं अन्धकार की भाँति मिथ्या हो ।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्यहम् ।।३ ।।

जिस तरह महाभूत संयुक्त हैं तथा साथ ही एक-दूसरे से पृथक-पृथक भी उसी प्रकार मैं समस्त जगत् को परिव्याप्त कर रहा हूँ, साथ ही उससे पृथक भी हूँ।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ।।४।।

साधक को अन्वय व्यतिरेक की विधि से उस वस्तु को जान लेना चाहिए जो सदा तथा सर्वदा स्थित है।

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ।।

परम समाधि के द्वारा इस सत्य का अनुभव करो जिससे तुम मायिक वस्तुओं से मोहित न हो जाओ।

श्रीकृष्ण-वन्दना

(गोपालपूर्वतापिन्युपनिषद्)

नमो विश्वस्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ||१ ॥

मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण को, गोविन्द को नमस्कार करता हूँ जो इस विश्व के रूप में प्रकट हैं, जो इसकी स्थिति तथा प्रलय के हेतु हैं, जो इस विश्व के ईश्वर हैं, जो विश्व-रूप ही हैं।

नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे ।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २ ॥

उन श्रीकृष्ण अथवा गोविन्द को नमस्कार है जो गोपियों के स्वामी हैं, जो ज्ञान तथा परमानन्द के स्वरूप हैं।

नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने ।
नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ||३||

कमल-नेत्र भगवान् श्रीकृष्ण, लक्ष्मीपति को नमस्कार है जो पद्मों की माला से विभूषित हैं तथा जिनकी नाभि से कमल की उत्पत्ति है।

बर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः || ४ ||

उस गोविन्द अथवा राम को नमस्कार है जो लक्ष्मी के मनः सरोवर में हंस के समान हैं, जिनका मोर मुकुट मनुष्यों के हृदय को आह्लादित करता है तथा जो अपूर्व मेधावी हैं।

कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने ।
वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः || ५ ||

उन अर्जुन सारथि को नमस्कार है, जो केशी तथा चाणूर के विनाशक हैं, जो कंसवंश के संहारक है, जो वृषभध्वज भगवान् शिव द्वारा वन्दित है।

वेणुवादनशीलाय गोपालायाहिमर्दिने ।
कालिन्दीकूललीलाय लोलकुण्डल धारिणे ||६||

गोपाल श्रीकृष्ण को नमस्कार है, जिन्होंने कालिय के मद को नष्ट किया, जो अपनी सुरीली बाँसुरी से श्रोताओं के हृदयों को आह्लादित करते हैं, जो कुण्डल से विभूषित हैं तथा जो कालिन्दी (यमुना) के तट पर विहार करते हैं।

वल्लवीवदनांभोजमालिने नृत्यशालिने ।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ७ ॥

मैं उन श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ जो सुन्दर कमल-रूपी बदनों वाली गोपियों से आवेष्टित हो कर उन्हें अपने नृत्य द्वारा आह्लादित करते हैं तथा जो प्रणतपालक हैं।

नमः पापप्रणाशाय गोवर्धनधराय च ।
पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे ॥८ ॥

मैं उन गोवर्धनधारी, पापप्रणाशक भगवान् को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने पूतना का वध किया तथा तृणावर्त का संहार किया।

निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ।। ९ ।।

उन परम अद्वितीय श्रीकृष्ण को नमस्कार है जो सदा शुद्ध हैं, जो मोह से रहित हैं, जो निष्कल हैं तथा अशुद्ध मन वाले व्यक्तियों के शत्रु हैं।

प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर ।
आधिव्याधिभुजंगेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ।। १० ।।

हे प्रभो! हे परमेश्वर! हे परमानन्द। मुझ पर प्रसन्न होइए। मानसिक एवं शारीरिक क्लेश-रूपी सर्प ने मुझे डस लिया है। मेरा उद्धार कीजिए ।

श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर ।
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ।। ११ ।।

हे श्रीकृष्ण, रुक्मिणीपति, हे जगदगुरु, हे गोपियों के मन को हरने वाले, संसार सागर से मेरा उद्धार कीजिए।

केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन ।
गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव ।। १२ ।।

हे केशव, हे क्लेशहरण, हे नारायण, हे जनार्दन, हे गोविन्द, हे परमानन्द, हे लक्ष्मीपति, मेरा उद्धार कीजिए।

श्रीकृष्णकर्णामृतम्

लसद्बर्हापीडं ललितललितस्मेरवदनं

भ्रमत्क्रीडापांगं प्रणतजनतानिर्वृत्तिपदम् ।

नवाम्भोदश्यामं निजमधुरिमाभोगभरितं परं
देवं वन्दे परिमिलितकैशोरकरसम् ||१ ||

मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण की बन्दना करता हूँ जिनका मुकुट मयूरपंख से सुशोभित हैं, जिनका बदन प्रेमपूर्ण मुस्कान से दीप्त है, जिनकी आँखों से कृपा--दृष्टि संचरित होती है, जिनका शरीर घनश्याम है, जिनमें किशोरावस्था का शुद्ध सौन्दर्य है, जो माधुर्य-रस से पूर्ण हैं, जो अमृतत्व प्रदान करते हैं तथा प्रणत जनों को संसार से मुक्त करते हैं।

मनसि मम सन्निधत्तां मधुरमुखा मधुरापांगा।
करकलितललितवंशी कापि किशोरकृपालहरी ||२||

भगवान् श्रीकृष्ण का वह मधुर मुख, जो कृपा से पूर्ण है, जिसका सौन्दर्य अनिर्वचनीय है; वह किशोर श्रीकृष्ण जिनके हाथ में ललित वंशी है, सदा मेरे हृदय में विराजमान हो ।

सार्धं समृद्धैरमृतायमानैराध्मायमानैर्मुरलीनिनादैः ।
मूर्धाभिषिक्तं मधुराकृतीनां बालं कदा नाम विलोकयिष्ये ||३||

मैं कब उन किशोर प्रभु के दर्शन करूंगा जो सौन्दर्य के स्वरूप हैं, जो अपनी बाँसुरी को कलात्मक ढंग से बजाते हैं तथा मधुर संगीत का सृजन करते हैं, जो कानों को बहुत प्रिय है तथा जो अमृतत्वप्रदायक है।

कुन्ती की प्रार्थना

(भागवत: स्कन्द १, अध्याय ८)

नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ।

अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् । । १ ।।

हे पुरातन पुरुष परमात्मा! मैं आपको नमस्कार करती हूँ, आप प्रकृति से परे, अलक्ष्य है तथा सभी भूतों के अन्तर्बाह्य स्थित हैं।

मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाऽधोक्षजमव्ययम् ।
न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ।। २ ।।

मैं अज्ञ स्त्री हूँ, मैं किस प्रकार आप अव्यय परमात्मा की पूजा कर सकती हूँ? आप तो माया के पर्दे से आच्छन्न हैं। जिस प्रकार नाटक में भाग लेने वाले नट अपने नाट्य से एकात्म नहीं होते, उसी प्रकार अज्ञानी जन आपको देख नहीं पाते।

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ।।३ ॥

शुद्ध चित्त वाले परमहंसों के लिए भी आप दुर्लभ हैं। तो फिर हम स्त्री-जन किस प्रकार आपके लिए भक्तियोग का विधान कर आपके दर्शन प्राप्त कर सकती हैं?

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ।।४ ।।

मैं बारम्बार श्रीकृष्ण को नमस्कार करती हूँ जो वासुदेव हैं, देवकीनन्दन हैं, नन्द गोप कुमार तथा गोविन्द अथवा गौओं के पालक हैं।

नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ।
नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥५ ॥

आप परमात्मा को नमस्कार है, आप पंकज-नाम है, अर्थात् आपकी नाभि से पंकज की उत्पत्ति हुई थी, आप कमल-पुष्पों की माला से सुशोभित है, नमस्कार है आपको। आपकी आँखें कमल के समान है तथा आपके चरण सुन्दर पद्म के समान है।

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ।।६।।

हम समय-समय पर विपत्तियों को प्राप्त करें, जिससे हे जगद्गुरु, हम आपके दर्शन प्राप्त कर सकें, जिससे पुनः ससार का दर्शन न करना पड़े अर्थात् हम अमृतत्व प्राप्त कर लें।

जन्मैश्वर्य श्रुतिश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।

नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिंचनगोचरम् ।।७।।

जिस व्यक्ति की दृष्टि जाति, धन, विद्वत्ता तथा ऐश्वर्य के मद से आच्छन्न है, वह आपकी स्तुति के योग्य नहीं, आप तो अकिंचन तथा निष्पाप जनों के लिए ही सुलभ हैं।

नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ।

आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥८ ॥

आप ही अकिंचनों का धन हैं, मैं आपको नमस्कार करती हूँ; आप माया के गुणों से निर्लिप्त हैं। मैं आपकी पूजा करती हूँ; आप सदा आत्मा में ही रमण करते हैं, आप शान्ति तथा कैवल्य मोक्ष के प्रभु हैं।

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम्

समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ।। ९ ।।

आप काल हैं, आप सबके ईश्वर हैं, आप आदि तथा अन्त से रहित हैं, आप सर्वत्र समरूप से विचरण करते हैं, अशान्ति तो भूत पदार्थों में ही है।

न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं

तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् ।

न यस्य कश्चिहयितोऽस्ति कर्हिचिद्

द्वेष्यश्च यस्मिन् विषमा मतिर्नृणाम् ।। १० ।।

हे प्रभु! आप क्या करने जा रहे हैं, इसे कोई नहीं जानता, फिर भी आप साधारण व्यक्ति के समान लीला करते हैं। आपके लिए न तो कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय। विभिन्न लोग आपको विभिन्न रूपों से समझते हैं।

प्रह्लाद की प्रार्थना

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः

सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ।

नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः

किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ।। १ ।।

मैं कैसे उन हरि की स्तुति करूँ, जिनकी ब्रह्मा और अन्य देव गण ऋषि तथा सिद्धों के साथ सत्त्व से परिप्लावित मन से युक्त हो, प्रार्थना प्रवाहों से स्तुति में निरत रहते हुए भी आराधना करने में असमर्थ हैं? मैं तो असुर-कुल में उत्पन्न हूँ।

मन्ये धनाभिजनरूपतपा श्रुतौज-
स्तेजः प्रभाववलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवंति परस्य पुंसो
भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ।। २ ।।

मेरी समझ में तो धन, उन्नत कुल में जन्म, शारीरिक सौन्दर्य, तपस्या, विद्वत्ता, शक्ति, ज्ञान तथा योगाभ्यास के द्वारा भी श्री हरि की कृपा को प्राप्त करना सम्भव नहीं; वह श्री हरि भक्ति मात्र से ही गजेन्द्र पर प्रसन्न हो गये थे।

विप्रद्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥ ३ ॥

वह चाण्डाल, जिसने मन, वचन तथा कर्म से अपने धन तथा जीवन को भगवान् के चरणों में लगा दिया है, उस ब्राह्मण से श्रेष्ठ है जो बारहों गुणों से सम्पन्न होते हुए भी भगवान् के चरण-कमलों में प्रीति नहीं रखता। वह चाण्डाल सबको शुद्ध बनाता है, परन्तु वह ब्राह्मण अभिमान से पूर्ण हो ऐसा नहीं कर पाता ।

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभ पूर्णो
मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ।
यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ।।४।।

वह प्रभु, जो सदा अपनी आत्मा में ही परितृप्त हैं, तुच्छं बुद्धि वाले व्यक्तियों की पूजा के लिए लालायित नहीं हैं; परन्तु करुणा तथा दया के कारण वह भक्त पर अनुग्रह करने के लिए उसके द्वारा अर्पित वस्तुओं को ग्रहण कर लेते हैं। मुख पर जो कुछ भी शोभावर्धक लेप लगाया जाये, वह वैसा ही दर्पण में प्रतिबिम्बित हो जाता है; उसी प्रकार भक्ति द्वारा भक्त अपना ही उद्धार करता है।

नाहं विभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य

जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशंकुकर्णा-
न्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ।।५ ।।

हे महाप्रभु! मैं आपके भयंकर रूप से भयभीत नहीं हूँ, आपका मुख विशाल है, जिह्वा विकराल है, आँखें सूर्य की तरह विभासित हैं, भौंहें भयानक हैं, दाँत कराल हैं, आप अंतड़ियों की माला पहने हैं, आपकी गरदन रुधिर से स्नात है। आपके कर्ण खडे हैं, आपका गर्जन दिग्पालों को विकम्पित करने वाला है, आपके नख शत्रुओं को विदीर्ण करने में समर्थ हैं।

त्रस्तोस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र-
संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं
प्रीतोऽपवर्गमरणं ह्वयसे कदा नु ।।६।।

परन्तु हे कृपणवत्सल प्रभु! मैं इस भयानक संसार-चक्र से भयभीत हूँ जिसके हे मध्य अपने कर्म से विवश हो कर मैं पड़ा हुआ हूँ। हे परम पूज्य प्रभु, आप कब मुझे अमृतत्वधाम में अपने निकट बुला लेंगे ?

यस्मात्प्रियाप्रियवियोगसंयोगजन्म-
शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ।
दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं
भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥७॥

मैं विभिन्न योनियों में जन्म ग्रहण से प्राप्त शोकाग्नि से भयभीत हैं, प्रिय वस्तुओं से विरह तथा अप्रिय के मिलने से प्राप्त दुःख, राग-द्वेष के द्वन्द्वों से दोलायमान जीवन, जहाँ शोक की दवा शोक ही है, इस दयनीय जीवन से भयभीत हैं; फिर भी मैं अज्ञानी हो इस संसार में भ्रमण कर रहा हूँ। हे पूर्ण प्रभु! कृपया मेरी सेवा को स्वीकार कर इस दारुण संसार से मेरा उद्धार करें।

माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः
कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ।
छन्दोमयं यदजयार्पितषोडशारं
संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः ॥८ ॥

प्रकृति अपनी कर्ममय अचिन्त्य शक्ति द्वारा काल की सहायता से आपकी अध्यक्षता में सृष्टि करती है। प्रकृति असीम बल से सम्पन्न हो वैदिक कर्मों की प्रवृत्ति रखती हुई सोलह अरों वाले संसार-चक्र की रचना करती है। हे अजन्मा प्रभु! आपकी कृपा के बिना कैसे कोई इस चक्र से मुक्ति प्राप्त कर सकता है ?

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषोऽज्ञ
आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमा विरिञ्चात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण
कालात्मनोऽपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ।।९।।

अतः मैं उन विषय सुखों की इच्छा नहीं करता जिनके लिए अज्ञानी जन लालायित रहते हैं; जैसे दीर्घायु, धन, यश, इन्द्र-पद, ब्रह्म-पद आदि; न तो मैं अणिमा आदि सिद्धियों की ही कामना करता क्योंकि ये सब विषय कालरूप प्रभु आपसे अपहृत हो जायेंगे, अतः मेरी प्रार्थना है कि हे प्रभु, आप अपने सम्पर्क में मुझे बनाये रखें।

कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः
क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्-
कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ।। १० ।।

उन सुखोपभोगों से क्या लाभ जो कर्णों को ही प्रिय हैं; परन्तु वास्तव में मृगजल की भाँति मिथ्या हैं? इस भौतिक शरीर से क्या लाभ जो रोगों का घर है ? ऐसा जानते हुए भी मनुष्य विरक्त नहीं होते तथा वे विषय-सुख की बूंदों से कामाग्नि को बुझाने का विफल प्रयत्न करते रहते हैं।

श्रीकृष्ण अष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः ।
वसुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः ।। १ ।।

श्रीवत्सकौस्तुभधरो यशोदावत्सलो हरिः ।
चतुर्भुजात्तचक्रासिगदाशंखाम्बुजायुधः ।। २ ।।

'देवकीनन्दनः श्रीशो नन्दगोपप्रियात्मजः ।
यमुनावेगसंहारी बलभद्रप्रियानुजः ।।३ ।।

पूतनाजीवितहरः शकटासुरभंजनः ।
नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः ||४ ||

नवनीतावलिप्तांगो नवनीतनटोऽनघः ।
नवनीतनवाहारो मुचुकुन्दप्रसादकः ।।५।।

षोडशस्त्रीसहस्रेशः त्रिभंगी मधुराकृतिः ।
शुकवागमृताब्धीन्दुर्गोविन्दो गोविदां पतिः ।। ६ ।।

वत्सवाटचरोऽनन्तो धेनुकासुरभंजनः ।
तृणीकृततृणावर्तो यमलार्जुनभंजनः ।।७।।

उत्तालतालभेत्ता च तमालश्यामलाकृतिः ।
गोपगोपीश्वरो योगी कोटिसूर्यसमप्रभः ॥८ ॥

इलापतिः परंज्योतिर्यादवेन्द्रो यदूद्वहः ।
वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः ।। ९ ।।

गोवर्धनाचलोद्धर्ता गोपालः सर्वपालकः ।
अजो निरंजनः कामजनकः कंजलोचनः ||१०||

मधुहा मथुरानाथो द्वारकानायको बली ।
वृदावनान्तसंचारी तुलसीदामभूषणः ।। ११ ।।

स्यमन्तकमणेर्हर्ता नरनारायणात्मकः ।
कुब्जाकृष्णाम्बरधरो मायी परमपूरुषः ।। १२ ।।

मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारदः ।
संसारवैरी कंसारिः मुरारिर्नरकान्तकः ।। १३ ।।

अनादिर्ब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः ।
शिशुपालशिरश्छेत्ता दुर्योधनकुलान्तकः ।। १४ ।।

विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः ।
सत्यवाक् सत्यसंकल्पो सत्यभामारतो जयी ।। १५ ।।

सुभद्रापूर्वजो विष्णुः भीष्ममुक्तिप्रदायकः ।

जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुनादविशारदः ।। १६ ।।

वृषभासुरविध्वंसी बाणासुरबलान्तकृतः ।

युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता बर्हिबर्हावतंसकः ।। १७ ।।

पार्थसारथिरव्यक्तो गीतामृतमहोदधिः ।

कालीयफणमाणिक्यरंजित श्रीपदाम्बुजः ।। १८ ।।

दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेन्द्रविनाशनः ।

नारायणः परंब्रह्म पन्नगाशनवाहनः ।।१९।।

जलक्रीडासमासक्तः गोपीवस्त्रापहारकः ।

पुण्यश्लोकस्तीर्थपादो वेदवेद्यो दयानिधिः ।। २० ।।

सर्वतीर्थात्मकस्सर्वग्रहरूपी परात्परः ।

एवं श्रीकृष्णदेवस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।। २१ ।।

कृष्णनामामृतन्त्राम परमानन्दकारकम् ।

अत्युपद्रवदोषघ्नं परमायुष्यवर्धनम् ।। २२ ।।

।। इति श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

परिचय

भगवान् श्रीकृष्ण

उन परम प्रभु भगवान् कृष्ण को नमस्कार है, जो सर्वान्तर्यामी हैं, जो सत्-चित्-आनन्द हैं, जो सर्वात्मा है, जो भक्त जनों के मोक्षदाता हैं, जो सबके आदि कारण हैं, जिन्होंने भक्तों एवं देवताओं को प्रमुदित करने तथा अधर्म का उच्छेदन कर धर्म की संस्थापना करने के हेतु मानव-रूप धारण किया है।

मैं उन परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार करता हैं, जिनसे यह रहस्यमय जगत् उत्पन्न हुआ, जिनमें यह संस्थित है तथा अन्त में जिनमें यह विलीन होगा। वे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण महाविष्णु के सभी अवतारों में सर्वोत्कृष्ट हैं। वे सभी अवतारों में अनुपम एवं शिरोमणि हैं। वे षोडश कलासम्पन्न पूर्ण अवतार हैं। वे सुप्रसिद्ध यादव वंशज तथा जगद्गुरु थे। वे प्रेमाधीश तथा मानव-प्रेमी थे। उनके दिव्य रूप ने आज भी भारत की आत्मा को प्रेम की स्निग्ध श्रृंखला में आबद्ध कर रखा है।

भागवत, महाभारत तथा विष्णुपुराण- सभी एक-स्वर से यह घोषित करते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के रूप की सुषमा एवं मधुरिमा की समता त्रैलोक्य में कोई नहीं कर सकता।

करयुग्म में वंशी धारण किये हुए उनके मनोहर रूप का पूजन होता है। यह वह रूप है जिस पर भारत में ही नहीं वरन् पाश्चात्य देशों में तथा अमरीका में भी असंख्य भक्त गण अपनी श्रद्धा एवं विशुद्ध प्रेम को न्योछावर करते हैं।

वे बौद्धिक एवं भावात्मक गुणों के साकार रूप थे। वे तत्कालीन युग के सर्वोच्च प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वे एक महान् ऐतिहासिक पुरुष थे। उनकी बाल-लीला सभी विचारशील व्यक्तियों के लिए असंख्य प्रत्यक्ष शिक्षाएँ हैं। उनका व्यक्तित्व भव्य तथा असाधारण था ।

भगवान् श्रीकृष्ण के सदुपदेशों के प्रत्येक शब्द तथा उनकी प्रत्येक क्रिया मानव जाति के लिए विविध प्रकार से महत्त्वपूर्ण निहितार्थ के श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट प्रत्यक्ष पाठ से आपूर्ण है।

सृष्टि के आरम्भ से ही भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना प्रचलित है। यह तो बद का ही एक अंग है; कोई नवीन सम्प्रदाय नहीं। भगवान् श्रीकृष्ण सारे भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय आराध्य देव बन गये हैं। भारत में ही नहीं, विदेशों में भी सहस्रों महिलाएँ उनकी आराधना करती हैं तथा उनके मन्त्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप करती हैं।

ज्ञान, भाव तथा कर्म में श्रीकृष्ण सर्वथा महान् थे। शास्त्रों ने इतना पूर्ण, इतना दिव्य, इतना सूक्ष्म तथा इतना श्रेष्ठ जीवन किसी अन्य का वर्णन नहीं किया जितना कि उनका ।

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण मानव रूप में प्रकट हुए थे तथापि उनका शरीर अप्राकृतिक तथा दिव्य था। न तो उन्होंने कोई जन्म ग्रहण किया और न वे काल-कवलित ही हुए। अपनी योग-माया के द्वारा ही वे प्रकट हुए तथा अन्तर्धान भी। इस रहस्य से केवल ऋषि, योगी तथा भक्त गण ही अवगत हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने इस घरा-धाम में अनेक लीलाएं कीं। उन्होंने अर्जुन का रथ हाँका। वे सर्वोत्तम राजनीतिज्ञ थे। वे संगीत कला में निपुण थे। उन्होंने नारद को वीणा की शिक्षा दी। उनकी बाँसुरी के संगीत ने

गोपियों के तथा सभी लोगों के हृदय को पुलकित कर दिया। वे नन्दग्राम तथा गोकुल में गोपाल थे। शैशवावस्था में ही उन्होंने अनेक अद्भुत कौशल प्रदर्शित किये, अनेक असुरों का संहार किया। माता को उन्होंने विश्वरूप-दर्शन कराया। उन्होंने रासलीला की जिसके रहस्य का ज्ञान केवल नारद, गौरांग, राधा तथा गोपियों-जैसे भक्तों को ही था। उन्होंने अर्जुन तथा उद्धव को योग, भक्ति तथा वेदान्त के परम रहस्य का उपदेश दिया। उन्हें चौसठ कलाओं में निपुणता प्राप्त थी। इन्हीं कारणों से वे षोडश कला-युक्त पूर्ण अवतार माने जाते हैं।

अवतार

विशेष परिस्थिति में विशेष कारण के हेतु ही अवतारों का प्रादुर्भाव होता है। जब कभी अधर्म की अधिकता होती है, जब कभी अधर्म के कारण अस्त-व्यस्तता तथा अव्यवस्था आने लगती है तथा लोगों का सुनिश्चित विकास अवरुद्ध हो जाता है, जब कभी स्वार्थपरता, क्रूरता एवं नृशंसता के द्वारा मानव समाज का सन्तुलन विकृत हो जाता है, जब कभी अधर्म का बोलबाला होता है, जब सामाजिक संस्थाओं की नींव जर्जरित हो उठती है तब धर्म के संस्थापन एवं शान्ति स्थापना के लिए अवतारों का प्रादुर्भाव होता है।

मानव के उत्थान के लिए ईश्वर का अवतरण ही अवतार है। संसार में सन्तुलन बनाये रखने के लिए हिरण्यगर्भ की एक किरण अतुल शक्ति ले कर इस भूलोक में अवतीर्ण होती है। अवतारों के कार्य तथा उनकी शिक्षाएँ मानो प्राणी पर विशेष आध्यात्मिक प्रभाव डालती हैं तथा उनके दिव्य प्रस्फुटन एवं आत्मसाक्षात्कार में सहायता पहुँचाती हैं।

अवतार मनुष्य की दिव्य प्रकति को अभिव्यक्त करने तथा कामुकता एवं अहंकारमय क्षुद्र भौतिक जीवन से उसे ऊपर उठाने के लिए ही आते हैं। भगवान् की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति ही अवतार कहलाती है। आवेश, अंश तथा कला-अवतार, ऋषि, मुनि, सिद्ध पुरुष, मसीहा, पैगम्बर आदि भगवान् की छोटी अभिव्यक्तियाँ हैं।

अवतार प्रायः अपने अन्तरंग साथियों के साथ ही अवतीर्ण होते हैं। भगवान् राम लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के साथ; भगवान् कृष्ण बलराम, देवताओं तथा ऋषियों के साथ तथा भगवान् सनक कुमार सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार के साथ प्रकट हुए।

श्री शंकर, रामानुज आदि कुछ आचार्य एवं आध्यात्मिक नेता के रूप में आते हैं। श्री चैतन्य की भाँति कुछ अवतार लोगों के हृदय में भक्ति-रस का संचार करने तथा उन्हें ईश्वरोन्मुख बनाने के लिए आते हैं; किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के समान पूर्ण अवतार तो तभी आते हैं जब संसार में चतुर्दिक् अशान्ति, अराजकता तथा आपत्ति छा जाती है।

अधिकांश अवतारों ने किसी एक कार्य-विशेष को ही सम्पादित किया; किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के कार्यकलाप तो बहुमुखी थे, अतएव वे पूर्ण अवतार कहलाये।

पुराण के श्रीकृष्ण

अग्नि, ब्रह्म, पद्म, ब्रह्मवैवर्त, विष्णु तथा श्रीमद्भागवत पुराण श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन करते हैं। ब्रह्म तथा पद्म-पुराण के कई अध्यायों में इसका वर्णन किया गया है। ब्रह्मवैवर्त, विष्णु तथा श्रीमद्भागवत पुराण के सम्पूर्ण ग्रन्थ अथवा स्कन्धों में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन है।

वैष्णव मत के उत्तरकालीन विकास में राधा-तत्त्व का महत्त्वपूर्ण भाग रहा। श्रीविष्णु तथा श्रीमद्भागवत पुराण में श्री राधा का कहीं उल्लेख नहीं है। पद्म तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में ही राधा-तत्त्व, राधा तथा उसकी सखियों की वास्तविक प्रकृति, उनके नाम, उनके रहस्यात्मक अर्थ तथा रासलीला में श्रीकृष्ण जी के साथ उनके सम्बन्ध इत्यादि का विशद् वर्णन है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीकृष्ण की आराधना में राधा-तत्त्व को विशेष महत्त्व दिया गया है। श्रीविष्णु तथा श्रीमद्भागवत-पुराण में भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनकी आराधना का दार्शनिक निरूपण किया गया है।

जीवन-चरित्र

भगवान् श्रीकृष्ण लीला-पुरुषोत्तम थे, योगेश्वर थे और थे प्रेम मूर्ति । भगवान् राम मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। वे एक आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श मित्र तथा आदर्श राजा थे। वे मनुष्य के सभी उच्चतम आदर्शों के साकार रूप ही माने जा सकते हैं। मानव प्राणी के शिक्षार्थ उन्होंने आदर्श गार्हस्थ्य जीवन यापन किया।

श्रीकृष्ण कर्मनिष्ठ पुरुष थे। वे ऐतिहासिक पुरुष थे तथा अनुचित को उचित में परिणत करने वाले थे। वे न्याय एवं धर्म के पक्षपाती थे। आततायियों से पीड़ितों का परित्राण करना ही उनकी नीति थी। उनमें अलौकिक शारीरिक शक्ति थी। वे ज्ञानी तथा जगद्गुरु थे।

वे स्वर्गिक संगीतज्ञ थे। वे योगेश्वर थे। वे अर्जुन तथा उद्धव के सखा थे। अर्जुन तथा उद्धव के प्रति योग, भक्ति तथा ज्ञान पर दिये गये उनके अमर उपदेश अद्वितीय हैं। वे अभी तक पाठकों के हृदय को स्पन्दित करते हैं तथा उन्हें आध्यात्मिक पथ की ओर प्रेरित करते हैं और उनके हृदय में शान्ति लाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण सदा के लिए सर्वश्रेष्ठ कर्मयोगी थे। उन्होंने ज्ञान ज्योति को जीवित रखा। वे ज्ञान तथा निष्काम कर्म की साक्षात् मूर्ति थे। इस भूलोक तथा स्वर्गलोक में जो भी श्रेष्ठतम, उच्चतम, पवित्रतम तथा सर्वाधिक सौन्दर्यमय, उत्कृष्ट एवं महान् था, उसका अपने जीवन में उन्होंने समावेश किया। वे गौ, गोपकुमार तथा गोपियों के सर्वस्व थे। वे निर्धनों तथा असहायों के मित्र तथा सहायक थे। वे एक अपूर्व प्रतिभाशाली पुरुष थे।

कंस की रंगशाला में उपस्थित मल्ल युद्ध करने वालों के लिए वे वज्र थे; फिर भी उनका हृदय सबसे अधिक कोमल था। वे कंस के लिए काल, गोपियों के लिए कामदेव, योगियों तथा भक्तों के लिए निरन्तर ध्येय

पदार्थ, मुनियों के लिए आनन्द-स्वरूप एवं परमगति तथा माता-पिता के लिए बालक थे। वे मन्मथ के भी साक्षात् मन्मथ थे।

भगवान् श्रीकृष्ण जगत्पति होते हुए भी नम्रता की मूर्ति थे। वे अर्जुन के सारथि बने। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अतिथियों के पाद प्रक्षालन का कार्य उन्होंने स्वेच्छा से अपने हाथों में लिया।

भागवत पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण इस धरा धाम पर कुल एक सौ पचीस वर्ष तक रहे।

विद्यार्थी जीवन

भगवान् श्रीकृष्ण ने अवन्तीपुर के गुरु सान्दीपनि से विद्या प्राप्त की। वे एक साधारण विद्यार्थी की भाँति अपने गुरु के पास रहे। वे नम्र, विनीत तथा आज्ञाकारी शिष्य थे। उन्होंने बहुत कठोर जीवन व्यतीत किया। अपने गुरु के लिए उन्होंने अरण्य से समिधाएँ एकत्र कीं। उन्होंने अपने सहपाठियों के हृदय में प्रेम का संचार किया। सुदामा, जो बाद में कुचेला के नाम से प्रसिद्ध हुए, भगवान् श्रीकृष्ण के सहाध्यायी थे।

श्रीकृष्ण में अलौकिक स्मरण शक्ति थी। कितना ही कठिन क्यों न हो, जिस विषय को वे एक बार श्रवण करते, वह सदा उनके स्मृति पटल पर अंकित रहता। चौंसठ दिन के स्वल्पकाल में ही उन्होंने चौंसठ कलाओं में पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। उनका शारीरिक बल अतुलनीय था। वे धनुर्विद्या तथा युद्ध-कौशल में भी पारंगत थे।

जब उनका विद्यार्थी जीवन समाप्त हुआ, तब गुरु की आज्ञा से वे पंचजन नामक सामुद्रिक दैत्य से गुरुपुत्र को मुक्त कर लाये जो उन्हें उठा ले गया था। श्रीकृष्ण ने पंचजन का वध कर उसका शंख पांचजन्य ले लिया।

दया की मूर्ति

भगवान् श्रीकृष्ण मुनियों के सम्मुख परब्रहम के रूप में, योगियों के सम्मुख परम तत्त्व के रूप में, गोपियों के सम्मुख कामदेव के रूप में, योद्धाओं के सम्मुख शूरवीर योद्धा के रूप में, वसुदेव-देवकी के सम्मुख नन्हें शिशु के रूप में, कंस के सम्मुख काल के रूप में तथा राजाओं के सम्मुख सम्राट् के रूप में अर्थात् विभिन्न व्यक्तियों की भावना के अनुसार विविध रूप में प्रतीत होते थे। विषय वे ही थे; किन्तु दर्शक के दृष्टिकोण के अनुसार वे विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होते थे।

गोपियों के अतीव प्रेम के कारण वे उनके घरों से छिप कर मक्खन खाया करते थे। इसलिए वे माखन चोर कहलाते थे; परन्तु वास्तव में तो वे भक्तों के कुत्सित भावों का हरण कर उनके मन को दिव्य भावों से पूरित कर देते हैं। बाल्यावस्था की माखन चोरी तो प्रेमी गोपियों को आहलादित करने के लिए उनकी एक प्रकार की लीला

मात्र थी। गोपिकाओं को श्रीकृष्ण जी की यह लीला बहुत ही प्रिय थी; अतः वे भगवान् के आगमन तथा उनके मक्खन के आस्वादन की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा किया करती थीं। भगवान् वास्तव में अपने भक्तों के हृदय को चुरा कर उन्हें संसार से उदासीन बनाते तथा उनके मन को अपने चरण-कमलों की ओर आकर्षित कर उन्हें चिरन्तन शान्ति एवं आनन्द में विभोर कर देते हैं। **'दासोऽहम्'** शब्द में 'दा' अक्षर का हरण कर अपने भक्तों को **'सोऽहम्'** मैं वही हूँ अथवा जीव को परमात्मा से ऐक्य की भावना— के महत्त्व की अनुभूति कराते हैं। भगवान् गीता में कहते हैं: **"ददामि बुद्धियोगं तम्** — अपने भक्तों को मैं विवेक-योग प्रदान करता हूँ" (अध्याय: १०-१०)। भगवान् कितने दयालु है। । धन्य हैं वे तथा धन्य है उनका नाम!

उनके ही प्राण लेने के विचार से आयी हुई पूतना के प्रति भी मातृभाव रख कर उसे उन्होंने मुक्ति दी। उन्होंने कंस तथा शिशुपाल के समान घोर शत्रु को भी, जिसने भरी सभा में उनका अपमान किया था, मोक्ष प्रदान किया; फिर तो जो उनके अनन्य भक्त हैं, उनका कहना ही क्या!

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण जी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीरुक्मिणीदेवी से कहा "हे राजकुमारी अनेक वीर नरेशों के प्रेम को ठुकरा कर तुमने मुझसे ब्याह कर भला नहीं किया। मैं किसी देश का राजा नहीं हूँ। मैं तो भय के कारण समुद्र-तटीय नगर में निवास करता हूँ। मेरा आचार-व्यवहार भी विचित्र-सा है। यह सामान्य लौकिक व्यवहार के अनुरूप नहीं है। अल्पसंख्यक ही मुझे समझ पाते हैं। मेरे समान पुरुष को वरण करने वाली स्त्रियों को सदा क्लेश ही झेलना पड़ता है। मेरा सम्पर्क पतितों तथा अकिंचन लोगों से रहता है; अतः धनाढ्य लोग तो मुझ जैसे लोगों से मिलना-जुलना भी पसन्द नहीं करते । अपनी आत्मा में ही लीन रहने के कारण स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति में मेरी कोई आसक्ति नहीं है; अतः हे विदर्भ कुमारी ! तुमने मेरे संग विवाह कर भूल ही की।"

श्रीकृष्ण का यह छोटा वक्तव्य उनकी महत्ता का परिचायक है। वे दुर्बल एवं विनम्र के प्रति अत्यन्त दयालु तथा कारुणिक थे।

महान् योद्धा

भगवान् श्रीकृष्ण बारह वर्ष की अल्पायु में ही एक निर्भीक योद्धा थे। कुब्जा के तिलक से अभिषिक्त तथा सुदामा माली के पुष्पहार से अलंकृत हो उन्होंने कंस के धनुर्यज्ञ की यज्ञशाला में प्रवेश कर विशाल धनुष को तोड़ डाला। कंस ने कुवलयापीड नामक हाथी को श्रीकृष्ण को मारने भेजा। भगवान् ने उसका वध कर रंगभूमि में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने कंस के प्रधान पहलवानों को अर्थात् चाणुर तथा तोषल को धराशायी बनाया। अब वे छलाँग मार कर कंस के मंच पर जा पहुँचे और उसको केश पकड़ कर मंच से गिरा दिया और उसके प्राण ले लिये।

श्रीकृष्ण जी ने मगधराज जरासन्ध तथा कालयवन से वीरतापूर्वक लोहा लिया। जरासन्ध अपने जामाता कंस के मारे जाने का वृत्तान्त सुन कर आग-बबूला हो उठा। उसने मथुरा नगरी पर सत्रह बार आक्रमण किया; किन्तु प्रत्येक बार उसे श्रीकृष्ण से मुँह की खानी पड़ी।

शोणितपुर नरेश सहस्रबाहु बाणासुर से उन्होंने युद्ध किया। श्रीकृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध गुप्त रूप से बाण की पुत्री ऊषा से विवाह कर उसी के साथ रहने लगे थे। बाणासुर को इस रहस्य का पता चल गया और उसने अनिरुद्ध को बन्दी बना लिया। श्रीकृष्ण ने बाणासुर से युद्ध कर उसकी भुजाएँ काट डालीं और अनिरुद्ध तथा ऊषा के साथ द्वारका वापस आ गये।

तदुपरान्त उन्होंने करूष देश के राजा पौण्ड्रक का वध किया। वह श्रीकृष्ण की दिव्यता को अस्वीकार करता था और श्री विष्णु के चिह्न शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर अपने को वास्तविक वासुदेव घोषित करता था ।

दुष्ट शिशुपाल ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा। भगवान् ने सुदर्शन चक्र उसके ऊपर चला कर उसका शिरोच्छेदन कर दिया। सौभपति शाल्व, जो शिशुपाल का मित्र था, ने अपने मित्र की मृत्यु के प्रतिकार की भावना से श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया; किन्तु वह उनके हाथों मारा गया। इसी भाँति उन्होंने दन्तवक्त्र का भी बध किया।

योगेश्वर

आकाश मण्डल की तारिकाओं एवं समुद्र तट के रजत कणों की गणना कर सकना सम्भव है; किन्तु त्रिलोकपति भगवान् श्रीकृष्ण की अद्भुत तथा वीरतापूर्ण लीलाओं और यशस्वी कार्यों का परिगणन सम्भव नहीं है।

बाल्यावस्था में उन्होंने अनेक अद्भुत लीलाएँ कीं। उन्होंने जँभाई लेते समय माता यशोदा को विश्वरूप-दर्शन कराया, यमलार्जुन वृक्ष को उखाड़ फेंका, कालिय नाग के मस्तक पर नृत्य किया, इन्द्र द्वारा प्रेरित घनघोर वर्षा से गोकुल की रक्षा के हेतु गोवर्धन को अपनी कनिष्ठा उँगली पर धारण किया, नेत्रहीन विल्वमंगल को दृष्टि प्रदान की, द्रौपदी का चीर बढ़ाया तथा अर्जुन को विश्वरूप-दर्शन कराया।

एक बार दुर्वासा ऋषि अपने बहुत से शिष्यों के साथ महाराजा युधिष्ठिर का आतिथ्य ग्रहण करने के लिए पधारे। उस समय द्रौपदी भी भोजन समाप्त कर चुकी थीं और अतिथियों को परोसने के लिए कुछ भी भोजन शेष न था । श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के पात्र में अवशिष्ट शाक का एक टुकड़ा खाया। जब वे ऋषि स्नान कर रहेथे, उन्हें ऐसा अनुभव भगवान् के कराया मानो कि उन्होंने बहुत अधिक राजसिक भोजन कर लिया है। वे लज्जित मन से शिर नीचा किये वहाँ से चल दिये। दुर्योधन की सभा में द्रौपदी के चीर हरण के अवसर पर उन्होंने उसे अनन्त वस्त्र प्रदान किये। रासलीला के समय वे अनेक रूप धारण कर प्रकट होते थे। जब ब्रह्मा जी ने गोपों और बछड़ों को

श्रीकृष्ण जी से छिपा लिया तो उन्होंने अनेक रूप धारण कर लिये थे। क्या कोई मानव प्राणी ऐसा कर सकता है। केवल योगेश्वर ही इस प्रकार के अद्भुत कार्य कर सकते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् योगेश्वर, त्रिलोक-नाथ तथा चराचर जगत् की आत्मा हैं। भला उनके वैभव का कौन वर्णन कर सकता है। श्रीकृष्ण द्वारा अवशिष्ट शाक का एक टुकड़ा मात्र खा लेने से ही दुर्वासा तथा उनके शिष्य तृप्त हो गये। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण सभी प्राणियों में निवास करते हैं।

नारद मुनि ने एक बार यह जानने की इच्छा से कि भगवान् श्रीकृष्ण किस प्रकार सोलह सहस्र स्त्रियों के साथ दाम्पत्य जीवन निर्वहन करते हैं, उनके अन्तःपुर में प्रवेश किया और सर्वत्र श्रीकृष्ण को विभिन्न कार्यों में व्यस्त पाया। कैसी अद्भुत बात है! नारद तो स्तब्ध रह गये। क्या यह सिद्ध नहीं करता कि श्रीकृष्ण योगेश्वर और स्वयं भगवान् ही हैं ?

श्रीकृष्ण भूतभर्तृ हैं। वास्तव में वे ही संसार की सभी स्त्रियों के पति हैं। वास्तविक पति तो केवल प्रभु ही हैं। इसी बात को बतलाने के लिए ही तो उन्होंने वसुदेव-देवकी के यहाँ पुत्र रूप में अवतार लिया ।

महान् राजनीतिज्ञ

श्रीकृष्ण एक महान् राजपुरुष थे। श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ राजपुरुष का विश्व ने आज तक दर्शन नहीं किया। वे शान्ति से संस्थापक तथा स्वतन्त्रता के समर्थक थे। उनमें अपूर्व दूरदर्शिता थी तथा वे उदार विचारों के पोषक थे। जब वे बालक थे, तभी उन्होंने वर्षा के हितार्थ इन्द्र की प्रचलित पूजा-प्रथा के विरुद्ध आवाज उठायी और लोगों को धर्म के आधारभूत सारतत्त्वों के वास्तविक महत्त्व की शिक्षा दी ।

श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ थे। वे सभी युगों के सबसे महान् राजनीतिज्ञ)हुए। वे नरेश-निर्माता थे। वे द्वारका नगर के जन्मदाता तथा एक महान् ऐतिहासिक पुरुष थे। वे एक आध्यात्मिक नेता तथा मानव-जाति के रक्षक थे। वे आध्यात्मिक गुरुओं में सबसे महान् थे।

कौरव-पाण्डवों के आसन्न गृह-युद्ध में वे शान्ति-संस्थापक नियुक्त किये गये। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को कौरवों के यहाँ सन्धि-प्रस्ताव ले कर भेजा। वहाँ उन्होंने दुर्योधन को विस्तारपूर्वक ज्ञानोपदेश दिया। धृतराष्ट्र की सभा में उनका रोमांचकारी-प्रेरणात्मक भाषण उनके सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ होने का प्रमाण है। उन्होंने दुर्योधन से कहा: “हे भरतवंश के राजकुमार ! बुद्धिमान्, वीर तथा धर्मपरायण पाण्डवों से मित्रता कर लीजिए। शान्ति ही मित्रों, सम्बन्धियों तथा समस्त विश्व में सुख-समृद्धि लाती है। जो अपने मित्र के ज्ञानोपदेश पर ध्यान नहीं देते, वे नाश तथा शोक को प्राप्त होते हैं।'

उनके समकालीन योग्य राजा गण भी उनकी कूटनीति में सूक्ष्मदर्शिता तथा कुशल राजनीतिज्ञता की प्रशंसा करते थे। राजा एवं शासक गण उनका सत्परामर्श लिया करते थे।

उनकी शिक्षाएँ

उद्धव के प्रति दिये गये श्रीकृष्ण के सर्वोत्कृष्ट उपदेश को तनिक सुनिए । श्रीकृष्ण कहते हैं: "यदि लोग उपहास करते हैं तो उस पर तनिक भी ध्यान न दें, उसकी परवाह न करें, देहाभिमान तथा लोक-लज्जा को छोड़ दें और कुत्ते, चाण्डाल, गौ एवं गधे को भी भूमि पर लेट कर साष्टांग प्रणाम करें। मुझ परमात्मा को सबमें देखें और सबको मुझमें आत्म-समर्पण करें। मेरे ही हेतु सभी कर्मों का सम्पादन करें। सभी प्रकार के राग का परित्याग करें। मुझमें पूर्ण तथा अविचल श्रद्धा रखें। मेरी महिमा का गायन करें।'

गीता की शिक्षा कर्म-प्रधान है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म के महत्त्व पर विशेष बल दिया है; किन्तु उद्धव के प्रति दिये हुए उपदेश भक्ति-प्रधान हैं। उन्होंने उद्धव को भक्ति के महत्त्व पर अधिक बल दिया है। गीता में भी भगवान् ने आत्म-समर्पण पर अधिक बल दिया है। अन्तिम अध्याय में वे घोषित करते हैं. **"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"** (गीता : १८-६६) ।

बाँसुरी की पुकार

बाँसुरी प्रणव का प्रतीक है। यह वह बाँसुरी है जो प्रेमी गोपिकाओं अथवा ब्रजांगनाओं का पुण्यतोया यमुना के पुलिन पर प्राणप्रिय श्रीकृष्ण से मिलने के लिए आह्वान करती थी । वंशी का दिव्य संगीत बहुत ही मनोहारी था। उसमें जादू की-सी शक्ति थी। जब वह श्रोत्र- रन्ध्रों से हृदय गुहा में प्रवेश करता तो सुनने वाला अपने प्रियजनों की, जगत् की तथा अपनी भी सुध-बुध खो बैठता। श्रोता आनन्दातिरेक से नृत्य करने लग जाते और उनका हृदय प्रेम से परिपूरित हो जाता।। उसकी स्वर्गिक ध्वनि हृदय में आनन्द का स्फुरण कर नव-जीवन और हर्ष का संचार करती थी। वह सभी प्राणियों में ईश्वरीय प्रेमोन्माद उत्पन्न करती तथा जड़ जगत् में भी जीवनी शक्ति का संचार करती थी। उस संगीत में अनुपम माधुर्य था । जिसने श्रीकृष्ण की वंशी का संगीत एक बार भी सुन लिया, उसे स्वर्ग के अमृत अथवा मोक्ष के आनन्द की भी अभिलाषा न रही।

वंशी तथा उसके संगीत ने गोपियों की हृत्तन्त्री के तार को झंकृत कर दिया। उन्हें अपने पर अधिकार न रहा। जगत् की भी चेतना उन्हें न रही। वे श्रीकृष्ण की ओर बलात् खिंची-सी अनुभव करत । अपने गृह के परित्याग से न तो उन्हें भय लगता और न लज्जा ही। उनका मन इस स्थूल जगत् में न था। उनके पति तथा भ्राताओं ने उन्हें रोका; किन्तु वे न रुकीं, वे रोक न सके। प्रभु प्रेम की प्रबल धारा को भला कौन अवरुद्ध कर सकता है!

श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम दिव्य प्रेम था। वह आत्मा का आत्मा के साथ मिलन था, स्त्री-पुरुष का लौकिक मिलन नहीं था। वह जीवात्मा की परमात्मा में विलीन होने की तीव्र आकांक्षा थी।

गोपियाँ पूर्व जन्म में दण्डक वन में मुनि थे। वे भगवान् राम का आलिंगन करना चाहते थे। इस कामना की पूर्ति आगामी किसी अवतार में करने का भगवान् ने उन्हें वचन दिया था। कृष्णावतार में वे परमात्मा के साथ सायुज्यता प्राप्त कर सके।

हे भगवान् कृष्ण ! हे त्रिलोकी के अमर गायक ! इस घोर संकटकाल में, जबकि सर्वत्र अशान्ति एवं विषाद छाया हुआ है, क्या एक बार वही बाँसुरी की तान छेड़ कर दिव्य प्रेम एवं आनन्द का नव-जीवन नहीं प्रदान करेंगे !

हे प्रभो। एक बार वंशी के उस मोहक संगीत को पुनः सुनने दीजिए जो क्षुब्ध प्राणियों एवं वातावरण को शान्त तथा स्थिर बनाता था, जो दिव्य राग जड़ पदार्थों को भी चलायमान कर देता था, जो स्वर्गिक संगीत नभ-चर पक्षियों को, भटकती हुई गौओ को तथा वन में विचरते हुए मृगों को यमुना तट पर हटात् खींच लाता और उन्हें आत्म-विस्मृत हो निर्निमेष दृष्टि से आपकी ओर देखते रहने को बाध्य करता था।

श्रीमद्भागवत की रचना

श्री व्यासदेव सरस्वती नदी के तट पर विचार मन थे। आज उनका हृदय क्षुब्ध था। उनमें सन्तोष एवं शान्ति न थी। उन्होंने मन में सोचा, "मैंने ब्रह्मचर्य-व्रत का पूर्ण पालन किया है। मैंने उचित भाव से वेदों का स्वाध्याय, गुरुजनों की सेवा तथा अग्निहोत्र किये तथा उनकी आज्ञा का पालन भी किया। मैंने महाभारत के रूप में वेदों का वास्तविक अर्थ प्रकट कर दिया जिससे शूद्र, स्त्री तथा दूसरे अनधिकारी लोग धर्म तथा नीति आदि स्पष्ट रूप से समझ सकें। फिर भी मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैंने अपना कर्तव्य अभी तक पूरा नहीं किया।"

इसी अवसर पर नारद जी वहाँ आ पहुँचे। देवर्षि नारद ने कहा, "सभी ज्ञातव्य विषय आप भली-भाँति जान गये हैं। आपने श्रेष्ठ महाभारत की रचना की, जिसमें सभी विषयों का समावेश है। फिर यह असन्तोष एवं अशान्ति क्यों?"

श्री व्यासदेव ने कहा, "मैं आपसे पूर्णतः सहमत हूँ; फिर भी मुझे सन्तोष नहीं। मैं आपसे इसका कारण जानना चाहता हूँ। आप ब्रह्मा के पुत्र हैं। आपमें असीम ज्ञान है।"

देवर्षि नारद ने कहा, "हे महर्षे! आपने धर्म आदि का निरूपण तो किया है; किन्तु आपने भगवद्-गुणानुवादों का गायन नहीं किया। मेरे विचार से इसी कारण भगवान् सन्तुष्ट नहीं हैं। अतः हे सौभाग्यशाली! भगवान् श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का चित्रण करें, जिसे सुन और जान कर लोग मोक्ष प्राप्त कर सकें। जिनसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती है, वे भगवान् ही विश्व के रूप में भी हैं। आप इस बात को स्वयं भली-भाँति जानते हैं; किन्तु आपने इस सत्य के आंशिक रूप का ही लोगों को दिग्दर्शन कराया है। अतः हे व्यासदेव !

उस सर्वव्यापी भगवान् हरि की कीर्ति का, उनकी महिमा का वर्णन कीजिए। उसी से बड़े-बड़े ज्ञानियों की भी जिज्ञासा पूर्ण होती है। ज्ञानी जन जानते हैं कि संसार सागर की तरंगों से बारम्बार थपेड़े खाने वाले प्राणियों के क्लेश-शमन की यही एकमेव औषधि है।"

तदुपरान्त श्री व्यासदेव ने श्रीमद्भागवत की रचना की और परम शान्ति प्राप्त की। उन्होंने उसे अपने आत्मज श्री शुकदेव जी को अध्यापन कराया।

श्रीमद्भागवत- -महापुराण

हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों में पुराणों को अद्‌वितीय स्थान प्राप्त है। वे दर्शन एवं धर्म के सभी विषयों के ज्ञान और सूचना के अक्षुण्ण कोष हैं। सामान्य जन श्रुतियों अथवा वेदों को सुगमतया समझ नहीं सकते हैं। अतः परम दयालु भगवान् वेदव्यास जी ने मानव जाति के कल्याणार्थ अठारह पुराणों का प्रणयन किया और श्रुतियों के रहस्यात्मक सत्य तथा गूढ़ तत्त्वों की सरल शैली में व्याख्या की। वे वास्तव में हिन्दू-धर्म एवं नीति के विश्वकोष हैं।

पुराणों में गल्प, परियों की कहानियों, दर्शन, धर्म, कथानक एवं आख्यायिकाओं का समावेश है, अतः पाश्चात्य देश का विद्‌वान् यदि वह भारतीय ऋषियों के धर्म तथा दर्शन की प्रतिपादन शैली से परिचित नहीं है तो इनका उचित मूल्यांकन न कर सकेगा। वैदिक सत्य को समाख्यानों, कथानकों तथा रूपकों द्‌वारा लोकप्रिय बनाना ही पुराणों का मुख्य उदेश्य है।

श्रीमद्भागवत सबके लिए एक व्यावहारिक पथ-प्रदर्शक है। यह बतलाता है। कि ईश्वर - साक्षात्कार ही मनुष्य को मोक्ष देता है। यह ईश्वरीय चेतना की प्राप्ति का पथ भी प्रदर्शित करता है। इसका उपदेश है कि एकमेव ईश्वर की ही सत्ता है तथा ईश्वर साक्षात्कार ही मानव जीवन का परम तथा चरम लक्ष्य है। सर्वत्र, सर्वदा तथा सर्व स्थिति में ईश्वर की अनुभूति की यह हमें शिक्षा देता है। निश्चय ही यह एक अलौकिक ग्रन्थ तथा मनुष्य की महानिधि है।

श्रीमद्भागवत जीवन में सान्त्वना प्रदान करता है। यह अपने सौन्दर्य एवं माधुर्य में, अपनी प्रतिपादन शैली एवं दर्शन में अद्‌वितीय है। यह दिव्य ज्ञान का बहुमूल्य भण्डार है। इसका स्वाध्याय मात्र हृदय में भक्ति की प्रेरणा भरता तथा ज्ञान विस्तृत एवं वैराग्य का स्फुरण करता है। इसमें भगवान् वासुदेव की महिमा का 1 वर्णन है।

भगवान् व्यासदेव स्वयं इसके प्रणेता है। उन्होंने इसका अपने पुत्र श्री शुकदेव । जी को अध्यापन कराया। इसकी अनेक टीकाएँ हैं; किन्तु श्रीधर स्वामी की टीका ही अधिक लोकप्रिय तथा प्रामाणिक मानी जाती है।

श्रीमद्भागवत ही सभी पुराणों में सर्वाधिक लोकप्रिय तथा सम्मानित है। भारत के सभी वैष्णव इसे सबसे अधिक आदर की दृष्टि से देखते है । संस्कृत-साहित्य को अपने भक्तिपरक ग्रन्थों पर गर्व एवं अभिमान है। यह उन ग्रन्थों में कीर्ति स्तम्भ के तुल्य है। स्वयं व्यासदेव अपने श्रीमुख से कहते हैं कि यह श्रीमद्भागवत विशालकाय महाभारत का सारतत्व है तथा समस्त वैदिक साहित्य के परिपक्क फल के समान है।

उपदेशकों तथा धर्माचार्यों का यह अति-प्रिय ग्रन्थ है। सभी हिन्दू-घरों में इसकी पूजा होती है। सारे भारत में विद्वान्, पण्डित, साधु और संन्यासी इसका पाठ करते हैं।

इस ग्रन्थ में ज्ञान, भक्ति तथा कर्म को समुचित स्थान दिया गया है। जो शरीर तथा संसार से अधिक आसक्त हैं उनके लिए कर्म का, जो वैराग्यवान् तथा विरक्त हैं उनके लिए ज्ञान का और जो न अधिक आसक्त हैं और न अधिक वैराग्यवान् ही हैं, जो उदासीन हैं उनके लिए भक्ति का उपदेश किया गया है। यह भागवत-धर्म या प्रेम-धर्म की पूर्ण शिक्षा देता है।

हिन्दू-धर्म, दर्शन तथा संस्कृति में जो कुछ भी उत्कृष्ट है, वह सब भागवत में उपलब्ध है। इस अनूठे एवं अनुपम ग्रन्थ में धर्म एवं दर्शन के चरम सत्य का तथा नीति-शास्त्र के सर्वोच्च सिद्धान्तों का बहुत ही सुन्दर ढंग से निरूपण किया गया है।

भारतीय ऋषि-मुनियों ने आचार नीति, दर्शन तथा धर्म की शिक्षा देने के लिए चित्ताकर्षक आख्यायिकाओं का आश्रय लिया है। भागवत के प्रणेता ने भी यही नीति अपनायी है। कहानियाँ और रूपक धर्म के सत्य की ओर मन को प्रेरित तथा प्रलोभित करते हैं। वे मिश्री लगी हुई औषधीय टिकियों के समान हैं। अनुन्नत मस्तिष्क वाले व्यक्तियों के लिए वह मनोरंजन के साधन हैं।

इस अनुपम ग्रन्थ के विदेशी भाषा के अनुवाद में मूल ग्रन्थ का सौन्दर्य तथा माधुर्य नहीं लाया जा सकता - अनुवादक चाहे कितना भी प्रकाण्ड पण्डित, कुशल तथा अधिकारी लेखक क्यों न हो !

श्रीमद्भागवत में अठारह सहस्र श्लोक, तीन सौ बत्तीस (किसी-किसी के मतानुसार तीन सौ पैंतीस) अध्याय तथा बाहर स्कन्ध है। भगवान् की महिमा का वर्णन होने के कारण इस ग्रन्थ का नाम भागवत पड़ा। यह भारत में बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह लोगों के विचार तथा भावनाओं पर सीधा एवं शक्तिशाली प्रभाव रखता है। हिन्दू-मस्तिष्क पर इसने अपूर्व प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है। इसमें सभी पुराणों का सार है। केवल श्रीमद्भागवत महापुराण में ही सृष्टि के विकास का क्रमिक विवेचन है, अन्यत्र नहीं।

भगवान् श्रीकृष्ण इस अनुपम ग्रन्थ के मुख्य पात्र हैं। यह भक्ति का प्रामाणिक ग्रन्थ है। यह भक्ति-युक्त ज्ञान की शिक्षा देता है। यह ज्ञान को भक्ति से पृथक नहीं करता। यह बतलाता है कि परा-भक्ति की प्राप्ति में ज्ञान बहुत ही सहायक है। श्रीमद्भागवत में ज्ञान रूपी अमृत रस में भक्ति-रूपी मिश्री का सुन्दर सम्मिश्रण है।

इस जगत् से प्रयाण करते समय भगवान् श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिये थे, वे अनुपम हैं। उनका वर्णन एकादश स्कन्ध में आया है। श्रीकृष्ण ने अपने सखा, अग्रगण्य शिष्य तथा यादव कुल प्रधान उद्धव की सभी शंकाओं का समाधान किया। उन्होंने विभिन्न विषयों पर उपदेश दिये; किन्तु एक प्रमुख वाणी जो सबमें प्रतिध्वनित होती है, वह है: "मुझे सबमें देखें। मुझमें आत्मसमर्पण करें। मेरे लिए ही सब कर्मों को करें। सभी प्रकार की आसक्तियों का उच्छेदन करें। मुझमें अटल श्रद्धा रखें तथा मेरी महिमा का गायन करें।"

एकादश स्कन्ध के प्रारम्भ में राजा निमि के प्रति भागवत-धर्म पर नौ योगीश्वरों के उपदेश बहुत ही प्रेरक तथा आत्मोद्बोधक हैं। दशम अध्याय में भगवान् की सभी लीलाओं का वर्णन है। भगवान् श्रीकृष्ण शैशवावस्था के क्रीड़ा-कौतुक, हास-परिहास, बाल लीला, वृन्दावन-लीला, मथुरा-लीला, द्वारका-लीला, कुरुक्षेत्र-लीला तथा प्रभासक्षेत्र-लीला का वर्णन इस स्कन्ध में है। इसमें कुल नब्बे अध्याय हैं।

दशम स्कन्ध का भाव कामुक एवं विषयी वृत्ति से आपूर्ण हृदय वाले मनुष्य की समझ से परे है। सभी धर्मों में प्रेम-प्रेमिका-भाव का रूप पाया जाता है; किन्तु वे सांसारिकता में नमन मनुष्यों के लिए बोधगम्य नहीं है। दशम स्कन्ध में मन की कल्मषताओं से मुक्त मानव-आत्मा के हृदयोद्गार या प्रेमोन्माद की अभिव्यंजना है। जब मन के मल घुल जाते हैं तथा हृदय पूर्णतया शुद्ध हो जाता है, तब मानव आत्मा स्वभावतः ईश्वरोन्मुख हो जाती है और अन्ततोगत्वा उसी में विलीन हो जाती है।

विभिन्न प्रकार के साधकों के अनुकूल भागवत ने विभिन्न प्रकार के ध्यान का निदर्शन किया है। नये साधकों के लिए विराट् पुरुष का ध्यान बताया गया है। उसे ऐसा समझना चाहिए कि यह समस्त विश्व भगवान् का ही शरीर है। इसका उल्लेख द्वितीय स्कन्ध में है। इसी स्कन्ध में तथा तीसरे स्कन्ध में भी हृदय भगवान् के रूप का तथा आपाद-मस्तक उनके विभिन्न अंग-प्रत्यंग का ध्यान करने का वर्णन है। एकादश स्कन्ध में हृदय-कमल में तीन क्रमिक ध्यान, प्रथम सूर्य, द्वितीय चन्द्रमा तथा तृतीय अग्नि का ध्यान निर्धारित किये गये हैं। उसी स्कन्ध में प्रथम भगवान् श्रीकृष्ण के रूप का ध्यान करने, तदुपरान्त मन को आकाश अथवा महत्-तत्त्व में स्थिर करने के तथा अन्त में परब्रहम में विलीन कर देने के लिए कहा है।

श्रीमद्भागवत-सप्ताह सारे भारतवर्ष में होता है। इसमें सम्पूर्ण भागवत का केवल सात दिनों में ही पारायण किया जाता है। पूर्ण भागवत का केवल श्रवण अथवा मनन करने का यह उत्तम अवसर प्रदान किया करता है। आप सबको अपने घरों में वर्ष में एक बार श्रीमद्भागवत सप्ताह का आयोजन करना चाहिए। इससे आपके सुख-समृद्धि की वृद्धि होगी। प्रत्येक व्यक्ति को श्रीमद्भागवत महापुराण की एक पुस्तक अपने घर में रखनी चाहिए।

परीक्षित की परमगति

एक बार राजा परीक्षित मृगया के लिए गये। वे श्रान्ति तथा तीव्र पिपासा सेव्याकुल हो गये; अतः वे शमीक मुनि के कुटीर में प्रविष्ट हुए। उस समय मुनि ध्यानमग्न थे; अतः उन्हें महाराजा परीक्षित के आने का

पता नहीं चला। क्षुधा और तृषा से वे अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। उन्हें क्रोध आया कि इस मुनि ने मेरा आविध्य-सत्कार नहीं किया। उन्होंने सोचा कि इन्होंने समाधि का झूठ-मूठ ढोंग कर रखा है जिससे इन्हें मेरे उपयुक्त शिष्टाचार तथा साधारण अतिथि-सत्कार न करना पड़े। ये मेरा अपमान कर रहे हैं। उन्होंने धनुष की नोक से एक मृत सर्प को मुनि के गले में हार की भाँति डाल दिया तथा वहाँ से चले गये।

शमीक मुनि का कुमार पुत्र निकटवर्ती कौशिकी नदी पर दूसरे ऋषिकुमारों के साथ क्रीड़ा कर रहा था। उसे अपने किसी साथी बालक से पता चला कि उसके पिता के गले में राजा परीक्षित ने एक मृत सर्प डाल दिया है। उसने शाप दिया कि आज से सातवें दिन राजा को उसके अशिष्ट एवं उद्धत व्यवहार के कारण तक्षक नाग काटेगा। इसके बाद वह बालक आश्रम में भागता हुआ आया और अपने पिता के गले में साँप देख कर ढाढ़ मार कर रोने लगा। उसकी क्रन्दन-ध्वनि से मुनि की समाधि भन हुई। उन्होंने नेत्र खोले तथा मरे हुए साँप को फेंक कर पुत्र से शोक का कारण पूछा। बालक ने सब वृत्तान्त कह सुनाया।

मुनि को उस शाप का वृत्तान्त सुन कर अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने कहा, "पुत्र! तू बहुत ही अज्ञानी तथा अदूरदर्शी है। राजा गण इस पृथ्वी पर साक्षात् विष्णु भगवान् के स्वरूप ही हैं। वे अपनी शक्ति, न्याय तथा मान-मर्यादा से प्रजा की रक्षा करते हैं तथा नीति और व्यवस्था कायम रखते हैं। यदि राजा न रहे, तो देश में अराजकता फैल जायेगी। राजा के कर्तव्य बहुत कठिन तथा अपूर्व हैं। उनके उत्तरदायित्व बहुत ही गम्भीर हैं। यदि तुम्हारे अपराधानुसार वे तुम्हें दण्ड दें, तो कम-से-कम तुम शाप देने के पाप से मुक्त हो जाओगे। किन्तु राजा परीक्षितः महानु भक्त हैं। वे कभी भी इसका प्रतिकार नहीं करेंगे। वे तुम्हारे शाप को अपने अविचारपूर्ण कर्म का प्रायश्चित्त समझ कर साभार शिरोधार्य करेंगे। यही नहीं, वे सर्वथा निर्दोष हैं। मैं ही उनका मर्यादानुकूल सम्मान न कर प्रजोचित कर्तव्य से च्युत रहा तथा उन्हें अन्नोदक प्रस्तुत न कर अतिथि सत्कार के कर्तव्य का भी मैंने निर्वहन नहीं किया। वे तुम्हारे शाप के योग्य कदापि न थे। अज्ञानवश किये हुए तुम्हारे पाप को भगवान् क्षमा करें!

तदुपरान्त मुनि ने अपने शिष्य को राजा के पास भेज कर उन्हें अपने पुत्र की अज्ञानता की सूचना दी और अपने बहुमूल्य जीवन की सुरक्षा के लिए आवश्यक सावधानी बरतने का अनुरोध किया।

राजा परीक्षित ने अपने राजमहल में पहुंच कर कुछ देर विश्राम किया। उन्हें अपने अज्ञान तथा उद्धवपूर्ण कार्य के लिए बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसी समय मुनि का शिष्य सन्देश ले कर आ पहुंचा। उसे सुन कर राजा की मानसिक व्यथा शान्त हुई। उन्होंने उस शाप को प्रायश्चित तथा वरदान का अवान्तर रूप समझ कर स्वीकार किया।

उन्होंने अपने मन में विचार किया: "मैं अपने वैभव एवं गौरव के कारण ही ज्ञान तथा उचित-अनुचित के विवेक को खो बैठा था। मैं मदान्ध हो रहा था। अब मैं अधिक बुद्धिशील बन गया हूँ। मुझमें वैराग्य का विकास

हुआ है। इस शाप से उन ऋषि के प्रति किये गये मेरे जघन्य कर्म का प्रायश्चित हो जायेगा। भगवान् श्रीकृष्ण में मन को स्थिर करने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है। उन्हीं की मैत्री ही शाश्वत सुख प्रदान कर सकती है।'

ऐसा कह कर राजा परीक्षित अपने साम्राज्य को पुत्र को सौंप कर भागीरथी के पावन तट पर यह दृढ़ निश्चय कर बैठ गये कि जब तक मन भगवान् श्रीकृष्ण में लीन न हो जाये तथा इस नश्वर शरीर का परित्याग न कर दूँ, तब तक न उठूँगा।

यह समाचार ऋषियों के कानों तक पहुँचा। प्रतापी राजा की भक्ति देखने के लिए वे समुपस्थित हुए। राजा परीक्षित ने उन सबका विनीत भाव से स्वागत किया तथा उनसे यह जानने की इच्छा प्रकट की कि वे अपने इस समय का भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में कैसे सर्वोत्तम उपयोग करें। विभिन्न ऋषियों ने विभिन्न मार्गों का निदर्शन किया। इसी समय श्री शुकदेव जी वहाँ पधारे और परीक्षित ने अपने प्रश्न को दुहराया।

श्री शुकदेव जी ने उत्तर दिया "भगवान् श्रीकृष्ण का सतत ध्यान करना चाहिए। उनका पावनकारी नाम सदा तुम्हारे अधर-पुट पर हो। उनकी लीलाओं तथा गुणों का सदैव स्मरण तथा ध्यान करते रहो। मृत्यु-काल में भगवान् की स्मृति बनाये रखने तथा समय का सदुपयोग करने का यही सर्वोत्तम मार्ग है जो शाश्वत सुख की प्राप्ति कराता है।

"परीक्षित। यह न सोचो कि तुम्हारे पास केवल एक ही सप्ताह है। राजर्षि खट्वांग ने देवासुर संग्राम में देवताओं की बड़ी सहायता की। देवताओं ने उनकी इस सेवा के उपलक्ष्य में जब वर माँगने के लिए कहा तो उन्होंने पूछा कि प्राप्य वरदान का उपभोग करने के लिए उनके जीवन के कितने दिन अवशेष रहे हैं। देवताओं से यह मालूम होने पर उनकी आयु अब केवल एक ही मुहूर्त शेष है; उन्होंने प्रभु से शीघ्र योग प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट की। देवताओं ने कहा, 'तथास्तु।' उन्होंने भक्तिपूर्वक अपने मन को भगवान् में केन्द्रित कर शाश्वत आनन्द को प्राप्त किया।"

श्री शुकदेव जी ने पुनः कहाः "हे राजन्! अतः पूर्ण भक्तिपूर्वक अपने मन को भगवान् में स्थिर करो। सांसारिक विषयों का चिन्तन छोड़ दो। भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा तथा उनकी विविध लीलाओं का श्रवण करो। यही श्रीमद्भागवत का सारांश है जिसे मैंने अपने पिता श्री व्यासदेव से सुना था।"

तदुपरान्त श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत की कथा सुनायी। महाराजा परीक्षित ने बहुत ही श्रद्धा एवं ध्यानपूर्वक उसे सुना मन को भगवान् में एकाग्र कर उनसे सायुज्य प्राप्त किया। और अपने

नास्तिकों की गति

कुछ अज्ञानी तथा विचारहीन व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण को कुछ विशिष्ट गुण सम्पन्न साधारण मानव मात्र मानते हैं। उनका कहना है कि वे निम्न भूमिका से ही पधारे हैं। कुछ उनके जीवन और चरित्र को दोषपूर्ण

ठहराते हैं। वे कहते हैं : 'श्रीकृष्ण भगवान् नहीं हैं। वे अवतार नहीं हैं। वे एक कामुक गोप थे, जो गोपियों के साथ काम-क्रीड़ा करते थे।"

जो भगवान् पर इस भाँति लांछन लगाते हैं, वे उनकी महत्ता तथा गौरव से परिचित नहीं हैं; क्योंकि उन्होंने योगाभ्यास नहीं किया, यम-नियम के परिपालन से उनके पापों का प्रक्षालन नहीं हुआ और न उन्होंने सत्संग का ही आश्रय ग्रहण किया है। अध्यात्म-शास्त्र में उनका प्रवेश नहीं है।

क्या भगवान् में भी काम-वासना का लेश रह सकता है ? क्या रासलीला के समय वे सप्तवर्षीय बालक न थे? रासलीला तथा माधुर्य-: -भाव, जो भक्ति तथा आत्मनिवेदन की चरमावस्था है, के रहस्य को कौन जान सकता है? नारद, शुकदेव, चैतन्य, मीरा, रामानन्द तथा गोपियों ने ही रासलीला के रहस्य को समझ पाया। क्या वे असंख्य कृष्णों का रूप धारण नहीं कर लेते थे ? क्या कोई इस प्रकार के कौतुक कर सकता है?

श्री मधुसूदन सरस्वती, जो उच्चकोटि के ज्ञानी थे, कहते हैं उन कमल लोचन भगवान् श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं जानता है जिनके युग्म-करों में वंशी शोभायमान है तथा जिनका मुख-मण्डल श्याम-मेघों के मध्य पूर्णिमा के चन्द्रमा-सा विभासित हो रहा है। ध्यान द्वारा मन को वश में करने वाले योगी उस निर्गुण, अकर्ता, अनिर्वचनीय एवं परम ज्योति का यदि ध्यान करना चाहते है तो करने दीजिए; किन्तु हमारे नेत्रों में तो कालिन्दी-पुलिन पर विहार करने वाला वही श्याम सुन्दर रूप सदा झूमता रहता है।"

जो भगवान् के विरुद्ध टीका-टिप्पणी करते रहते हैं, उनकी क्या गति होती है। इसके विषय में जरा सुनिए "बुद्धिहीन पुरुष मन और इन्द्रियों से परे सच्चिदानन्द परमात्मा को साधारण मनुष्य की भाँति प्रारब्धवश जन्मा हुआ मानते हैं; क्योंकि वे मेरे अनुत्तम, अविनाशी परम भाव को नहीं जानते" (गीता : ७-२४)। “मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ़ लोग मनुष्य-शरीर धारण करने वाले मुझ सम्पूर्ण भूतों के महान् ईश्वर की अवहेलना करते हैं। वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और ज्ञान वाले अज्ञानी जन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृति को ही धारण किये रहते हैं" (गीता : ९-११ और १२) । "अन्धकार में पड़े हुए वे लोग अपनी विपरीत बुद्धि के कारण पाप को ही पुण्य कर्म मान बैठते हैं। वे लोग प्रवृत्ति और निवृत्ति — इन दोनों को ही नहीं जानते हैं। अतः न उनमें शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्य भाषण ही है। उन्हें विहित-अविहित तथा कर्तव्य-कर्म का ज्ञान नहीं है। इस भाँति भ्रान्ति में हुए वे लोग जन्म-जन्मान्तरों तक नाना प्रकार के ताप और दुःख को सहते हुए संसार-पंक में विचरण करते रहते हैं तथा कभी भी परम गति को प्राप्त नहीं होते।"

उपसंहार

सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहने वाले लोगों के लिए सम्पूर्ण भागवत का पाठ करना बहुत ही कठिन है; अतः मैंने श्रीकृष्ण के जीवन, उनकी लीलाओं तथा उनके उपदेशों का संक्षिप्त रूप इस पुस्तक में बहुत ही सरस

एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। यदि आप इस पुस्तक का एक या दो पृष्ठ भी प्रतिदिन स्वाध्याय करें तो आपमें भगवद्-भक्ति का विकास होगा तथा आप शाश्वत सुख, शान्ति एवं अमरत्व प्राप्त करेंगे।

आप सभी भागवत-सुधा का पान करें। आप सभी भगवान की श्रद्धा तथा भक्ति से सम्पन्न बनें। आप सभी पवित्र तथा सदाचारमय जीवन यापन करें। भगवान् श्रीकृष्ण आपके केन्द्र, आदर्श तथा ध्येय बनें। आप सबको उनका आशीर्वाद प्राप्त हो। श्रीकृष्ण जी की कृपा से भागवत के गूढ़ तत्त्व हस्तामलक की भाँति आप सब पर प्रकट हो। श्री व्यास भगवान् तथा श्री शुकदेव जी की जय हो।

देवकीनन्दन, राधा के जीवन सर्वस्व हम सबके अन्तर्वासी तथा गोपियों के प्राणप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण आप सबकी रक्षा करें तथा आपके पथ-प्रदर्शक बनें। आप सब उनकी मधुर वंशी, आत्मा के स्वर्गिक संगीत को एक बार पुनः सुनें। वे हमारे जीवन- रथ के सारथि बनें। आप सब उनमें निरन्तर निवास कर शाश्वत आनन्द एवं परम शान्ति का उपभोग करें।

-स्वामी शिवानन्द

विषय-सूची

प्रकाशक की ओर से.. 5

अनुवादकीय.. 6

एकश्लोकी भागवतम् 7

चतुःश्लोकी भागवतम् 8

श्रीकृष्ण-वन्दना 9

श्रीकृष्णकर्णामृतम्.. 12

कुन्ती की प्रार्थना 13

प्रह्लाद की प्रार्थना.. 15

श्रीकृष्ण अष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् 18

परिचय.. 20

भगवान् श्रीकृष्ण.. 20

लीला 42

भगवान् श्रीकृष्ण 42

भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म.. 44

जन्मोत्सव.. 45

पूतना- उद्धार.. 46

शकट-भंजन 46

तृणावर्त का वध 47

यशोदा को विश्वरूप-दर्शन 47

नामकरण-संस्कार.. 47

बाल-लीला 48

श्रीकृष्ण का बाँधा जाना.. 49

यमलार्जुन वृक्ष 49

फल बेचने वाली 50

वृन्दावन.. 50

वत्सासर से मुक्ति 51
बकासुर से मुक्ति..... 51
अघासुर से मुक्ति 51
ब्रह्मा का मोह 52
धेनुकासुर का उद्धार 53
बालक तथा गौओं की विष से रक्षा..... 53
कालिय पर कृपा 54
दावानल-पान 55
प्रलम्बासुर 55
दावानल..... 56
वेणुगीत 56
चीरहरण 57
श्रीकृष्ण तथा वैदिक यज्ञ..... 58
इन्द्र- यज्ञ-निवारण 59
गोवर्धन- -धारण..... 60
श्रीकृष्ण का अभिषेक 61
नन्द को वरुण से छुड़ाना 61
रासलीला का आरम्भ 62
विरह - कातर गोपियों का भगवान् श्रीकृष्ण को ढूँढ़ना 65
गोपी-गीत..... 69
श्रीकृष्ण का अकस्मात् प्रकट हो कर गोपियों को सान्त्वना देना..... 71
गोपियों का प्रेम..... 73
रासलीला का रहस्य..... 75
रासलीला..... 80
उपदेश..... 84
श्रीकृष्ण तथा उद्धव..... 84
अवधूतोपाख्यान 86
संसार..... 95
बन्धन तथा मुक्ति..... 98

साधु तथा भक्ति 100

सत्संग की महिमा........ 102

गुण 104

प्रत्याहार का अभ्यास 106

भक्तियोग 109

ध्यान--विधि........ 112

सिद्धियाँ 113

भगवान् की विभूतियों का वर्णन........ 116

ब्रह्मचारी और गृहस्थ के धर्म 119

वानप्रस्थ और संन्सासी के धर्म........ 124

ज्ञान और विज्ञान........ 129

यम-नियम........ 132

तीन मार्ग : कर्म, भक्ति और ज्ञान 133

गुण और दोष 136

तत्त्व 141

प्रकृति तथा पुरुष........ 144

पुनर्जन्म 145

सहनशीलता 147

सांख्ययोग 153

सत्त्व, रज और तम........ 156

ऐल गीत........ 159

क्रिया-योग तथा मूर्ति-पूजा........ 162

ज्ञान-योग 167

भक्ति-योग 171

भागवत-धर्म 176

भागवत-पथ 176

कवि का उपदेश........ 177

हरि का उपदेश........ 179

अन्तरिक्ष का उपदेश (माया की शक्ति का निरूपण) 180

प्रबुद्ध का उपदेश (माया के सन्तरण का उपाय).. 182
पिप्पलायन का उपदेश (नारायण का स्वरूप).. 184
आविर्होत्र का उपदेश (कर्म-योग).. 185
द्रुमिल का उपदेश (अवतार-कथा).. 187
चमस का उपदेश.. 190
करभाजन का उपदेश.. 192



भगवान श्रीकृष्ण

प्रथम अध्याय

लीला

भगवान् श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण को नमस्कार है जो गोपीपति, अर्जुन के सारथि, पाप-विनाशक, मानव मात्र के गुरु, लक्ष्मीपति, रुक्मिणी, राधा तथा सत्यभामा के प्राणवल्लभ हैं तथा जो आनन्द-स्वरूप हैं, जो विश्वरूप हैं तथा जिन्होंने अपनी कनिष्ठ उँगली पर गोवर्धन पर्वत को धारण किया।

अभिमानी राजाओं के रूप में प्रकट असंख्य असुरों के असह्या भार से भूदेवी बहुत ही उत्पीड़ित हो रही थीं अतः वे ब्रह्मा जी की शरण में गयीं। ब्रह्मा जी ने कहा "स्वयं भगवान् नारायण वसुदेव जी के घर श्रीकृष्ण के रूप में अवतार ग्रहण करने वाले हैं। आदिशेष भी उनकी सेवा के हेतु उनके ज्येष्ठ भ्राता के रूप में अवतार ग्रहण करेंगे। देवांगनाएँ भी उनकी सेवा के लिए भूलोक में जन्म ग्रहण करेंगी। महात्मा गण गौ का रूप ग्रहण करेंगे । अब तुम्हें कोई कष्ट न होगा। भगवान् श्रीकृष्ण दुष्टों को दण्ड दे कर धर्म की स्थापना करेंगे।"

कंस ने यदु, भोज और अन्धक-वंश के अधिनायक अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बना लिया और शूरसेन देश का राज्य स्वयं करने लगा। अपने श्वसुर मगध नरेश जरासन्ध की सहायता से वह यदुवंशियों को सताने लगा। बकासुर, चाणूर, धेनुक, पूतना, केशी, बाणासुर, भौमासुर, प्रलम्बासुर, तृणावर्त, महासेन, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद आदि दैत्यराज भी उसके सहायक थे।

मथुरापुरी में शूरसेन नामक राजा शूरसेन देश पर राज्य करते थे। वे यादवों के प्रधान थे। एक बार मथुरा में शूर के पुत्र वसुदेव जी अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकी के साथ रथ पर सवार हुए। उग्रसेन के पुत्र कंस ने बारात में अपनी बहन देवकी को प्रसन्न करने के लिए रथ हाँका ।

मार्ग में कंस को सम्बोधित करते हुए आकाशवाणी हुई, "रे मूर्ख! अपनी बहन देवकी, जिसे तू रथ में बैठा कर लिये जा रहा है, के गर्भ की आठवीं सन्तान तुझे मार डालेगी।" तत्काल ही दुष्ट कंस ने अपनी बहन की चोटी पकड़ ली और हाथ में तलवार लेकर मारने को उद्यत हो गया। वसुदेव ने कंस को शान्त किया और मधुर वाणी में कहा, "कंस! शूरवीर आपके गुणों की सराहना करते हैं। आपको भोज-वंश को गौरवशाली बनाना है। आप एक महान योद्धा है। आप एक अबला स्त्री को और वह भी अपनी बहन को विवाह के अवसर पर कैसे मार सकते हैं।

यह कदापि उचित नहीं है। इससे आपका बड़ा अपयश और पाप होगा। आकाशवाणी से आप भयभीत न हों। मैं सब बच्चों, जिनसे आपको भय है, को आपको समर्पित कर दूंगा।"

कंस इस क्रूर कर्म को करने से रुक गया। वसुदेव भी उसकी प्रशंसा कर अपने महल में वापस ले आये।

देवकी के छह पुत्रों को कंस ने मौत के घाट उतारा और वसुदेव तथा देवकी को हथकड़ी-बेड़ी से जकड़ कर कारागार में डाल दिया। सातवां गर्भ अनन्त का एक अश था। देवकी के गर्भ से खींचे जाने के कारण इस बालक का नाम संकर्षण पड़ा।

भगवान् ने अपनी शक्ति योगमाया को यह आदेश दिया, "हे कल्याणी! हे। देवी! तुम व्रज- प्रदेश के नन्द बाबा के गोकुल ग्राम में जाओ; वहाँ वसुदेव की पत्नी रोहिणी निवास करती है। मेरा अंश, जिसे आदिशेष कहते हैं, देवकी के उदर में है। उसे वहाँ से निकाल कर रोहिणी के उदर में रख दो। मैं देवकी के पुत्र के रूप में जन्म लूंगा और तुम नन्द बाबा की पत्नी यशोदा के गर्भ से जन्म लेना ।'

योगमाया उनकी बात स्वीकार कर पृथ्वीलोक में चली आयी और जैसा उन्होंने कहा था, वैसा ही किया । सर्वव्यापी भगवान् ने अपनी सम्पूर्ण कलाओं से वसुदेव जी के मन में प्रवेश किया। वसुदेव ने मानसिक रूप से उस सर्वात्मा के दिव्य अंश को देवकी में आधान किया। इससे वे दैवी आभा से चमक उठीं। वसुदेव-देवकी ने अपने पूर्व जन्म में श्रीकृष्ण को पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिए उग्र तप किया था।

आठवीं बार कंस अधिक चौकन्ना था। उसने वसुदेव-देवकी को कड़े पहरे में रखा। श्रीकृष्ण का जन्म कारागार में ही हुआ ।

ईश्वरीय सत्ता के व्याप्त होने के कारण कंस ने देखा कि उसकी बहन का मुख दिव्य आभा से देदीप्यमान् हो रहा था। उसने मन-ही-मन सोचा, "मेरा प्राणघाती हरि इसके गर्भ में अवश्य प्रवेश कर गया है। अब मुझे तत्काल क्या करना चाहिए? प्रभु तो अपनी प्रतिज्ञा अवश्य ही पूरी करेंगे। एक तो स्त्री की हत्या और वह भी गर्भवती बहन की, इससे तो मेरी कीर्ति, लक्ष्मी और आयु अवश्य ही नष्ट हो जायेगी!" उसने अपनी बहन की हत्या के क्रूर विचार को त्याग दिया। प्रभु के प्रति दृढ घृणा का भाव उसके मन में उत्पन्न हुआ। वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते और चलते-फिरते सदा प्रभु का चिन्तन करता रहता। उसने सारी सृष्टि को प्रभुमय देखा। उसने घृणा के द्वारा भक्ति (वैर-भक्ति) का विकास किया।

ब्रह्मा जी भगवान् शंकर, नारदादि ऋषि तथा देवता गणों के साथ आये और गर्भ-स्थित भगवान् की स्तुति करने लगे : "हे हरि। आपके अवतार से भूदेवी का भार दूर हो गया। हे सौभाग्यवती माँ देवकी । हम लोगों की रक्षा तथा विश्व के कल्याण के लिए परम प्रभु आपकी कोख में पधारे हैं। आप भय न करें। कंस का अब शीघ्र ही विनाश होगा। आपके पुत्र जग-रक्षक होंगे।"

भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म

वह शुभ घड़ी आयी। रोहिणी नक्षत्र था। विजय मुहूर्त था। श्रीकृष्ण के जन्म के समय सभी तत्त्व सौम्य हो रहे थे। शीतल मन्द सुगन्ध समीर बह रहा था। तारे जगमगा रहे थे। सरोवर पंकजों से पूर्ण थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्धरात्रि को इस पृथ्वी-लोक में अवतार लिया। स्वर्ग में देवताओं ने बाजे बजाये। किन्नर और गन्धर्व मधुर स्वर से गाने लगे। सिद्ध और चारण स्तुति करने लगे। विद्याधरियाँ अप्सराओं के साथ नाचने लगीं। देवता और ऋषि-मुनि आनन्द में आकाश से पुष्प वर्षा करने लगे।

अवतार लेने के समय विष्णु के कमल से नेत्र थे तथा वे चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्य से सुसज्जित, गले में कौस्तुभ मणि, वक्षःस्थल को सुशोभित करने वाला श्रीवत्स का चिह्न, शरीर पर पीताम्बर परिधान, कानों में हीरक कुण्डल, शिर पर अनेक रत्न जड़ित किरीट, बाँहों में बाजूबन्द, कलाइयों में कंकण तथा कमर में बहुमूल्य कटि-बन्ध धारण किये हुए थे। वसुदेव ने दिव्य बालक के इस अद्भुत रूप के दर्शन किये।

वसुदेव जी स्तुति करने लगे "मैं समझ गया कि आप परम पुरुष परमात्मा हैं। आप चिदानन्द-स्वरूप हैं। आप सभी प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं। आप समस्त बुद्धियों के साक्षी हैं। आप माया तथा अविद्या से परे हैं।"

देवकी भी अपने पुत्र में भगवान् विष्णु के सभी लक्षण देख कर उनकी स्तुति करने लगी : "अनादि, सर्वव्यापी, स्वयंज्योतिर्मय, निर्गुण, अव्यय तथा निष्क्रिय ब्रह्म आप ही हैं। आप समस्त सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय के कारण हैं। कृपा करके मुझे अपना यह चतुर्भुज रूप न दिखलाइए। एक सामान्य बालक के रूप में ही मुझे दीजिए। अपने इस दिव्य अलौकिक रूप को छिपा लीजिए। हम कंस से बहुत भयभीत हो रहे हैं।"

श्री भगवान ने कहा "तुम दोनों प्रेम से मेरे प्रति वात्सल्य और ब्रह्म-भाव से निरन्तर चिन्तन करते रहना। इससे तुम्हें परम पद की प्राप्ति होगी।"

भगवान् ने अपनी माया शक्ति से सुन्दर बालक का रूप धारण कर लिया और बोले, "यदि तुम कंस से भयभीत हो तो मुझे शीघ्र ही गोकुल ले चलो और वहाँ यशोदा के गर्भ से उत्पन्न मेरी माया को यहाँ ले आओ। वसुदेव जी शिशु को ले कर बाहर आये। भगवान् की माया से द्वारपाल अचेत-से हो गये तथा पुरवासी सो गये। दरवाजे, जिनमें ताले लगे हुए थे, अपने-आप खुल गये। वर्षा की फुहारें पड़ रही थीं। जल को रोकने के लिए आदिशेष ने अपने फनों को छत्र की तरह फैला दिया। यमुना जी ने, बाढ़ के कारण जिसका प्रवाह बहुत गहरा और तेज था, वसुदेव जी को मार्ग दे दिया।

वसुदेव जी पुत्र को यशोदा जी की शय्या के पास सुला कर और वहाँ से नवजात कन्या को ले कर बन्दीगृह में लौट आये; उस माया-कन्या को देवकी के पास सुला दिया और अपने पैरों में पूर्ववत् बेड़ियाँ डाल लीं।

द्वारपाल भाग कर गये और कंस से देवकी के सन्तान होने की बात कही। कंस झटपट पलंग पर उठ बैठा और जहाँ देवकी कैद थी, वहाँ भाग कर आया तथा सूतिका-गृह में प्रवेश किया। बेचारी देवकी ने कंस से निवेदन किया : "हे कंस! यह बालिका तुम्हारी भानजी हैं। बालिका का बध करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।" कंस ने अपनी बहन को झिड़का और उसके हाथों से कन्या को छीन कर एक शिला पर दे मारा।

बालिका उसके हाथ से छूट कर आकाश में चली गयी। वह भगवान् विष्णु की बहन अष्टभुजा -सी दिखायी पड़ी। वह दिव्य माला, वस्त्र तथा आभूषणों को धारण किये हुए थी और धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शंख, चक्र और गदा से सुसज्जित थी। सिद्ध, गन्धर्व और किन्नर उसकी स्तुति कर रहे थे।

उसने कहा, "रे मूर्ख! मुझे मारने से तुझे क्या लाभ होगा? तेरा जीवन-घातक और कहीं जन्म ले चुका है। वह तुम्हारा पूर्व शत्रु है। अब तू इन निर्दोष वसुदेव, देवकी तथा अन्य बच्चों को व्यर्थ आघात न पहुँचा।"

उस कन्या की बात सुन कर कंस आश्चर्यचकित सा रह गया। उसने वसुदेव और देवकी को छोड़ दिया और नम्रता से उनसे कहा, "हे महात्मा जन! यद्यपि मैंने तुम्हारे पुत्रों को मार डाला है, फिर भी तुम उनके लिए शोक न करो। मनुष्य अपने-अपने कर्म के फल भोगने के लिए विवश है। पता नहीं, मृत्यु के अनन्तर मेरी क्या गति होगी। उसने उन्हें बन्धन से मुक्त कर दिया।

कंस ने अपने मन्त्रियों को बुलाया और योगमाया ने जो कुछ कहा था, वह सब उनको कह सुनाया। मन्त्रियों ने कहा, "भोजराज। यदि ऐसी बात है तो हम नगरों में, गाँवों में तथा विहार-स्थलों में सब बच्चों को, वे चाहे दस दिन के हों या इससे कम के, मार डालेंगे। विष्णु देवताओं की जड़ है। वेद, गौ, ब्राह्मण, तप और यज्ञ–ये धर्म की जड़ हैं; अतः हम लोग जिस किसी भी तरह होगा वेदवादी, याज्ञिक और तपस्वी ब्राह्मण तथा उन गौओं को, जो यज्ञ के लिए हविष्य पदार्थ देती हैं, मार डालेंगे। ब्राह्मण, गौ, वेद, तपस्या, सत्त्व, इन्द्रियदम, मनोनिग्रह, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और यज्ञ–ये विष्णु के शरीर है; अतः उसको मार डालने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि इन्हें ही मार डाला जाये।'

जन्मोत्सव

पुत्र का जन्म होने से नन्द बहुत प्रसन्न हुए। नन्द जी ने अपने पुत्र का जन्मोत्सव गोकुल में बड़ी धूम-धाम से मनाया। उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणों को आमन्त्रित कर जातकर्म संस्कार करवाया तथा देवता और पितरों की विधिपूर्वक पूजा करवायी। उन्होंने अमित दान दिया। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिये। सूत, मागध और बन्दी-जनों ने स्तुति गान किये। व्रज-मण्डल के सभी घर ध्वजापताकाओं तथा वन्दनवारों से सजाये गये। वे भली-भाँति साफ-

सुथरे किये गये तथा उनमें सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया। सभी गोप बहुमूल्य वस्त्र, अंगरखे और पगड़ियों से सुसज्जित हो कर अपने हाथों में बहुत-सा उपहार ले कर नन्द बाबा के महल में समुपस्थित हुए।

गोपियाँ केसर और तेल मिला कर बच्चे को लगातीं, मंगल-गान गातीं तथा बालक को दीर्घायु होने का आशीर्वाद देतीं। उन्होंने वस्त्र, आभूषण तथा अंजन आदि से अपना शृंगार किया। वे परस्पर हल्दी मिश्रित जल छिड़कतीं। जिस दिन भगवान् प्रकट हुए, उसी दिन से व्रज सभी तरह से अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया।

पूतना- उद्धार

कंस की आज्ञा से क्रूर राक्षसी पूतना नगर, ग्राम तथा अहीरों की बस्तियों में गोकुल में बच्चों को मारने के लिए घूमा करती थी। बच्चों की हत्या उसका एकमात्र कार्य था। उसे वायु में विचरण करने तथा स्वेच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति थी। आकाश में विचरण करने वाली पूतना ने एक दिन रूपवती स्त्री का रूप धारण कर प्रवेश किया। वह नन्द बाबा के घर में जा घुसी, जहाँ उसने दुष्टों के काल दिव्य बालक को पालने में देखा, जिसने राख के ढेर में ढके हुए अंगारे की भाँति अपने प्रचण्ड तेज को छिपा रखा था। निष्ठुर पूतना ने झट से बालक को गोद में उठा लिया और विष लगे हुए स्तन से दूध पिलाने लगी। भगवान् अपने हाथों से उसके स्तन को जोर से दबा कर उसके प्राणों के साथ दूध पीने लगे। वह चिल्लाने लगी, "जाने दे। जाने दें। अब बस कर!" उसके नेत्र बाहर निकल पड़े और अन्त में वह बड़े पर्वत की भांति पृथ्वी पर गिर पड़ी।

गोपियों तथा रोहिणी के साथ यशोदा वहाँ दौड़ती हुई आयीं और बालक कृष्ण, जो पूतना के मृत शरीर पर निर्भय हो कर खेल रहे थे, को गोद में उठा लिया। भगवान को स्तन-पान कराने के कारण पूतना अब पाप-मुक्त हो चुकी थी। उसके जलते हुए शरीर से जो धुआँ निकला, उसमें अगर की-सी सुगन्ध थी; क्योंकि श्रीकृष्ण के शरीर का स्पर्श तो शत्रु तक को पवित्र बना डालता है। यद्यपि उसकी दुर्भावना बालक को मार डालने की थी, फिर भी वह भगवान् की धात्री बनी।

शकट-भंजन

बालक के करवट बदलने का उत्सव तथा जन्मोत्सव — दोनों साथ ही मनाये जा रहे थे । नन्द बाबा के घर बड़ा यज्ञ (भोज) हुआ। अभिषेक के अनन्तर यशोदा ने देखा कि बालक ने निद्रा से अपने नेत्र बन्द कर लिये हैं; अतः उन्होंने एक गाड़ी जिस पर दूध-दही से भरे मटके रखे थे, के नीचे शय्या पर उसे सुला दिया। कुछ देर के बाद बालक ने आँखें खोलीं और स्तनपान के लिए रोने लगे। उस समय यशोदा अतिथियों के स्वागत-सत्कार में तन्मय हो रही थीं; अतः वे श्रीकृष्ण का रुदन न सुन सकीं। तब श्रीकृष्ण ने पैरों से गाड़ी को ठोकर मरी। गाड़ी उलट गयी, बरतन टूट गये और गाड़ी के पहिये और धुरी अस्त-व्यस्त हो गयी तथा जुआ फट गया। गोपियाँ और गोप आश्चर्यचकित रह गये । वे इस अद्भुत घटना का कोई कारण निश्चित नहीं कर सके। वहाँ खेलते हुए बालकों ने

गोपों और गोपियों को बतलाया कि बालक श्रीकृष्ण ने ही रोते-रोते अपने पाँव की ठोकर से गाड़ी को उलट दिया; किन्तु गोपों ने उनकी बात का विश्वास न किया। वे बालक के अनन्त बल को नहीं जानते थे।लीला

तृणावर्त का वध

एक दिन यशोदा बालक श्रीकृष्ण को गोद में ले कर दुलार रही थीं। सहसा श्रीकृष्ण चट्टान के समान भारी हो गये। वे उनका भार सह न सक; अतः बालक को भूमि पर बैठा कर घर के काम-काज में लग गयीं। तृणावर्त नाम का एक दैत्य सेवक कंस की प्रेरणा से बबण्डर के रूप में बालक श्रीकृष्ण को उड़ा ले गया।

समस्त गोकुल कुछ समय तक धूल और अन्धकार से ढक गया। दैत्य आकाश तक पहुँच गया; किन्तु भगवान् के शरीर के भारी होने के कारण आगे न जा सका। बालक ने उसके गले को कस कर पकड़ लिया। उस असुर का गला घुट गया। वह निश्चेष्ट हो गया और अलौकिक बालक को नीचे न फेंक सका। उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। वह निष्प्राण हो आकाश से नीचे चट्टान पर गिर पड़ा और उसका एक-एक अंग चकनाचूर हो गया गोप और गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण को मृत असुर के वक्षःस्थल पर सकुशल एवं प्रसन्न देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए और शिशु को उठा कर माता को दे आये।

यशोदा को विश्वरूप-दर्शन

एक दिन की बात है। यशोदा अपने बच्चे को गोद में ले कर स्तनपान करा रही थीं और बार-बार उनके मुख का चुम्बन ले रही थीं। ठीक उसी समय बालक ने जंभाई ली। जब बालक ने मुख खोला तो माता ने सारे ब्रह्माण्ड को उसके अन्दर देखा । उन्होंने देखा कि उसमें आकाश, अन्तरिक्ष, सूर्य, चन्द्रमा, तारा गण, दिशाएँ, अग्नि, वायु, महासागर, महाद्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन तथा विश्व के समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं।

यशोदा अपने पुत्र के मुख में सारा जगत् देख कर भय से काँप उठीं और उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये। वे आश्चर्यचकित रह गयीं।

नामकरण-संस्कार

श्री गर्गाचार्य यदुवंशियों के पुरोहित थे। वसुदेव के अनुरोध पर वे एक दिन नन्द बाबा के गोकुल में आये। नन्द बाबा ने उनका यथायोग्य सत्कार कर कहा, "आप वेदों में पारंगत हैं। आपने ज्योतिष शास्त्र की रचना की है; अतः इन दोनों बालकों का नामकरण संस्कार आप ही कर दीजिए।" श्री गंगाचार्य ने उत्तर दिया, "मैं नन्द यदुवंशियों के आचार्य के रूप में प्रसिद्ध हूँ। यदि मैं तुम्हारे पुत्र का नामकरण-संस्कार करूँगा, तो कंस तुम्हारे पुत्र

पर देवकी का आठवाँ पुत्र होने का सन्देह करेगा।" बाबा ने इसे गुप्त रखने का वचन दिया। श्री गर्गाचार्य ने एक एकान्त और शान्त स्थान में नामकरण संस्कार कर दिया।

गर्गाचार्य ने कहा: "रोहिणी का पुत्र अपने गुणों से अपने मित्रों एवं सम्बन्धियों को आनन्दित करेगा; इसलिए इसका नाम 'राम होगा। अपने अनन्त बल के कारण इसका नाम 'बल' होगा। यह यादवों के सारे पारस्परिक भेद को दूर कर सबको संगठित करेगा; अतः इसका नाम 'संकर्षण' भी होगा। यह श्याम वर्ण का बालक प्रत्येक युग में मानव-शरीर धारण करता है। शुक्ल, रक्त और पीत—इन तीनों रंगों में तो यह आ चुका था। अब यह कृष्ण-वर्ण हुआ है, इसलिए इसका नाम 'कृष्ण' होगा। तुम्हारे पुत्र के और भी बहुत से नाम तथा रूप हैं। यह तुम लोगों का कल्याण करेगा। यह तुम्हारी सब विपत्तियों से रक्षा करेगा। तुम सारी कठिनाइयों पर पूर्णतः विजय प्राप्त करोगे। यह समस्त गोपों, गौओं और गोकुल को भी अत्यन्त आक्रन्दित करेगा । नन्द जी! तुम्हारा यह पुत्र गुण में, कीर्ति में, बल में, ऐश्वर्य में साक्षात् भगवान् नारायण के समान है।"

बाल-लीला

श्रीकृष्ण अब बहुत नटखट हो गये। गोपियों के बछड़ों को गाय दुहने के समय से पूर्व ही खोल देते थे। वे दूध, दही तथा मक्खन चुरा चुरा कर खा जाते थे और जो बचा रहता, उसे बन्दरों को बाँट देते थे। यदि वे भी न खाते तो वह मटकों को ही फोड़ डालते। छींकों पर टँगे हुए बरतनों में छेद कर देते थे कि उनमें क्या है। वस्तु का पता लग जाने पर यदि उनके हाथ वहाँ तक न पहुँच पाते, तो उस तक पहुँचने के लिए वे उनके नीचे ऊखल रख देते और उस पर चढ़ जाते थे। अँधेरे घरों में अपने शरीर की ज्योति तथा आभूषणों की दमक से अपना काम चला लेते थे ।

एक समय की बात है। एक गोपी ने श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और उनकी करतूत का उलाहना देने माता यशोदा के पास चल पड़ी; परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण मार्ग में चमत्कारी ढंग से उसके हाथों से बच निकले। अदृश्य बालक को अपनी माँ के पास देख कर वह बहुत लज्जित हुई और अपने घर वापस चली गयी।

एक दिन बलराम तथा अन्य ग्वाल-बालों ने यशोदा से शिकायत की कि श्रीकृष्ण ने मिट्टी खायी है। यशोदा डर गयीं, इससे श्रीकृष्ण के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न हो। उन्होंने श्रीकृष्ण को फटकारते हुए कहा, "क्यों रे नटखट तूने छिप कर मिट्टी क्यों खायी ?" श्रीकृष्ण ने कहा, "माँ, मैंने मिट्टी नहीं खायी। इन लड़कों ने झूठ कहा है। मेरा मुँह देख लो।" यशोदा ने कहा, "अच्छा तो मुँह खोल ।" श्रीकृष्ण ने अपना मुँह खोल दिया। यशोदा ने उनके मुख में चर-अचर सम्पूर्ण जगत्, आकाश, दिशाएँ, पर्वत, महाद्वीप, समुद्र, सारी पृथ्वी, वायु, अनि, सूर्य, चन्द्रमा और तारे, सप्तद्वीप, नक्षत्र, देवता, मन- इन्द्रिय, तीनों गुण तथा पंचतन्मात्राएँ, जीव, काल, स्वभाव, कर्म और उनकी वासना, वृन्दावन और अपने-आपको भी देखा। वे आश्चर्य में पड़ कर सोचने लगीं कि यह कोई स्वप्न है या भगवान् की माया का विचित्र दर्शन या मेरे इस पुत्र में ही कोई जन्मजात योग-सिद्धि है। उन्होंने कहा, "मैं प्रभु को प्रणाम करती हूँ। मैं उन्हीं प्रभु की शरण में हूँ जिनकी माया यह भ्रम बुद्धि उत्पन्न करती है ये नन्द हैं; ये मेरे पति

है; यह मेरा पुत्र है; मैं यशोदा हूँ; यह सब मेरा है।" यशोदा को वास्तविक तत्त्व का ज्ञान हो गया; किन्तु भगवान् की योगमाया से इस घटना की स्मृति जाती रही। वे श्रीकृष्ण को पुनः अपना पुत्र समझने लगीं और उन्हें अपनी गोदी में उन्होंने उठा लिया।

श्रीकृष्ण का बाँधा जाना

एक दिन यशोदा स्वयं ही दही मथ रही थीं और साथ ही अपने पुत्र की बाल लीलाएँ भी गा रही थीं। उसी समय श्रीकृष्ण माता के पास आये और स्तनपान करना चाहा। उन्होंने मथानी पकड़ ली और उन्हें मथने से रोक दिया। यशोदा ने उन्हें गोद में उठा लिया और अपने लाल को स्तनपान कराने लगीं। इतने में ही अँगीठी पर रखे हुए दूध में उफान आ गया। वे बालक को अतृप्त अवस्था में ही भूमि पर बैठा कर शीघ्रता से दूध उतारने चली गयीं। श्रीकृष्ण को इससे बहुत क्रोध आया। अपने ओठों को दाँतों से चबाते हुए उन्होंने दही के मटके को एक पत्थर से फोड़ डाला और दूसरे में जा कर चुपके से माखन खाने लगे।

थोड़ी देर बाद जब यशोदा लौट कर आयी तो देखा कि दही का मटका चूर-चूर हो कर पड़ा है। श्रीकृष्ण तो वहाँ से पहले ही चले गये थे। यशोदा तुरन्त समझ गयी कि यह सब उनके ही पुत्र की करतूत है। उधर वे उल्टे हुए ऊखल पर खड़े हो कर छींके पर रखे हुए बरतनों का सामान बन्दरों को खूब लुटा रहे हैं। यशोदा हाथ में छड़ी लिये हुए चुपके से उनके पास जा पहुँचीं। श्रीकृष्ण झट से ऊखल पर से कूद पड़े और डर कर भागे। यशोदा उनके पीछे दौड़ी और अन्ततः उन्हें पकड़ ही लिया। उन्होंने छड़ी फेंक दी और रस्सी से उन्हें ऊखल से बांधने की कोशिश में लग गयी; किन्तु जब वे उन्हें बाँधने लगीं, तब वह रस्सी कुछ इंच छोटी रह गयी। तब उन्होंने दूसरी रस्सी ला कर उसमें जोड़ी। जब वह भी छोटी हो गयी तो उसमें एक दूसरी रस्सी फिर जोड़ी। वे बार-बार रस्सी जोड़ती ही गयीं और रस्सी बराबर छोटी ही पड़ती गयी। यशोदा आश्चर्यचकित हो गयीं।

श्रीकृष्ण ने देखा कि उनकी माँ थक कर चूर हो गयी हैं और उनका शरीर पसीने से लथपथ हो गया है। उन्हें उन पर दया आयी और स्वयं ही बन्धन में बंध गये।

यमलार्जुन वृक्ष

यशोदा जी घर के काम-काज में लग गयीं। उधर श्रीकृष्ण ने यमलार्जुन वृक्ष को मुक्ति देने की सोची, जो पूर्व जन्म में कुबेर के पुत्र थे और जिनके नाम नलकूबर तथा मणिग्रीव थे। उनके पास अमित धन, सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य था; किन्तु उनके अभिमान के कारण देवर्षि नारद ने उन्हें शाप दे कर वृक्ष बना दिया था।

कुबेर के वे दोनों पुत्र एक बार गन्धर्व कन्याओं के साथ नग्न हो कर एक नदी में जल-क्रीड़ा कर रहे थे। संयोगवश नारद उस मार्ग से आ निकले। वे अप्सराएँ अपनी वस्त्रहीनता पर लज्जित हुईं और शाप के भय से

अपने-अपने कपड़े झटपट पहन लिये. किन्तु उन दोनों यक्षों ने परवाह न की; अतः देवर्षि नारद ने अपना शाप दिया, "कुबेर के ये दोनों पुत्र बहुत ही मूर्ख तथा अभिमानी हैं, अतः ये वृक्ष हो जायें; किन्तु मेरी कृपा से इनकी स्मृति बनी रहेगी और देवताओं के सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर श्रीकृष्ण के स्पर्श से इनका उद्धार होगा।" कुबेर के वे दोनों पुत्र वृन्दावन में यमलार्जुन वृक्ष हो गये।

भगवान् श्रीकृष्ण ऊखल घसीटते हुए यमलार्जुन वृक्ष के निकट पहुँचे और दोनों वृक्षों के मध्य में खड़े हो कर उन्हें उखाड़ फेंका। वे धड़ाके की आवाज के साथ पृथ्वी पर गिर पड़े। उन वृक्षों में से दो सिद्ध निकले और अपनी आभा से उस स्थान को प्रकाशित कर दिया। उन्होंने भगवान् की स्तुति की और आकाश मार्ग को गमन किया।

भयंकर शब्द सुन कर गोप-गोपिकाएँ उस स्थल पर आ पहुँची और उन्होंने अर्जुन के दोनों वृक्षों को पृथ्वी पर गिरे हुए पाया। लड़कों ने जो-कुछ देखा था, उन्हें कह सुनाया। उन्होंने कहा, "यह सब श्रीकृष्ण की करतूत है। इन्होंने एक धक्का दिया और दोनों वृक्ष धड़ाके के साथ गिर पड़े। हमने तो इन वृक्षों से दो पुरुष भी निकलते हुए देखे।" परन्तु गोप-गोपिकाओं ने बालकों की बात का विश्वास नहीं किया। उन्होंने सोचा कि यह सम्भव नहीं कि एक नन्हा सा बच्चा दो वृक्षों को उखाड़ डालें; अतः वे सब आश्चर्यचकित से थे।

फल बेचने वाली

एक दिन श्रीकृष्ण ने एक स्त्री को पुकारते हुए सुना, "फल लो, फल।" यद्यपि वे समस्त कर्म और उपासनाओं के फल देने वाले स्वयं भगवान् हैं; पर उन्होंने झट से मुट्ठी भर अनाज लिया और उससे फल लेने दौड़ पड़े। फल बेचने वाली ने उनके दोनों हाथों को फलों से भर दिया और बदले में अनाज ले कर टोकरी में रख दिया। उसकी टोकरी रत्नों से भर गयी।

वृन्दावन

उपनन्द नाम के एक बुद्धिमान् गोप ने अन्य गोपों से कहा, "अब गोकुल में रहना किसी भी तरह सुरक्षित नहीं है। बहुत से उत्पात हो चुके हैं। हम लोगों के बालकों के लिए बड़ा भय है। यह बालक श्रीकृष्ण बड़ी कठिनाई से पूतना के चुंगल से बचा । भगवान् की कृपा से ही गाड़ी इसके ऊपर नहीं गिरी। असुर इसे आकाश में उठा ले गया और वहाँ से चट्टान पर गिरा; फिर देवताओं ने इसकी रक्षा की। अच्युत ने ही इसकी रक्षा की जब इस

पर वृक्ष गिरे। अपने बच्चों और अनुचरों को ले कर आज ही हम लोग वृन्दावन के लिए चल पड़ें। गोप, गोपी और पशुओं के लिए वही उपयुक्त स्थान है। वहाँ बड़ी ही सुन्दर पहाड़ियाँ, हरे-भरे मैदान तथा लता वनस्पतियाँ हैं। "

सभी गोपों ने एक स्वर से समर्थन करते हुए कहा, "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।" वे सब वृन्दावन चल पड़े। बलराम तथा श्रीकृष्ण गोवर्धन, वृन्दावन तथा यमुना के तट को देख कर बहुत प्रसन्न हुए। वे ग्वाल-बालों के साथ बछड़े चराते और सामान्य बालकों की भाँति दूसरे बच्चों के संग खेलते थे ।

वत्सासर से मुक्ति

एक दिन की बात है। श्रीकृष्ण तथा बलराम अन्य ग्वाल-बालों के साथ यमुना के तट पर बछड़े चरा रहे थे तथा खेल रहे थे। एक दैत्य बछड़े का रूप धारण कर उनके झुण्ड में मिल गया। श्रीकृष्ण तथा बलराम को मारने की उसके मन में कुभावना थी। श्रीकृष्ण ने अपने बछड़ों के मध्य उस वत्सरूपधारी असुर को पहचान लिया औरभगवान् श्रीकृष्ण बलराम को उसकी ओर संकेत किया। उसके पश्चात् चुपके से उसके पास पहुंच कर उसके पिछले पैर तथा पूँछ पकड़ ली और उसे अपने शिर के ऊपर घुमा कर एक वृक्ष पर दे पटका। दैत्य मर गया। ग्वाल-बाल 'वाह-वाह कह कर श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने लगे तथा देवताओं ने उनके ऊपर पुष्प वर्षा की।

बकासुर से मुक्ति

एक दिन ग्वाल-बाल एक जलाशय में जल पीने गये। वहाँ उन्होंने बक के रूप में एक बहुत बड़े भयानक राक्षस को देखा जो कंस का मित्र था। वह राक्षस श्रीकृष्ण पर अपनी कठोर चोंच से चोट करने के लिए अचानक झपटा। श्रीकृष्ण ने उसके दोनों ठोरों को अलग कर तिनके की तरह फाड़ डाला। इससे देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की।

अघासुर से मुक्ति

एक दिन श्रीकृष्ण जब दूसरे बालकों के साथ खेल रहे थे, कंस की प्रेरणा से पूतना और बकासुर का छोटा भाई अघासुर महाराक्षस आया। अमृत पान कर अमर हुए देवता भी अघासुर से भयभीत रहते थे। अघासुर ने सोचा, "यही मेरे भाई और बहन को मारने वाला है। अब मैं श्रीकृष्ण को बलराम तथा उसके साथियों के साथ मार कर बदला लूंगा।"

दुष्ट असुर ने विशाल अजगर का रूप धारण कर लिया, जो एक योजन लम्बा और विशाल पर्वत के समान मोटा था। उसके खुले हुए मुख का एक जबड़ा बादलों को और दूसरा पृथ्वी को स्पर्श कर रहा था। उसने श्रीकृष्ण तथा उनके साथी बालको को निगल जाने के लिए अपना मुँह गुहा के समान फाड़ रखा था। सारे बालक

ताली पीट-पीट कर हँसते हुए बछड़ों के साथ अघासुर के मुँह में घुस गये; परन्तु उसने अपना मुँह बन्द नहीं किया। वह मुँह खोले हुए श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहा था। श्रीकृष्ण भी उस सर्प के मुँह में घुसे और अपना शरीर उसके गले के भीतर इतना विस्तीर्ण कर लिया कि उस असुर की मृत्यु हो गयी। श्रीकृष्ण ने ग्वाल-बालों तथा बछड़ों को नया जीवन प्रदान किया और उन सबको साथ ले कर असुर के मुख से बाहर निकल आये। उस सर्प के स्थूल शरीर से एक तेजस्वी ज्योति निकली और श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश कर गयी।

ब्रह्मा का मोह

श्रीकृष्ण उन ग्वाल-बालों को यमुना तट पर ले गये, जहाँ सबने जल-पान किया। इतने में बछड़े कहीं भटक गये और उनका पता न चल सका। बालकों को भय हुआ और वे ढूँढ़ने के लिए उठने लगे। श्रीकृष्ण ने उन्हें रोका और कहा कि वह स्वयं ढूँढ लायेंगे और ढूँढने चल दिये। ब्रह्मा ने वहाँ आ कर बछड़ों को और ग्वाल-बालों को किसी अन्य सुरक्षित स्थान में रख दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये ।

बछड़े न मिलने पर श्रीकृष्ण यमुना के तट पर वापस आ गये। वहाँ उन्होंने देखा कि ग्वाल-बाल भी चले गये हैं। वे तुरन्त ताड़ गये कि यह सब ब्रह्मा की करतूत है। भगवान् ने बछड़ों और ग्वाल-बालों की माताओं को और ब्रह्मा को भी आनन्दित करने के लिए स्वयं बछड़ों और ग्वाल-बालों का रूप धारण कर लिया। सभी बछड़े तथा ग्वाल-बाल ठीक पहले के जैसे ही थे। माताएँ अब अपने पुत्रों से अधिक स्नेह करने लग; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण उनके पुत्र बन गये थे। गायें भी अपने बछड़ों के प्रति अब असाधारण प्रेम दिखलाती थीं।

श्रीकृष्ण इसी भाँति एक वर्ष तक अनेक रूप की लीला करते रहे। जब एक वर्ष होने में केवल पाँच-छह दिन शेष थे, तब एक दिन बलराम ने देखा कि गौएँ पूरा गोवर्धन पर्वत के शिखर पर घास चर रही थीं। वहाँ से ब्रज के पास अपने बछड़ों को चरते हुए देख कर वे अत्यन्त वात्सल्य स्नेह के कारण अपने बछड़ों की ओर ऐसे मार्ग से दौड़ पड़ीं जो मनुष्य और पशु के लिए दुर्गम था। उनके थनों से दूध बह रहा था। ऐसी गायें, जो नये बछड़ों को जन्म दे चुकी थीं, भी अपने पहले बछड़ों के पास दौड़ आयीं और उन्हें दूध पिलाने लगीं। बलराम ने यह भी देखा कि व्रजवासी अपनी सन्तान पर अब अधिक स्नेह करने लगे हैं। वे सोचने लगे, "मैंने आज तक गायों तथा बछड़ों और वह भी ऐसे बछड़ों, जिन्होंने अपनी माँ का दूध पीना बहुत दिनों से छोड़ दिया है, में ऐसा अगाध प्रेम कभी भी नहीं देखा है। व्रजवासी भी अपने पुत्रों को श्रीकृष्ण से अधिक प्रेम करने लगे हैं। अवश्य ही वह भगवान् श्रीकृष्ण की योगमाया है।" बलराम ने ज्ञान दृष्टि से देखा तो समझ गये कि ये बछड़े और बालक भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं।

तब उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा, "भगवन्! ये ग्वाल-बाल और बछड़े न देवता है और न कोई ऋषि ही। ये सब आपके सदृश्य ही लगते हैं। हे कृष्ण! इसका क्या रहस्य है? कृपा करके समझाइए ।" तब श्रीकृष्ण ने घटना कह सुनायी। उन्होंने ब्रह्मा की सब करतूत सुनायी और बलराम ने सब बातें जान लीं।

ब्रहमा व्रज को लौट आये और ग्वाल-बाल तथा बछड़ों को देखा। उन्होंने श्रीकृष्ण को एक वर्ष पहले की भाँति ही ग्वाल-बाल और बछड़ों के साथ क्रीड़ा करते हुए पाया, जिन्हें ब्रहमा ने अपनी माया के अधीन कर रखा था तथा जिन्हें भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी माया द्वारा रखा था, वे इन दोनों में कोई भेद न कर सके। ब्रहमा भगवान् को मोहित करना चाहते थे; किन्तु वे स्वयं ही मोहित हो गये। सभी ग्वाल-बाल तथा बछड़े श्रीकृष्ण के रूप में उन्हें दिखायी पड़ने लगे। वे सब-के-सब श्याम वर्ण, पीताम्बरधारी तथा दिव्य अस्त्र युक्त चतुर्भुज थे। सभी शिर पर मुकुट तथा कुण्डल आदि धारण किये थे। इस आश्चर्यमय दृश्य को देख कर ब्रहमा चकित और स्तब्ध से हो गये। श्रीकृष्ण ने अपनी माया का आवरण हटा लिया। ब्रहमा सचेत हो उठे और उन्होंने अकेले श्रीकृष्ण को बालकों एवं बछड़ों को खोजते हुए देखा।

सजल नेत्र ब्रहमा भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में बार-बार गिरे और उनकी स्तुति की।

धेनुकासुर का उद्धार

बलराम तथा श्रीकृष्ण के प्रधान सखा श्रीदामा तथा सुबल और स्तोक इत्यादि ने श्रीकृष्ण और बलराम से कहा, “यहाँ से थोड़ी दूर ताड़ का एक विशाल वन है। उसका सौन्दर्य अवर्णनीय है । वहाँ कतार के कतार पके फल से लदे ताड़ के वृक्ष हैं। परन्तु उसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता; क्योंकि धेनुक नाम का दैत्य अपने अन्य साथियों के साथ लोगों को वन में प्रवेश करने से रोकता है। उसका गधे का सा रूप है। उसने अब तक कितने ही मनुष्य मार डाले; अतः उसके डर से लोग वहाँ नहीं जाते । उन फलों की सुगन्धि हमें यहाँ तक आ रही है। वे मन को बहुत आकर्षित करते हैं। हम उन्हें चखना चाहते हैं।"

बलराम निर्भय हो कर जंगल में घुस पड़े और वृक्षों को जोर से हिलाया, जिससे बहुत से फल वृक्षों से नीचे आ गिरे। फलों के गिरने का शब्द सुन कर वह दैत्य दौड़ आया और अपने पिछले पैरों से बलराम की छाती पर जोर से आघात किया। बलराम ने उस गधे के पिछले दोनों पैर पकड़ लिये और आकाश में घुमा कर एक विशाल ताड़ के पेड़ पर दे पटका। असुर की मृत्यु हो गयी। तब धेनुक के सभी भाई-बन्धु बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों पर टूट पड़े; किन्तु वे सभी श्रीकृष्ण और बलराम द्वारा मारे गये। बलराम और श्रीकृष्ण के सखाओं ने भर-पेट फल खाये। धेनुक और उसके साथियों की मृत्यु के पश्चात् लोग निर्भय हो कर उस वन में जाने लगे और पशु भी स्वतन्त्रतापूर्वक घास चरने लगे।

बालक तथा गौओं की विष से रक्षा

एक दिन श्रीकृष्ण बलराम के अतिरिक्त अन्य सखाओं के साथ वृन्दावन के जंगल में विचरण करते हुए यमुना तट पर जा पहुंचे। ग्रीष्म के ताप से सन्तप्त होने के कारण ग्वाल-बाल, गौएँ तथा बछड़े बहुत ही प्यासे हो गये थे; इसलिए उन्होंने यमुना का विषैला जल पी लिया। जल के पीते ही वे सब यमुना-तट पर प्राणहीन हो कर गिर पड़े। श्रीकृष्ण ने अपनी अमृत-प्रदायिनी दृष्टि द्वारा सबको पुनर्जीवित कर दिया। चेतना प्राप्त होने पर सब-के-सब यमुना तट पर उठ खड़े हुए और आश्चर्यचकित हो कर एक-दूसरे को देखने लगे। उन्हें ज्ञात हो गया कि यमुना के विषाक्त जल के पान से वे सब मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे; पर श्रीकृष्ण ने अपनी अनुग्रहपूर्ण दृष्टि से उन सबको नवजीवन प्रदान किया।

कालिय पर कृपा

पहले गरुड़ सर्पों को खाया करते थे; अतः सर्पों ने गरुड़ से यह समझौता कर लिया कि प्रत्येक मास की शुक्ल पक्ष की द्वितीया को निर्दिष्ट वृक्ष के नीचे उन्हें एक सर्प की बलि दी जायेगी। सभी सर्प गरुड़ को अपना-अपना भाग देते रहते थे। गरुड़ भी इस व्यवस्था से बहुत प्रसन्न थे। किन्तु कद्र के पुत्र कालिय को अपने बल पर अति-अभिमान था। अतएव उसने गरुड़ को कोई भेंट नहीं की, अपितु अन्य के भेंट किये हुए को भी उठा ले जाता था। गरुड़ ने क्रुद्ध हो कर उस पर आक्रमण किया जिसमें कालिय की हार हुई। उसने यमुना कुण्ड में जा कर शरण ली।

एक बार गरुड़ ने उस कुण्ड से एक मछली पकड़ी और उसे खाने ही वाले थे कि सौभरि ऋषि ने कहा, "हे गरुड़! इस मछली को न खाओ।" गरुड़ ने ऋषि की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। अन्य मछलियों के रुदन से ऋषि का हृदय द्रवीभूत हो गया। अतः सब मछलियों की रक्षा के लिए ऋषि ने गरुड़ को शाप दे दिया कि यदि उसने फिर कभी इस कुण्ड में प्रवेश किया तो उसकी मृत्यु हो जायेगी।

कालिय को इस बात का ज्ञान था; अतः अपने परिवार के साथ उसने इस कुण्ड में शरण ली।

श्रीकृष्ण ने देखा कि महाविषधर कालिय नाग ने यमुना का जल विषैला कर दिया है। जल को शुद्ध करने के विचार से उन्होंने वहाँ से सर्प को निकालना चाहा। श्रीकृष्ण अपनी कमर में फैटा कस कर एक ऊंचे कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये और उस कुण्ड के जल में कूद पड़े। नाग ने भयंकर रूप से श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया और उनके मर्म स्थानों में दंशन कर अपने पाश में उन्हें पूर्णतया जकड़ लिया। गायें:क्रन्दन करने लगी। ग्वाल-बाल मूर्च्छित हो कर गिर पड़े। नन्द बाबा और गोप श्रीकृष्ण की खोज में निकल पड़े। उन्हें बलवान् नाग के शरीर से जकड़ा देख कर व फूट-फूट कर रोने लगे।

श्रीकृष्ण ने अपने को नाग के पाश से छुड़ा लिया और उससे क्रीड़ा करने लगे। वे उसके शिर पर चढ़ गये और नृत्य करने लगे। उसके एक सहस्र शिर थे जिनमें सौ मुख्य थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने चरणों से उसके प्रत्यक शिर को रौंद डाला। • उसका शरीर चूर-चूर हो गया और मुँह से खून की उल्टी होने लगी। सर्प ने भगवान्

की शरण ली। नाग-पत्नियों ने श्रीकृष्ण की स्तुति की और अपने पति के प्राण-दान की याचना की। भगवान् ने नृत्य बन्द कर दिया और धीरे-धीरे कालिय को चेतना आ गयी।

श्रीकृष्ण ने कहा, “सर्प। अब तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिए। तू अपनी स्त्री और सम्बन्धियों-सहित शीघ्र ही यहाँ से समुद्र में चला जा। अब गौएँ और मनुष्य यमुना के जल का उपभोग करें। मैं जानता हूँ कि तू गरुड़ के भय से रमणक द्वीप छोड़ कर इस दह में आ बसा था; किन्तु अब तुम्हारे शिर पर मेरे चरण-चिह्न अंकित हैं, गरुड़ तुम्हें स्पर्श नहीं करेगा।" तत्पश्चात् कालिय ने अपनी पत्नियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवों के साथ रमणक द्वीप को प्रस्थान किया और यमुना का जल अमृत के समान हो गया।

दावानल-पान

ग्रीष्म के प्रचण्ड ताप से वन सूख गया था। अर्ध-रात्रि को वन में अचानक भयंकर अग्नि लग गयी और उसने व्रजवासियों को चारों ओर से घेर लिया। वह उन्हें जलाने लगी। वे सब श्रीकृष्ण की शरण में गये। उन्होंने आर्त स्वर में कहा, "हम आपसे प्रार्थना करते हैं। कृपा करके इस प्रलय की अपार आग से हमें बचाओ! हम मृत्यु से नहीं डरते; पर हम आपके चरण-कमलों को नहीं त्याग सकते।"

श्रीकृष्ण अपने भक्तों की असहायावस्था को देख कर उस भयंकर अग्नि का पान कर गये। भगवान् श्रीकृष्ण में अनन्त शक्ति है। उनके लिए यह कौन-सी आश्चर्य की बात है।

प्रलम्बासुर

एक दिन राम, श्याम तथा दूसरे ग्वाल-बालों ने अपने को रक्तप्रवाल, शिखीपुच्छ तथा सुन्दर वन-पुष्पों से सजा लिया। कुछ ने नृत्य आरम्भ किया तो कुछ ने संगीत अलापना। प्रलम्ब नाम का एक असुर ग्वाल के वेष में बालकों में घुस गया। श्रीकृष्ण तथा बलराम—दोनों को हर ले जाने की उसकी इच्छा थी। सर्वज्ञ श्रीकृष्ण उसे पहचान गये, फिर भी उसका वध करने के विचार से उससे मैत्री का नाटक किया। श्रीकृष्ण ने प्रस्ताव किया, “मित्रो! हम लोग अपने को दो दलों में बाँट लें और फिर खेलें।" अतः ग्वाल-बाल दो भागों में विभक्त हो गये। एक दल ने बलराम को अपना नेता बनाया तथा दूसरे ने श्रीकृष्ण को । पराजित दल को विजेता दल के खिलाड़ियों को अपनी पीठ पर चढ़ा कर एक निर्दिष्ट स्थान तक ले जाना होता था।

खेल में एक बार बलराम के दल वाले श्रीदामा, वृषभ आदि ग्वाल-बाल विजयी हुए, इसलिए श्रीकृष्ण ने दामा को, भद्रसेन ने वृषभ को और प्रलम्ब ने बलराम को अपनी पीठ पर चढ़ाया और ले चले। प्रलम्ब बलराम को ले कर निर्दिष्ट स्थान से आगे भागता चला गया। बलराम को सन्देह हुआ। अब प्रलम्ब ने अपना विशाल रूप धारण कर लिया। बलराम ने उसके शिर में एक मजबूत घूँसा मारा और उसका शिर चूर-चूर हो गया। असुर मुँह से

खून उगलने लगा और प्राणहीन हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। ग्वाल-बालों को बहुत ही आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे, "वाह-वाह ! शाबाश, शाबाश!"

दावानल

भाण्डीर वन में गौएँ भटक गयीं और अकस्मात् वन में प्रचण्ड दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी। ग्वाल-बाल भगवान् श्रीकृष्ण के शरणापन्न हो कहने लगे, "हे प्रिय कृष्ण ! हम आपके चरणों में शरणागत हैं। दावाग्नि हम सबको भस्म करना चाहती है। आप अनन्त शक्ति के स्वामी हैं। कृपया हम सबकी रक्षा करें। आप ही हमारे एकमात्र प्रभु हैं। हमें आपका ही भरोसा है।"

श्रीकृष्ण ने कहा, "प्रिय सखे! घबराओ नहीं, तुम अपनी आँखें बन्द कर लो।" सब बालकों ने अपने नेत्र मूँद लिये। श्रीकृष्ण के कहने पर जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं, तो अपने को पुनः भाण्डीर वन के पास पाया। अपनी सभी गौओं को दावाग्नि से सुरक्षित देख कर ग्वाल-बाल विस्मित हुए। श्रीकृष्ण की योग-शक्ति एवं दावानल से अपनी रक्षा को देख कर बालकों ने समझा कि श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य नहीं हैं, अपितु साक्षात् अविनाशी भगवान् हैं।

वेणुगीत

शरद ऋतु के कारण वन बहुत रमणीक एवं आकर्षक था। जल निर्मल था। मन्द मन्द वायु चल रही थी। भगवान् श्रीकृष्ण ने बलराम, ग्वाल-बाल और गोओं के साथ उस मनोरम दृश्य का आनन्द लेने के लिए उस वन में प्रवेश किया और अपनी बाँसुरी पर मधुर तान छेड़ी। गोपियाँ वंशी-ध्वनि सुन कर अपनी सुध-बुध खो बैठीं। बाँसुरी का संगीत सबके चित्त को चुरा लेता था।

किसी गोपी ने कहा, "इस बाँसुरी ने पूर्व जन्म में अवश्य ही पुण्य-कर्म किया है जिससे यह श्रीकृष्ण का अधरामृत पान करती रहती है। जिस जल ने इसका पोषणा किया, वह भी आनन्द से पुलकित हो रहा है और जिसके यहाँ इसने जन्म ग्रहण किया. वह वृक्ष भी मधुधारा के रूप में आनन्दाश्रु बहा रहा है, जैसे भक्त जन अपने वंश में भगवत्प्रेमी सन्तान उत्पन्न होने पर बहाया करते हैं।"

दूसरी गोपी ने कहा, "यह वृन्दावन तो पृथ्वी की कीर्ति का विस्तार वैकुण्ठलोक तक कर रहा है; क्योंकि इसे भगवान् के चरण-चिह्न से चिह्नित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्रीकृष्ण के चरण-कमल के स्पर्श से वृन्दावन कितना शोभायमान लग रहा है! पृथ्वी पर वृन्दावन के सदृश अन्य कोई स्थल नहीं ।

"जब श्रीकृष्ण मनमोहिनी वंशी बजाते हैं, तब मोर उसे मेघ-सी मन्द-मद गरज समझ मतवाले हो कर उसकी तान पर नृत्य करते हैं। दूसरे पशु-पक्षी भी बाँसुरी की ध्वनि सुनते ही चुपचाप शान्त हो कर खड़े हो जाते हैं। वंशी की तान मृग भी सुनते हैं और अपनी प्रेम-भरी चितवन उन पर निछावर कर देते हैं। देवांगनाएँ भी संगीत से

आत्म-विभोर हो अपनी बाह्य चेतना खो बैठती हैं। गौएँ भी अपने कान खड़े कर संगीत-सुधा का पान करतीं तथा आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रों से स्थिर खड़ी रहती हैं। बछड़े मुँह में माँ का दूध लिये ही उत्सुकतापूर्वक वंशी के संगीत को सुनने लगते हैं। पक्षी भी वृक्षों पर ऊँचे बैठ कर चुपचाप वंशी का मोहक संगीत सुनते रहते हैं। नदियों की भँवरे भी श्रीकृष्ण से मिलने की अपनी तीव्र आकांक्षा प्रकट कर रही हैं। नदियाँ भी श्रीकृष्ण के प्रति अपना प्रेम व्यक्त करती हैं। वे श्रीकृष्ण के मधुर संगीत को सुनने के लिए अपने प्रवाह को रोक देती हैं। वे अपनी तरंगों के हाथों से श्रीकृष्ण के चरणों पर पद्म-पुष्प चढ़ा कर उनके चरणों का आलिंगन करने के लिए पकड़ लेती हैं। तनिक आकाश में उन बादलों को तो देखो। उन्होंने श्रीकृष्ण के ऊपर अपने को इस प्रकार फैला दिया है। जैसे छाता । जब श्रीकृष्ण तप्त धूप में वंशी की तान छेड़ते हैं, तो ये बादल उन पर नन्हीं-नन्हीं फूहियों की-सी वर्षा करने लगते हैं जैसे कि नन्हें-नन्हें श्वेत कुसुम चढ़ा रहे हों और इस भांति अपने को ही उनके चरणों में न्योछावर कर देते हो।

"गिरिराज गोवर्धन के धन्य भाग हैं जिसकी तलहटी में श्रीकृष्ण गौएँ चराते हैं और यह उन्हें स्वादिष्ट कन्द-मूल, फल और पीने के लिए स्वच्छ जल भेंट करता है। यह वंशी क्या ही जादू करती है।"

श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन तथा उनका गुणगान करते-करते गोपियाँ आत्म-विस्मृत हो जाती थीं। वे श्रीकृष्ण में तन्मय हो गयी थीं।

चीरहरण

हेमन्त ऋतु का आगमन हुआ। नन्द बाबा के व्रज की कुमारियाँ कात्यायनी देवी की पूजा और व्रत करने लगीं। वे केवल हविष्यान्न ही ग्रहण करती थीं। वे प्रार्थना करती, "हे कात्यायनी ! हे सृष्टि संचालिका ! हे महायोगिनी । नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हमारे पति बनें। देवि! हम आपके चरणों में नमस्कार करती हैं।" उन्होंने एक महीने तक व्रत रखा। वे प्रतिदिन उषाकाल में ही यमुना में स्नान करती थीं। एक दिन उन्होंने अपने-अपने वस्त्र तट पर उतार दिये और स्नान के लिए जल में घुसी और श्रीकृष्ण के गुणों का गायन करती हुई बड़े आनन्द से जल-क्रीड़ा करने लगीं।

श्रीकृष्ण अपने सभी सखाओं के साथ उनकी साधना को सफल करने के लिए यमुना तट पर गये। उन्होंने उनके वस्त्र उठा लिये और झट से निकट के एक कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये और गोपियों से बाहर आ कर वस्त्र ले जाने के लिए कहा। गोपियों ने वैसा ही किया और श्रीकृष्ण ने उनके वस्त्र वापस कर दिये।

श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा, "हे धर्मशील पवित्र कुमारियो ! मैं तुम्हारे संकल्प को जानता हूँ। तुमने अपने व्रत का भली-भाँति पालन किया है। तुम मेरी पूजा करना चाहती हो। मैं तुम्हारी अभिलाषा का अनुमोदन करता हूँ। तुम सफल होगी। जिन्होंने अपने मन और प्राण मुझमें लगा रखे हैं, उनमें सांसारिक संकुचित कामनाएँ नहीं रह जातीं; क्योंकि जब मैं उनकी कामनाओं का विषय होता हूँ तो उनकी सारी कामनाएँ भस्म हो जाती हैं। जैसे भुने या उबाले हुए बीज फिर अंकुरित नहीं होते, वैसे ही मेरे प्रति की हुई कामनाएँ भी विषय-सुख उत्पन्न नहीं कर

सकतीं। अतः व्रज वापस जाओ। कात्यायनी देवी के पूजन का तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध हो गया। तुम सब आने वाली शरद ऋतु की रात्रियों में मेरे साथ विहार करना।"

श्रीकृष्ण तथा वैदिक यज्ञ

एक दिन की बात है, श्रीकृष्ण बलराम तथा ग्वाल-बालों के साथ वृन्दावन से बहुत दूर निकल गये। ग्रीष्म ऋतु थी। सूर्य की किरणें बहुत प्रखर हो रही थीं। वृक्षों ने छाया दी। श्रीकृष्ण ने कहा, "मेरे मित्रों! देखो ये वृक्ष कितने उदार हैं। ये दूसरे के लिए ही जीते हैं; झंझावात, वर्षा, धूप और तुषार-सब-कुछ सहन करते हैं। इनका ही जीवन सबसे श्रेष्ठ है। ये सबका पोषण करते हैं। जो कोई भी इनके पास जाये, उसे कुछ-न-कुछ अवश्य देते हैं; किसी को निराश नहीं लौटाते। ये अपने पत्ते, फूल, फल, जड़, छाल, सुगन्ध, रस, लकड़ी, कली, गोंद, राख, कोयला, कोपलें और छाया प्रदान कर सभी की कामनाओं को पूर्ण करते हैं। जो अपने धन से, ज्ञान से, वाणी से और प्राणों से दूसरों का भला करता है, केवल उसी प्राणी का जन्म सार्थक है।"

कुछ बालक क्षुधित हो श्रीकृष्ण के पास आये और उन्होंने कहा, "हमें भूख सता रही है, इसे बुझाने का कोई उपाय करें।" श्रीकृष्ण ने कहा, "मित्रो! यहाँ से थोड़ी ही दूर पर वेदवादी ब्राह्मण स्वर्ग की कामना से आंगिरस नाम का यज्ञ कर रहे हैं। उनकी यज्ञशाला में जाओ और हमारा नाम बतला कर उनसे कुछ भोजन माँग लाओ।"

ग्वाल-बाल यज्ञशाला में गये और ब्राह्मणों से भोजन माँगा; किन्तु ब्राह्मणों ने उनकी बात अनसुनी कर दी। उन्होंने श्रीकृष्ण को एक साधारण मनुष्य ही माना और उनकी प्रार्थना पर ध्यान न दिया। यज्ञ ही उनके लिए सब कुछ था; किन्तु उन्होंने यज्ञपति की ही अवहेलना की। वे अपने को श्रीकृष्ण से उच्च समझते थे। जब ब्राह्मणों ने 'हाँ' या 'ना' कुछ नहीं कहा, तब ग्वाल-बालों की आशा जाती रही; वे निराश हो कर लौट आये और श्रीकृष्ण से वृत्तान्त निवेदन किया। श्रीकृष्ण हँसते हुए बोले, "इस बार तुम इन ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाओ।" ग्वाल-बालों ने वैसा ही किया। सुनते ही वे स्त्रियाँ भाई-बन्धु तथा पति-पुत्रों के रोकते रहने पर भी सभी प्रकार की भोजन-सामग्री ले श्रीकृष्ण के पास उतावली से चल पड़ीं।

श्रीकृष्ण ने कहा, "सौभाग्यवती देवियो! तुम्हारा स्वागत है। आसन ग्रहण करो। हम तुम्हारी क्या सेवा करें? तुम सब केवल हमारे दर्शन की इच्छा से यहाँ आयी हो। मैं आत्मा हूँ । जो आत्मा को ही सब-कुछ समझते है, उनकी मुझमें अकारण अव्यभिचारिणी भक्ति होती है। प्राण, बुद्धि, मन, शरीर, स्त्री, पुत्र, स्वजन और धन आत्मा के लिए ही प्रिय होता है। उस आत्मा से अधिक प्रियंतर क्या हो सकता है ? अब तुम सब मेरे दर्शन कर चुकी अतः अपने-अपने पति के पास लौट जाओ। तुम्हारे साथ मिल कर उन्हें यज्ञ की आहुति देनी है।

ब्राह्मण-पत्नियों ने कहा, "हम सबने आपके चरणों की शरण ली है तथा अपने सगे-सम्बन्धियों का परित्याग कर दिया है। हमें आपके चरणों से गिरी हुई तुलसी की माला अपने केशों में धारण करने दें। अब हमारे

पति, पुत्र, भाई-बन्धु तथा सम्बन्धी हमें स्वीकार नहीं करेंगे। संसार के लोग हमारा तिरस्कार करेंगे। हमें और किसी का सहारा नहीं है। अब हम आपके चरणों में आ पड़ी हैं। अब आप ही हमें शरण में रखिए तथा अपनी दासी बनाइए।" श्रीकृष्ण ने कहा, "भाग्यवती देवियो! तुम अपने घर वापस जाओ। तुम्हारे पति, पुत्र, माता-पिता इत्यादि तुमसे अप्रसन्न नहीं होंगे। मनुष्य ही नहीं, देवता भी हमारे आदेश से तुम्हारे इस कार्य का अनुमोदन करेंगे। मैंने तुम सबको स्वीकार कर लिया है; अतः संसार तुम्हारी प्रतिष्ठा करेगा। मेरा अंग-संग ही मेरी प्रीति या अनुराग का कारण नहीं है। पूरे हृदय से तुम मेरा ध्यान करो। बहुत शीघ्र ही तुम्हें मेरी प्राप्ति होगी।"

वे ब्राह्मण पत्नियाँ यज्ञशाला में लौट गयीं। ब्राह्मणों ने उनके इस प्रकार के आचरण को कोई अपराध नहीं समझा। जब ब्राह्मणों को यह मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं, तब उन्हें अपने कृत्य पर बड़ा पछतावा हुआ। कंस के भय से वे वृन्दावन न जा सके। वे अपने घर में ही उपासना करते रहे।

इन्द्र- यज्ञ-निवारण

एक दिन श्रीकृष्ण ने देखा कि लोग इन्द्र-यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं। उन्होंने अपने पिता नन्द बाबा से पूछा, "पिता जी! यह कौन-सा बड़ा उत्सव आ पहुँचा है? इसका फल क्या है? किस उद्देश्य से, कौन से लोग तथा किन साधनों से यह यज्ञ किया करते हैं।”

नन्द बाबा ने कहा, "प्रिय पुत्र ! भगवान् इन्द्र मेघों के स्वामी हैं। उनकी पूजा करने से वे जल बरसाते हैं। वर्षा समस्त प्राणियों को जीवन-दान करती है। अतः लोग यज्ञों के द्वारा इन्द्र भगवान् की पूजा किया करते हैं। उनका यज्ञ करने के पश्चात जो अवशिष्ट रहता है, उसी अन्न से हम लोग अर्थ, धर्म और कामरूप त्रिवर्ग की सिद्धि के लिए अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। हम लोगों के पुरुषार्थ का फल देने वाले इन्द्र ही हैं।"

श्रीकृष्ण ने कहा, "पूज्य पिता जी। प्राणी अपने कर्म के अनुसार ही जन्म लेता है और अपने कर्म के अनुसार ही मर जाता है। मनुष्य के अपने कर्म द्वारा ही उसके जन्म-मृत्यु का निर्धारण होता है। सुख-दुःख, भय, मंगल-ये सब कर्म के ही विपाक हैं। यदि जीवों को कर्म-फल देने वाला कोई भगवान् है, तो वह भी कर्म के अनुसार ही फल दे सकता है। वह अपने-आप कुछ नहीं कर सकता। जब मनुष्य अपने कर्मानुसार ही फल भोगता है, तब हमें इन्द्र की क्या आवश्यकता है? भला इन्द्र उन जीवों का क्या कर सकता है जो अपने कर्मों के अनुसार ही फल भोग रहे हैं? वह पूर्व-संस्कार के अनुसार प्राप्त होने वाले मनुष्यों के कर्म-फल को, नियति द्वारा निर्धारित उनके भाग्य को बदल नहीं सकता है। नियति ही मनुष्य के स्वभाव को निर्धारित करती है। मनुष्य पूर्वकृत कर्म-संस्कार द्वारा निर्मित अपने स्वभाव के अधीन है। वह अपने स्वभाव का ही अनुसरण करता है। देवता, असुर और मनुष्य को लिये हुए यह सम्पूर्ण जगत् स्वभाव में ही स्थित तथा गतिशील है। जीव अपने कर्मों के अनुसार उत्तम तथा अधम शरीरों को ग्रहण करता है और छोड़ता रहता है। कर्म ही व्यक्ति का गुरु है और कर्म ही उसका ईश्वर है। इसमें भला इन्द्र क्या कर सकता है? हम लोग अपनी गौओं, अपने ब्राह्मणों, अपने गिरिराज तथा पतितों का यजन करें। कुत्तों को भली-भाँति भोजन करायें और गौओं को चारा दें।"

नन्द बाबा तथा अन्य गोपों ने श्रीकृष्ण की बात स्वीकार कर जैसा उन्होंने आदेश दिया, वैसा ही किया। उन्होंने गौओं, ब्राह्मणों तथा गोवर्धन को अपनी भेंट चढ़ायी और गिरिराज की प्रदक्षिणा की। श्रीकृष्ण ने कहा, "मैं गिरिराज हूँ।" वे गोपों को विश्वास दिलाने के लिए गिरिराज के ऊपर एक दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गये और भेंट की सारी सामग्री खा गये ।

गोवर्धन- -धारण

इन्द्र नन्द बाबा तथा अन्य गोपों पर बहुत ही क्रोधित हुए। उन्होंने मेघ और मरुद्गणों को भेजा। वृन्दावन में मूसलाधार वर्षा, प्रचण्ड आँधी तथा ओलों की बौछार होने लगी। श्रीकृष्ण ने एक हाथ से गोवर्धन को उठा लिया और व्रजवासियों ने अपनी गौओं के साथ उस पर्वत के नीचे शरण ली। सात दिन तक लगातार वर्षा होती रही और श्रीकृष्ण ने सात दिन तक एक इंच भी इधर-उधर हुए बिना उस पर्वत को लगातार उठाये रखा।

इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और उनका अभिमान जाता रहा। उन्होंने मेघ तथा वायु को वापस बुला लिया । गोप अपनी-अपनी गायें और सामग्री ले कर अपने घरों को वापस चले गये और भगवान् ने गिरिराज को पूर्ववत् उसके स्थान पर रख दिया।

गोप आश्चर्यचकित रह गये। वे नन्द बाबा के पास आये और कहने लगे, "इस सात वर्ष के बालक ने गोवर्धन पर्वत को पृथ्वी से उखाड़ कर सात दिन तक लगातार एक हाथ पर उठाये रखा। इस तरह का अलौकिक कार्य एक साधारण मनुष्य नहीं कर सकता। तुम्हारा पुत्र अवश्य ही स्वयं भगवान् है। यह सब प्राणियों की आत्मा है।"

स्वर्ग से देवराज इन्द्र तथा कामधेनु आये। वे श्रीकृष्ण के चरणों में गिर पड़े और उनकी स्तुति करने लगे, "आप जगत् के पिता, गुरु और स्वामी हैं। भक्तों की लालसा पूर्ण करने के लिए आप स्वेच्छा से लीला-शरीर प्रकट करते हैं। हमारे-जैसे अज्ञानी तथा अभिमानी जन, जो अपने को ही जगत् का ईश्वर मान बैठते हैं, आपकी कृपा और आपके दर्शन से अपने मद और मान का परित्याग कर भक्ति-मार्ग का आश्रय ग्रहण करते हैं। आपकी प्रत्येक चेष्टा दुष्टों का दमन करने तथा उन्हें सुधारने के निमित्त ही होती है। शक्ति एवं ऐश्वर्य से मदमत्त हो कर मैंने आपकी अवहेलना की है। मुझमें बुद्धि, विवेक और ज्ञान न था, इसी से मैं आपकी महत्ता न समझ सका। हे प्रभो! मेरे अपराध को क्षमा करें, मुझे शुद्ध विवेक दें और मेरा अभिमान दूर करें। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।"

श्रीकृष्ण ने कहा, "इन्द्र! तुमने ऐश्वर्य और धन सम्पत्ति के मद में चूर हो कर मुझे विस्मृत कर दिया था; अतः तुम्हारा यज्ञ भंग करके मैंने तुम पर बहुत अनुग्रह ही किया। तुम मेरा स्मरण करते रहो, इसीलिए मैंने ऐसा किया। शक्ति तथा ऐश्वर्य मनुष्य तथा देवों को मदान्ध बना देते हैं। वे अभिमानी बन जाते हैं। अतः मैं जिस पर

अनुग्रह करना चाहता हूँ, उसका ऐश्वर्य और सम्पत्ति छीन लेता हूँ। तुम अपनी राजधानी अमरावती में जाओ और उचित रूप से अपने कर्तव्य का पालन करो। अभिमान को पूर्णतया त्याग दो। मेरी आज्ञाओं का पालन करते रहना और मेरी सन्निधि का नित्य अनुभव करते रहना। तुम्हारा मंगल हो ! "

श्रीकृष्ण का अभिषेक

गौओं की दिव्य माता कामधेनु ने अपनी सन्तान के प्रति किये हुए उनके उपकार के लिए श्रीकृष्ण को धन्यवाद दिया और कहा, 'हे कृष्ण! आप महायोगेश्वर है। आप सर्वान्तर्यामी है। हे अच्युत! आप ही समस्त जगत् के रक्षक है। आप स्वयं विश्व है, इस विश्व के परम कारण भी आप ही हैं। हमने आपको ही अपना आराध्य देव माना है। गौ, ब्राह्मण और देवताओं की रक्षा के लिए आप ही हमारे इन्द्र बन जाइए। ब्रह्मा जी की प्रेरणा से हम आपको अपने इन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित करेगी।"

श्रीकृष्ण से ऐसा कह कर कामधेनु ने अपने दूध से तथा देवताओं की प्रेरणा से देवराज इन्द्र ने ऐरावत की सूंड के द्वारा लाये हुए आकाशगंगा के जल से देवताओं के साथ श्रीकृष्ण जी का अभिषेक किया और उन्हें 'गोविन्द' (गो—इन्द्र, धेनु, स्वर्ग, विन्द प्राप्त होना) नाम से सम्बोधित किया। ऋषि गण, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण—सबने अभिषेकोत्सव में भाग लिया। तीनों लोकों में आनन्द छा गया। गौओं ने पृथ्वी पर दूध की नदी बहा दी। नदियों में दूध और दूसरे रसों की बाद आ गयी। वृक्षों से धारा बहने लगी। बिना जोते-बोये ही खेतों में खूब अन्न उत्पन्न होने लगा। पर्वतों ने मणियाँ भेंट की। वन्य पशु भी शान्त स्वभाव वाले हो गये।

इन्द्र ने इस प्रकार श्रीकृष्ण का गौ और गोकुल के रक्षक एवं स्वामी के रूप में अभिषेक कर उनका नाम 'गोविन्द' घोषित किया और उनसे अनुमति प्राप्त कर देवताओं के साथ स्वर्गलोक को वापस चले गये।

नन्द को वरुण से छुड़ाना

नन्द बाबा ने एकादशी का व्रत रखा और जनार्दन भगवान् की पूजा की। वे द्वादशी को यमुना में स्नान करने गये। तब अँधेरा ही था। वे रात्रि के समय ही यमुना में घुस गये। वरुण के एक असुर सेवक ने उन्हें पकड़ लिया और अपने स्वामी के पास ले गया।

नन्द के खो जाने पर गोपों ने श्रीकृष्ण और बलराम को पुकारा। सुन कर भगवान् को ज्ञात हो गया कि नन्द बाबा को वरुणलोक में ले गये हैं। श्रीकृष्ण ने जल में प्रवेश किया और वरुणलोक चले गये।

वरुण ने श्रीकृष्ण की पूजा की और कहा, “आज ही मेरा जीवन सफल हुआ। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! मेरा मूढ तथा अज्ञानी सेवक आपके पिता जी को यहाँ लाया। आप कृपा करके मेरा अपराध क्षमा कीजिए। आपके पिता जी यहाँ हैं। इन्हें आप ले जाइए। आपके पिता जी यहाँ आये, इसी से मुझे आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ।" भगवान् श्रीकृष्ण अपने पिता जी को कर चले आये।

नन्द बाबा ने जो कुछ देखा था, उस सारे वृत्तान्त को गोपों को कह सुनाया। श्रीकृष्ण भगवान् के अतिरिक्त और क्या हो सकते हैं?

गोपों की तीव्र इच्छा हुई कि भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें अपने परमधाम का दर्शन करायें। सर्वज्ञ भगवान् यह जान गये। वे उन गोपों को यमुना के ब्रह्महद नाम के स्थान में ले गये और उनसे डुबकी लगवायी। वहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण के मायातीत परमधाम वैकुण्ठलोक के दर्शन किये। वहाँ उन्हें श्रीकृष्ण के भी दर्शन हुए। वैदिक स्तोताओं के मध्य में श्रीकृष्ण को विराजमान देख कर वे सब-के-सब बहुत ही आनन्दित एवं विस्मित हुए ।

रासलीला का आरम्भ

श्रीकृष्ण ने एक बार गोपियों को वचन दिया था कि आगामी रात्रियों में वे उनके संग विहार करेंगी।

शरद ऋतु की रात्रि को देख कर श्रीकृष्ण ने अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमाया के सहारे रासक्रीड़ा करने तथा गोपियों की चिरकालीन अभिलाषा को पूर्ण करने का संकल्प किया। चन्द्रदेव की शुभ्र ज्योत्स्ना समस्त क्षिति मण्डल को विभासित कर रही थी। श्रीकृष्ण ने गोपियों को मोहित करने वाली तथा उनके मन को हरण करने वाली मधुर तान अपनी बाँसुरी पर उसी समय छेड़ दी।

प्रेमाग्नि को प्रदीप्त तथा भगवान् से मिलने की लालसा को अत्यन्त उद्दीप्त करने वाले उस मधुर संगीत को सुनते ही श्रीकृष्ण-प्रेम में विमोहित गोपियाँ एक-दूसरे से छिप कर श्रीकृष्ण से मिलने झटपट उनके पास चल पड़ीं। वेग से चलने के कारण उस समय उनके कुण्डल कानों में हिल रहे थे।

कुछ गोपियाँ दूध दुह रहीं थीं, वे दूध दुहना छोड़ कर; कुछ उफनते हुए दूध को छोड़ कर तथा कुछ पकती हुई खीर को बिना उतारे ही चूल्हे पर छोड़ कर चल पड़ीं। जो भोजन परस रही थीं वे परसना छोड़ कर, जो बच्चों को दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़ कर, जो पतियों की सेवा कर रही थीं वे सेवा-शुश्रूषा छोड़ कर तथा जो भोजन कर रही थीं वे भोजन करना छोड़ कर दौड़ पड़ीं। उस समय कुछ गोपियाँ उबटन लगा रही थीं, कुछ आँखों में अंजन लगा रही थीं, वे सब अपना काम अधूरा ही छोड़ कर उतावली में अपने वस्त्र आभूषण उल्टे-सीधे पहन झटपट श्रीकृष्ण के पास जाने के लिए दौड़ पड़ीं।

गोपियों के पति, माता-पिता, भाई और जाति-बन्धुओं ने रोका और बाधा भी डाली; किन्तु वे सम्मोहित की भाँति चली जा रही थीं। उनके मन का तो श्रीकृष्ण ने अपहरण कर लिया था; अतः घर की ओर उन्होंने मुड़ कर देखा तक नहीं ।

कुछ गोपियों को उनके घर वालों ने घर में बन्द कर दिया; अतः वे बाहर न निकल सकीं। तब उन्होंने अपने नेत्र मूँद लिये और श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगीं। उसका मन तो पहले ही श्रीकृष्ण को अर्पित हो चुका था। अब उन्होंने अपने हृदय में उन्हें दृढ़ता से आसीन कर लिया। अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के विरह की असह्य वेदना

की तीव्र अग्नि में उनके सब अशुभ संस्कार भस्म हो गये तथा ध्यान में भगवान् के मधुर आलिंगन के सुख से उनके पुण्य के संस्कार भी दूर हो गये; अतः उनके कर्मबन्धन उसी समय छिन्न-भिन्न हो गये। यद्यपि वे श्रीकृष्ण में जार-भाव ही रखती थीं तथा अपने प्रियतम के रूप में ही उनका ध्यान करती थीं, फिर भी इस गुणमय शरीर का परित्याग करने पर वे परमात्मा को प्राप्त हुईं।

भगवान् अव्यय, अनन्त तथा गुणातीत — तीनों गुणों से परे हैं। जीवों के नियन्ता होने के कारण लोक-कल्याण के लिए ही अपनी लीला को प्रकट करते हैं। काम से, क्रोध से, भय से, स्नेह से, सौहार्द्र से अथवा भक्ति से सारांश यह है कि चाहे जिस किसी भाव से जो मनुष्य भगवान् का ध्यान करता है, वह भगवान् को प्राप्त करता है। अतः आपको योगेश्वर के भी ईश्वर अजन्मा भगवान् के विषय में इस बात पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए। उनकी कृपा से निम्न योनिगत प्राणी भी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

जब गोपियाँ श्रीकृष्ण के निकट आ गयीं, तब उन्हें सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा, "सौभाग्यवती देवियो! मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? व्रज सब प्रकार से सुरक्षित तो है ? अब अपने यहाँ आने का प्रयोजन बतलाइए। रात्रि भयावनी है। हिंसक जीव-जन्तु इधर-उधर घूम रहे हैं। अतः तुम व्रज को वापस चली जाओ। यह स्थान स्त्रियों के लिए नहीं है। तुम्हारे माता-पिता, भाई-बन्धु और पति-पुत्र तुम्हें ढूँढ़ रहे होंगे। उन्हें चिन्तित न करो। तुमने वन की सुषमा तो देख ही ली, अब व्रज वापस लौट जाओ। तुम्हारे पति, बछड़े और बच्चे बिलख रहे होंगे। पति की सेवा-शुश्रूषा करो, बच्चों को दूध पिलाओ और गौओं को दुहो। यदि तुम लोग मेरे प्रेम-वश यहाँ आयी हो तो यह स्वाभाविक ही है; क्योंकि सभी प्राणी मुझसे प्रेम करते हैं।

"पति-प्रेम ही स्त्रियों का महान् धर्म है। स्त्री का परम धर्म है कि वह अति-प्रेम से अपने पति की सेवा करे। उसे अपने सम्बन्धियों की देख-भाल तथा बच्चों का पालन-पोषण करना चाहिए। जिन स्त्रियों को शुभ गति प्राप्त करने की अभिलाषा हो, उन्हें पातकी को छोड़ कर अन्य किसी भी प्रकार के पति का परित्याग नहीं करना चाहिए, चाहे वह दुष्ट, वृद्ध, रोगी या निर्धन, असभ्य और कुरूप ही क्यों न हो। कुलीन स्त्रियों को जार-कर्म बहुत ही निन्दनीय है। ऐसा करने से दुःख तथा अपयश मिलता है और स्वर्गप्राप्ति में भी बाधा पड़ती है। अतः यह सर्वथा हेय है। गोपियों । मेरे पास न रह कर भी तुम मुझसे प्रेम कर सकती हो जैसे मेरी लीला तथा गुणों का श्रवण, रूप का दर्शन, मेरा ध्यान तथा मेरे गुणों का कीर्तन इत्यादि; अतः तुम सब अपने-अपने घरों को वापस लौट जाओ।'

गोपियों ने कहा, "हे सर्वशक्तिमान् प्रभो। आपको इस प्रकार कठोर वचन नहीं कहने चाहिए। सर्वस्व परित्याग कर हमने आपके चरणों की शरण ली है। हमारा त्याग मत करें। जैसे भगवान् नारायण अपने भक्तों को अपनाते हैं, वैसे ही आप हमें स्वीकार कर लें। आप सब धर्मों का रहस्य जानते हैं। आपने यह सर्वथा ठीक ही कहा कि अपने पति, पुत्र, सम्बन्धी तथा भाई-बन्धु के प्रति निष्कपट तथा आज्ञाकारिणी होना तथा उनकी सेवा करना ही स्त्री का स्वधर्म है। आप ही हमारे गुरु और प्रभु हैं। अतः आपके आदेशानुसार हम अपने पति तथा दूसरों की आज्ञाकारिणी हैं। उन धार्मिक उपदेशों के ध्येय तो आप ही हैं। आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आप ही हमारे परम प्रियतम, स्वामी, सम्बन्धी तथा सभी जीवधारियों की आत्मा है। आप ही हमारे वास्तविक पति हैं। ज्ञानी जन

आपमें ही आनन्द प्राप्त करते हैं; क्योंकि आप उनके नित्य प्रिय आत्मा हैं। वे केवल आप ही से प्रेम करते हैं। पति, पुत्र अथवा दूसरों से क्या लाभ, जो कि दुःख के ही हेतु हैं। आप ही हमारे नित्य सुख-स्वरूप हैं।

"अतः हम सब पर दया कर अपनी सेवा करने की आज्ञा दें। हमारी चिर-सेवित आशा भंग न करें। हमें अपने चरणों से दूर न करें। हमारा चित्त, जो अब तक घर के काम में लगा रहता था, का तो आपने अब हरण कर लिया। हमारे पैर आपको छोड़ कर एक पग भी नहीं हटते; फिर हम व्रज को कैसे जायें और जा कर वहाँ करें भी क्या ?

"हे प्रियतम! आपकी मधुर मुस्कान, प्रेम-भरी चितवन और मनोहर संगीत से हमारे हृदय में जो अग्नि धधक उठी है, उसे अपने अधरामृत की रसधारा से बुझा दें अन्यथा आपकी विरहाग्नि में हम अपने-अपने शरीर को भस्म कर, योगियों की भाँति ध्यान द्वारा आपको प्राप्त करेंगी।

"हे कमलनयन प्रभो! हे वनवासियों के परम प्रिय ! लक्ष्मी जी को प्रमुदित करने वाले आपके चरण-कमलों का स्पर्श हमें एक बार वन में प्राप्त हुआ। जिस दिन से हमें यह सौभाग्य आपसे मिला, उसी दिन से हम किसी और के सामने एक क्षण के लिए भी ठहरने में असमर्थ हो गयी हैं। फिर भला हम किस प्रकार पति-पुत्रादिका की सेवा कर सकती है?

"जिन लक्ष्मी जी के कृपा-कटाक्ष प्राप्त करने के लिए सभी देवता उग्र तपस्या करते रहते हैं, वही लक्ष्मी आपके वक्षःस्थल में बिना किसी की प्रतिद्वन्द्विता के स्थान प्राप्त कर लेने पर भी तुलसी के साथ आपके भक्तों और सेवकों के ध्येय तथा पूज्य आपके चरण-कमलों की रज पाने की अभिलाषा किया करती है। हम भी आपकी उसी चरण-रज की शरण में आयी हैं। हे दुःख-हारी प्रभो! आप हम पर कृपा करें। एकमात्र आपकी सेवा की भावना से हमने अपने घर और कुटुम्ब का परित्याग कर आपके युगल चरणों की शरण ली है। आपकी मनोहर मुस्कान तथा चितवन से उद्दीप्त उग्र प्रेम की ज्वाला से हम दग्ध हो रही हैं। हमारी सेवा स्वीकार करें।

"घुँघराली अलकों से आच्छादित आपका मुख, सुन्दर कुण्डलों की आभा से दीप्त कपोल, सुधा-स्निग्ध अधर, मधुर मुस्कानयुक्त चितवन, शरणागतों को अभयदान देने वाली भुजाओं तथा लक्ष्मी को प्रमुदित करने वाले आपके वक्षःस्थल देख कर हम सब आप पर आत्मार्पण कर चुकी हैं और आपकी दासी हो गयी हैं।

"हे प्रियतम! तीनों लोकों में ऐसी कौन-सी स्त्री है जो आपकी वंशी की मधुर सुरीली तान से मुग्ध हो कर आपकी आराधना न करने लगे। आपकी इस त्रिलोक सुन्दर मोहिनी मूर्ति, जिसे देख कर गौ, पक्षी, वृक्ष और मृग भी पुलकित हो जाते हैं, को अपने नेत्रों से देख कर कौन अपने को रोक सकता है? यह तो स्पष्ट ही है कि जैसे आदि पुरुष भगवान् नारायण देवलोक के रक्षार्थ जन्म ग्रहण करते हैं, वैसे ही आप व्रज-मण्डल का भय और दुःख मिटाने के लिए प्रकट हुए हैं। अतः हे दीनबन्धो! आप अपनी इन दासियों के धड़कते हुए वक्षःस्थल और कुत्सित शिर पर कर-कमल रखें। "

योगेश्वरों के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों की आर्तवाणी को सुन कर दया से द्रवित हो गये। यद्यपि वे अपने-आपमें ही रमण करते रहते हैं, फिर भी उन्होंने मुस्कराते हुए गोपियों को अपने साथ क्रीड़ा करने की स्वीकृति दे दी।

गोपियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। भगवान् तो अपने स्वरूप में ही दृढ़ता से स्थित थे । उनकी प्रेम-भरी चितवन तथा मनमोहिनी मुस्कान गोपियों के मुखारविन्द को प्रफुल्लित कर रही थी। अद्भुत लीलाधारी भगवान् अच्युत तारिकाओं से घिरे हुए चन्द्रमा के समान उस समय सुशोभित हो रहे थे।

कभी श्रीकृष्ण जी स्वयं गीत गाने लगते, तो कभी गोपियाँ उनके गुणों का गायन करती। गोपियों के शत-शत झुण्ड के साथ भगवान् श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला धारण किये हुए वृन्दावन को शोभायमान करते हुए विचरण करने लगे।

इसके पश्चात् उन्होंने यमुना के शीतल तट पर पदार्पण किया, जो कि श्वेत कपूर की तरह मालूम पड़ रहा था। कुमुदिनी की सुगन्ध से सुवासित आनन्दप्रद शीतल कपूर वायु यमुना की ओर से प्रवाहित हो रही थी। भगवान् ने गोपियों के साथ वहाँ क्रीड़ा की।

हाथ फैला, आलिंगन कर, उनकी चोटी, जंघा, कमर और स्तन का स्पर्श कर, नखक्षत कर, हास-परिहास कर, विनोदपूर्ण चितवन से देख कर और मुस्करा कर, इसी प्रकार की अन्य क्रीड़ाओं से उनके हृदय में शुद्ध दिव्य प्रेम उद्दीप्त कर उन्हें आनन्दित किया।

परम उदार तथा सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ रास लीला कर उनका सम्मान किया। पर वे गर्व से फूल उठीं। संसार की समस्त स्त्रियों में वे अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझने लगीं।

गोपियों को अपने सुहाग पर गर्व एवं मान करते देख कर उनके मान को दूर करने तथा उन पर कृपा करने के लिए भगवान् वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

विरह - कातर गोपियों का भगवान् श्रीकृष्ण को ढूँढ़ना

श्री शुकदेव जी ने कहा—भगवान् के एकाएक अन्तर्धान हो जाने पर ब्रजांगनाएँ अधीर हो उठीं। उन्हें न देख कर उन्हें वैसा ही महान् दुःख हुआ जैसा कि यूथपति गजराज के बिना हथिनियों को होता है। उनका हृदय विरह की ज्वाला से जलने लगा। उनका चित्त श्रीकृष्ण की भावभंगिमाओं, तिरछी चितवन, मनोरम प्रेमालाप, लीला तथा चाल में इतना तन्मय हो गया था कि वे विभिन्न प्रकार से श्रीकृष्ण के समान ही व्यवहार करने लगीं। वे उनकी चेष्टाओं का अनुकरण करने लगीं और अपने को श्रीकृष्ण तक कहने लगीं।

चाल-ढाल, चितवन, मुस्कान, बोलचाल आदि में वे श्रीकृष्ण के समान ही व्यवहार करती थीं। उनमें वैसी ही गति तथा भावभंगिमा आ गयी। वे श्रीकृष्ण में इतनी तद्रूप हो गयीं कि वे एक-दूसरे से 'मैं श्रीकृष्ण हूँ' कहने लगीं।

वे सब परस्पर मिल कर ऊँचे स्वर से उन्हीं के गुणों का गान करने लगी और एक वन से दूसरे वन में श्रीकृष्ण को ढूँढने लगीं। वे वृक्षों से उन पुरुषोत्तम का पता पूछने लगी जो सभी प्राणियों के हृदय में तथा बाह्य जगत् में भी आकाश के समान का स्थित है।

वे कहती, "हे अश्वत्थ, पाकर और बरगद ! क्या तुम लोगों ने नन्दनन्दन को देखा है जो अभी-अभी अपनी प्रेम-भरी मुस्कान और चितवन से हमारा मन चुरा कर अदृश्य हो गये हैं? हे कुरबक, अशोक, नागकेशर, पुन्नाग और चम्पक ! क्या बलराम के छोटे भाई, जिनकी मुस्कान मात्र से मानिनियों के मान-मर्दन हो जाते हैं तथा क्रोधित युवतियों के क्रोध विदूरित हो जाते हैं, इस मार्ग से गये हैं? हे सौभाग्यवती तुलसी, गोविन्दचरणानुरागिनी! क्या तुमने अपने प्रियतम अच्युत को देखा है, जो भौंरें से युक्त होने पर भी तुम्हें सदा अपने गले में धारण किये रहते हैं? हे मालती, मल्लिका, जाती और जूही! क्या तुम लोगों ने माधव को कहीं देखा है जो अपने कर-स्पर्श से तुम्हें आनन्दित करते हैं? हे रसाल, प्रियाल, पनस, कोविदार, जम्बू, अर्ख, बिल्व, बकुल, आम्र, कदम्ब, नीम तथा अन्यान्य तरुवरो! तुम सब पवित्र यमुना जी के तट पर विराजमान रह कर परोपकारार्थ ही जीवन धारण करते हो। हमें बतलाइए कि श्रीकृष्ण कहाँ हैं? जिस मार्ग से श्रीकृष्ण गये हैं, वह मार्ग हमें बतला दीजिए।

"हे पृथ्वी देवी! तुमने ऐसी कौन-सी उग्र तपस्या की है कि श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श प्राप्त करके आनन्दित एवं पुलकित हो रही हो? तुम्हारा यह उल्लास अभी श्रीकृष्ण के चरण के स्पर्श के कारण है या त्रिविक्रम के चरणों के कारण है अथवा वाराह भगवान् के अंग-संग के कारण है? हे प्रिय मृग! क्या भगवान् अच्युत अपने कमनीय वदन से तुम्हारे नेत्रों को आनन्द प्रदान करते हुए इस मार्ग से गये हैं? ऐसा प्रतीत होता है कि वे इधर से गये हैं; क्योंकि श्रीकृष्ण की कुन्द-माला की सुगन्ध आ रही है जो कि उनकी प्रेयसी के आलिंगन के समय उनके वक्षःस्थल पर के कुंकुम से धूसरित हो गयी थी। हे तरुवरो! क्या बलराम के भाई एक हाथ अपनी प्रियतमा के कन्धे पर रखे हुए तथा दूसरे हाथ में कमल-पुष्प लिये हुए तथा तुलसी पर मतवाले भ्रमरों से घिरे हुए इस मार्ग से गये हैं? क्या उन्होंने अपनी प्रेम-भरी चितवन से तुम्हारी बन्दना को स्वीकार किया था? सखियो! आओ, इन लताओं से पूछें जो अपने पति वृक्षों की शाखाओं से लिपटी हुई हैं। श्रीकृष्ण ने अवश्य ही अपनी उँगलियों से इन्हें स्पर्श किया है, तभी तो ये आनन्द से पुलकित हो रही हैं।"

श्रीकृष्ण की खोज में इधर-उधर भटकते-भटकते वे थक गयीं। उनका प्रगाढ़ दिव्य प्रेम और भी विकसित हो चला। वे कृष्णमय हो कर भगवान की विभिन्न लीलाओं का अनुकरण करने लगीं। एक पूतना बन गयी और दूसरी कृष्ण बन कर उसका स्तनपान करने लगी। एक गाड़ी बन गयी तो दूसरी ने बाल कृष्ण बन कर रोते हुए उसे

एक पैर से ठोकर मार उलट दिया। कोई सखी तृणावर्त दैत्य का रूप धारण किये हुए थी। कोई गोपी बाल कृष्ण की भाँति पाँव घसीट-घसीट कर रुनझुन की झनकार करती हुई घुटनों के बल चलने लगी। एक गोपी कृष्ण बनी तो दूसरी बलराम बन गयी और बहुत-सी गोपियाँ ग्वाल-बाल बन गयीं। एक गोपी वत्सासुर बनी और दूसरी बकासुर । एक गोपी उस गोपी, जो बत्सासुर बनी थी तथा दूसरी, जो बकासुरः बनी थी, को मारने लगी। एक गोपी श्रीकृष्ण की भाँति ही दूर गयी हुई गायों के नाम ले ले कर पुकारती हुई बाँसुरी बजाने का अभिनय करने लगी। दूसरी गोपियाँ 'वाह वाह' करके उसकी प्रशंसा करने लगीं।

एक गोपी, जिसका मन श्रीकृष्ण में तन्मय हो गया था, दूसरी सखी के गले में बाँह डाल कर चलने लगी और वहाँ उपस्थित दूसरी गोपियों से उसने कहा, |मैं "कृष्ण हूँ। तुम सब मेरी मनोहर चाल देखो।" दूसरी गोपी ने कहा, "हे व्रजवासियो ! तुम इस वर्षा और तूफान से मत डरो। देखो, मैं तुम्हें छाया दे रहा हूँ।" ऐसा कहते हुए गोवर्धन-धारण का अनुकरण कर अपने उत्तरीय को एक हाथ से ऊपर तान लिया। एक गोपी बोली, "हे ग्वालो! भयंकर दावानि को देखो। तुम अपनी आँखें जल्दी से मूँद लो। मैं शीघ्र ही तुम्हारी रक्षा करूँगा।" एक गोपी दूसरी के कन्धे पर चढ़ कर अपने पैर को उसके शिर पर रखती हुई बोली, "रे दुष्ट साँप। तू यहाँ से चला जा। क्या तुझे पता नहीं कि मैं दुष्टों का दमन करने के लिए ही उत्पन्न हुआ हूँ।" एक गोपी ने यशोदा जी का अभिनय किया और दूसरी गोपी, जो कृष्ण बनी हुई थी, को तीसरी गोपी, जो ऊखल बनी हुई थी, से बाँध दिया और कहने लगी, "बरतन तोड़ कर मक्खन चुराने वाले चोर को मैंने पकड़ लिया है।" श्रीकृष्ण बनी हुई गोपी अपने दोनों हाथों से अपना मुख ढक कर काँपने लगी, मानो कि वह डर रही हो।

इस प्रकार वृन्दावन के वृक्ष और लताओं से श्रीकृष्ण का पता पूछते हुए उन गोपियों ने वन में एक स्थान पर भगवान् के चरण-चिह्न देखे। वे कहने लगी, "अवश्य ही ये चरण-चिह्न उदारमना नन्दनन्दन के हैं; क्योंकि इनमें ध्वजा, पद्य, गदा, वज्र, अंकुश, जी आदि के चिह्न दीख रहे हैं।" उन चरण-चिह्नों का अनुसरण करती हुई जब वे थोड़ा आगे बढ़ीं, तो उन चिह्नों के साथ एक युवती के पद-चिह्न मिले हुए पाये। इससे उनके हृदय को बहुत आघात पहुँचा।

गोपियाँ आपस में कहने लगीं, "ये किसके पद-चिह्न है? जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराज के साथ जाती है, वैसे ही नन्दनन्दन के कन्धे पर हाथ रख कर जाने वाली यह युवती कौन है? अवश्य ही इसने सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की हार्दिक आराधना की होगी और उन्हें विशेष रूप से प्रसन्न किया होगा, तभी तो उन्होंने: प्रसन्न हो कर हमें यहाँ छोड़ दिया और उसे एकान्त में ले गये। हे सखिया। भगवान् के चरण-कमल की रज भी धन्य है; क्योंकि ब्रह्मा, रुद्र और लक्ष्मी देवी भी अपने अशुभ को नष्ट करने के हेतु से उसे अपने सिर पर धारण करते हैं।

"इस युवती के चरण-चिह्न तो हमारे हृदय में बड़ा ही क्षोभ उत्पन्न कर रहे है क्योंकि यह अच्युत को एकान्त में ले जा कर अकेले ही उनके अधरामृत का पान कर रही है। यहाँ उस गोपी के पदचिह्न नहीं दिखायी देते। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके सुकुमार चरणों में घास और काँटे चुभने के कारण प्रेमी भगवान् ने उसे अपने कन्धे

पर चढ़ा लिया होगा। युवती को उठा कर ले जाने के कारण श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न अधिक गहरे हैं। यहाँ देखो, भारी बोझ से प्रेमी कृष्ण के चरण-चिह्न कितने गहरे पड़े। हैं। यहाँ उन्होंने अवश्य ही अपनी प्रेयसी को कन्धे पर चढ़ाया होगा। यहां फूल चुनने के लिए उन्होंने उसे नीचे उतार दिया है और केवल अंगूठों पर खड़े हुए है; क्योंकि उनके चरण यहाँ पूर्ण रूप से चिह्नित नहीं हुए। उस गोपी के केश सँवारने तथा उसकी चोटी में फूल गूंथने के लिए यहाँ अवश्य ही बैठे रहे होंगे।"

भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। वे अपने-आपमें ही पूर्ण हैं। वे अद्वैत तथा अखण्ड हैं। वे नित्य शुद्ध हैं। वे मल, कामना तथा वासना से मुक्त हैं। वे मायापति हैं। माया उनको स्पर्श नहीं कर सकती। वे सदा अद्वैत भावना में ही स्थित रहते हैं, द्वैत में नहीं। वे व्रजांगनाओं की काम-चेष्टा से आकर्षित नहीं हुए थे। उनमें काम-वासना की कैसे कल्पना की जा सकती है? फिर भी पूर्ण ब्रह्म ने संसार को काम-परवश व्यक्तियों की दयनीय तथा दुःखपूर्ण स्थिति दिखलाने के लिए उस गोपी के साथ क्रीड़ा की।

इस प्रकार वे गोपियाँ त्रिया-चरित्र का प्रदर्शन करती हुई तथा एक-दूसरे को श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न दिखलाती हुई वन-वन में भटकती फिर रही थीं।

अन्य गोपियों को छोड़ कर भगवान् श्रीकृष्ण जिस गोपी को वन में ले गये थे, वह अपने को समस्त गोपियों से समझने लगी। उसने समझा, "प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी दूसरी प्रेमी गोपियों से मुझे ही अधिक मान देते हैं।" वह गर्व से फूल उठी और वन के मध्य में आ कर भगवान् से कहने लगी, "प्रियतम! मुझसे अब तो और नहीं चला जाता; अतः जहाँ आप चलना चाहें, मुझे उठा कर ले चलें।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "अच्छा प्रिये! अब तुम मेरे कन्धे पर चढ़ लो।"

ज्यों ही गोपी उनके कन्धे पर चढ़ने लगी, त्यों ही वे अन्तर्धान हो गये। वह युवती धाड़ मार कर रोने लगी। वह दुःखित हो कहने लगी, "हे मेरे स्वामी हे मेरे प्रियतम! हे जीवन-धन। आप कहाँ हैं? हे विशाल बाहुओं वाले। आप कहाँ चले गये हैं? हे प्रिय सखे। अपने दर्शन से मुझे धन्य बनायें। मैं आपकी असहाय दासी हूँ।"

वे गोपियाँ सर्वशक्तिमान् भगवान् के चरण-चिह्नों का अनुसरण करती हुई वहाँ आ पहुँची और कुछ ही दूर पर भगवान् द्वारा परित्यक्त अपनी सखी को दुःखित तथा अचेत पाया। वे सब उसके पास गयीं और उससे यह वृत्तान्त सुना कि कैसे उसने भगवान् की विशेष कृपा का आनन्द लूटा और क्योंकर उसने अपनी कुटिलता से उसे अपने हाथों से गंवा दिया। उसकी बात सुन कर गोपियाँ बहुत ही आश्चर्यचकित हुई।

वन में जहाँ तक चन्द्रिका का प्रकाश था, वहाँ तक वे उन्हें ढूँढ़ती रहीं। उसके आगे जहाँ अन्धकार था, वहाँ से उन्होंने ढूंढ़ना बन्द कर दिया। उनके हृदय श्रीकृष्णमय हो रहे थे। वे केवल उन्हीं की चर्चा करती रहीं तथा उन्हीं की लीलाओं का अभिनय करती रहीं। वे भगवान् में तन्मय हो रही थीं। वे केवल उन्हीं के गुणानुवाद का गायन करती थीं। उन्हें अपने घर की याद ही न रही। इस प्रकार श्रीकृष्ण के ध्यान में लीन गोपियाँ यमुना जी के उसी तट

पर लौट आयीं और उनके पुनरागमन की प्रतीक्षा एवं उत्कण्ठा में एक साथ मिल कर श्रीकृष्ण के गुणों का गायन करने लगी।

गोपी-गीत

श्रीकृष्ण के विरहावेश में गोपियाँ गाने लगीं, "आपके जन्म से ब्रज धन्य हो गया है। तभी तो देवी लक्ष्मी यहाँ नित्य-निरन्तर निवास करने लगीं हैं। हम आपकी दासी हैं और वन में आपके लिए मारी मारी फिर रही हैं। कृपा करके हमें दर्शन दें, हम आपके लिए ही जी रही हैं। हम वन में आपको सर्वत्र ढूँढ़ती हुई इधर-उधर भटक रही हैं।

"हे प्रभु! हे आनन्ददाता! हे वरदाता! हम आपकी परिचारिका है। निर्मल सरोवर में पूर्ण विकसित शरत्कालीन कमल के सौन्दर्य का अपहरण करने वाले अपने नयन - बाण से हमारे हृदय को आहत कर फिर हमें निराश करना क्या आपके लिए स्त्री-हत्या नहीं है?

"हे पुरुषोत्तम! यमुना के विषाक्त जल के विनाश से, अजगर-रूप-धारी अघासुर से, आँधी, पानी और बिजली के प्रकोप से, दावानल से, वृषभासुर तथा व्योमासुर के समान दैत्यों से सभी प्रकार के भयों से आपने हमारी बारम्बार रक्षा की है।

"निश्चय ही आप यशोदानन्दन हैं तथा सभी शरीरधारियों के अन्तर्यामी है। ब्रह्मा जी की प्रार्थना से विश्व की रक्षा करने के लिए आप यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं।

"हे प्रियतम! हे यदुवंशशिरोमणे। अपने उन मंगलकारी कर-कमलों को हमारे शिर पर रख दें, जो सभी प्रकार के वर प्रदान करने वाले हैं, जिनसे आप लक्ष्मी जी को पकड़े हुए हैं तथा जिनसे आप भयंकर संसार से भयभीत अपने शरणागतों को अभय-दान देते हैं।

"हे व्रजवासियों के दुःखहर्ता वीरशिरोमणे। अपने भक्तों के मद-मर्दन करने वाली मधुर मुस्कान वाले प्रभो! हे प्रिय सखा। हम आपकी दासी हैं। हम दीन अबलाओं को स्वीकार कर अपना सलोना मुख-कमल दिखलाओ।

"अपने उन चरण-कमलों, जो शरणागत प्राणियों के सारे पापों को दूर कर देते हैं, जो तृणचर पशुओं पर भी दया करते हैं, जो लक्ष्मी जी द्वारा सदा-सर्वदा परिसेवित हैं, जो समस्त ऐश्वयों की खान हैं तथा जिन्हें आपने कालिय नाग के फणों पर रखा था, को हमारे वक्षःस्थल पर रखें। दया करके अपने उन चरणों को हमारे वक्षःस्थल पर रख हमारे हृदय की व्यथा एवं ज्वाला को शान्त कर दें।

"हे कमलनयन प्रभो! हे दयामय! हम आपके लिए अचेत हो रही हैं, हमें ज्ञानियों को भी आनन्द प्रदान करने वाली अपनी मधुर वाणी तथा अपने नयनामृत से सान्त्वना दें।

"आपका लीलामृत सन्तप्तों के लिए जीवन सर्वस्व है। ज्ञानी और भक्त जनों ने इसकी महिमा का बहुत बखान किया है। आपकी मधुर तथा पावन लीला-कथा के श्रवण करते ही वह तत्काल सारे पाप ताप को मिटा कर परम मंगल प्रदान करती है। वह सभी के हृदयों में शान्ति लाती है। जो इनका गायन तथा अभिनय करते हैं, वे इस भूलोक में सबसे बड़ा दान करते हैं।

"हे कपटी ! हे प्यारे ! आपकी मधुर मुस्कान, हृदयस्पर्शी हास्य, प्रेम-भरी चितवन तथा मनोहारी क्रीड़ाओं का ध्यान बहुत ही आनन्ददायी है। आपकी प्रेम की बातें हमारे हृदय में गहरी प्रवेश कर गयी हैं। वे हमारे मन को क्षुब्ध बना रही है।

"हे स्वामी! आपके चरण कमल के सदृश सुकोमल है। जब आप गौओं को चराने के लिए व्रज से बाहर जाते हैं, तो इस आशंका से हमारा मन अशान्त हो जाता है कि कहीं आपके चरणों में कठोर कंकड़, तिनके अथवा काँटे न चुभ जायें।

"हे वीर! दिन ढलने पर हमें आपकी मुस्कान के प्रायः दर्शन होते हैं, जिस पर काली अलकें लटक रही होती हैं तथा गौओं के खुर से उड़-उड़ कर धूल पड़ी हुई होती है। उस समय का आपका वह सौन्दर्य हमारे हृदय में प्रेमाग्नि प्रज्वलित करता तथा आपके मिलन की आकांक्षा को उद्दीप्त करता है।

"हे आनन्ददायक! हे दुःखहारी प्रभो! जिन चरण-कमलों की बन्दना से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है, जिनकी आराधना पद्मजात ब्रह्मा भी करते हैं, जो धराधाम को अलंकृत करते हैं, आपत्ति तथा विपत्ति में जो स्मरणीय हैं तथा जिनकी सेवा से शान्ति प्राप्त होती है, ऐसे अपने चरण-कमलों को हमारे वक्षस्थल पर रखिए।

"हे वीरशिरोमणे! आपका अधरामृत, जो हमारे हृदय की आकांक्षा को बढ़ाने वाला है, जो समस्त शोक-सन्ताप का विनाशक है, जिसका उपभोग कर आपकी सुरीली बाँसुरी पूर्ण रूप से आनन्द लेती है, जो दूसरी समस्त आसक्तियों को विस्मृत करा देता है तथा जो मन की समस्त विषय-वासनाओं को नष्ट कर डालता है, का हमें पान करने दें।

"जब आप दिन में वन को चले जाते हैं, तब आपको देखे बिना हमारे लिए, एक-एक पल युग के समान हो जाता है। जब हम घुँघराली अलकों से सुशोभित आपके सुन्दर मुखारविन्द को देखती हैं, तब हम पलकों के विधाता मन्द-बुद्धि ब्रह्मा की भर्त्सना करने लगती हैं; क्योंकि वे पलकें बार-बार गिर कर हमारे निर्निमेष अवलोकन में विक्षेप उपस्थित करती हैं।

"हे अच्युत ! हम अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु आदि का परित्याग कर आपके पास आयी हैं और आपको हमारे यहाँ आने का कारण भी विदित ही है। आपकी दिव्य बाँसुरी के सुरीले संगीत से मोहित हो कर हम यहाँ आयी हैं।

"हे कपटी ! आपके अतिरिक्त भला दूसरा अन्य कौन होगा जो उन स्त्रियों का त्याग करेगा जिन्होंने आप पर विश्वास किया। हे प्रियतम! आपका सस्मित मधुर मुख, आपकी प्रेम-भरी चितवन, श्री लक्ष्मी जी के वास स्थान आपके विशाल वक्षःस्थल का सौन्दर्य — इन सबका स्मरण कर हम काम से विदग्ध रही हैं तथा हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है।

"हे प्रियतम! समस्त व्रजवासियों के दुःख नष्ट करने तथा संसार का कल्याण करने के लिए ही आपका अवतार हुआ है। हमारा हृदय आपके लिए तड़प रहा है। है प्रभो! कृपण न बने। हम आपको ही चाहती है। अतः हमें भी थोड़ी ऐसी दवा दे दें जिससे हमारे हृदय की पीड़ा शान्त हो जाये।

"हे प्रियतम! आप उन सुन्दर सुकुमार चरण-कमलों से इस घोर जंगल में भटक रहे हैं, जिन्हें हम अपने कठोर स्तनों पर बहुत धीरे से रखती थीं कि कहीं हमसे उन्हें पीड़ा न पहुँचे। हे प्रभो! हमारा समस्त जीवन आपमें ही केन्द्रित है। आप ही हमारे प्राण है। क्या आपके चरणों में इन कंकड़ियों से पीड़ा नहीं होती ? इस वन भूमि पर बिखरी हुई ककड़ियों से आपके कोमल चरणों को कहीं चोट न लग जाये, यह सोच कर हमें चक्कर आ रहा है।"

श्रीकृष्ण का अकस्मात् प्रकट हो कर गोपियों को सान्त्वना देना

इस भांति गोपियाँ उच्च स्वर से श्रीकृष्ण का गुणगान करने लगीं। वे श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए क्रन्दन करने लगीं और उनका वह रुदन ही गान के रूप में फूट निकला। ठीक उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण पीताम्बर तथा वन-माला धारण किये हुए उनके बीच में प्रकट हो गये। उस समय उनका सस्मित मुख-कमल कामदेव को भी प्रलोभित करने वाला था।

श्रीकृष्ण को वापस आया देख गोपियाँ आनन्द से विकसित नेत्रों के साथ वैसे ही उठ बैठीं, जैसे मृत शरीर में पुनः प्राणों के आ जाने पर शरीर के अंग-प्रत्यंग नवजीवन प्राप्त कर पुनः अपने-अपने काम करने लग जाते हैं।

एक गोपी ने बड़े आनन्द से श्रीकृष्ण के कर-कमलों को अपने दोनों हाथों में ले लिया और उन्हें सहलाने लगी। दूसरी गोपी ने श्रीकृष्ण की चन्दन-चर्चित भुजाओं को अपने कन्धे पर रख लिया। तीसरी गोपी ने कठोर भूमि में भटकने से उनके पीड़ित चरण-कमलों को अपने वक्षःस्थल पर रख लिया। एक अन्य गोपी अपने

निर्निमेष नयन-पात्रों से उसके मुख-कमल का सुधामृत पान करने लगी। परन्तु जैसे सन्त पुरुष भगवान् के चरणों की सेवा से कभी तृप्त नहीं होते, वैसे ही वे भी तृप्त नहीं होती थीं। दूसरी गोपी ने नेत्रों के मार्ग से भगवान् को अपनी हृदय-गुहा में आसीन कर अपने नेत्रों को बन्द कर लिया और ध्यान-स्थित योगियों के समान परमानन्द में मग्न हो गयी!

श्रीकृष्ण के दर्शन से सभी गोपियाँ बहुत ही आनन्दित हुईं। उनके विरह के कारण गोपियों को जो दुःख हुआ था, उससे वे वैसे ही मुक्त हो गयीं जैसे मुमुक्षु जन आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेने पर संसार की पीड़ा से मुक्त हो जाते हैं। विरह-वेदना से मुक्त हुई उन गोपियों से घिरे हुए सौन्दर्यशाली अच्युत परम शोभायमान लग रहे थे; ठीक वैसे ही जैसे कि परमेश्वर अपने नित्य ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, श्री आदि शक्तियों से परिवृत होने पर सुशोभित होता है।

उसके पश्चात् श्रीकृष्ण उन गोपियों के साथ यमुना जी के रेतीले तट पर गये, जहाँ सुविकसित कुन्द-पुष्पों की मधुर सुरभि से उन्मत्त भ्रमर इधर-उधर मंडरा रहे थे। शरच्चन्द्र रजत ज्योत्स्ना से रात्रि का अन्धकार तो पहले ही विदूरित हो चला था, वह स्थान अत्यन्त सुहावना प्रतीत हो रहा था। सुकोमल रजत बालुका कण से आच्छादित सरिता-तट ऐसा लगता था मानो यमुना जी ने स्वयं अपनी लहरों के हाथों से सुचिकण बना रखा है। श्रीकृष्ण के दर्शन के आनन्द से गोपियों के हृदय के ताप मिट गये। जिस प्रकार श्रुतियाँ आत्म-साक्षात्कार का प्रतिपादन करते हुए मनुष्य को आप्तकाम बना देती हैं वैसे ही गोपियाँ भी पूर्णकाम हो गयीं। उन्होंने अपने बदन में लगी हुई केसर के रंजित अपनी ओढ़नी को प्रियतम श्रीकृष्ण के लिए बिछा दिया।

तब योगेश्वरों के हृदय सिंहासन पर विराजमान रहने वाले सर्वशक्तिमान् भगवान् गोपियों की ओढ़नी पर बैठ गये। गोपी-वृन्द के मध्य में बैठे हुए वे बहुत ही सौन्दर्यपूर्ण प्रतीत हो रहे थे। गोपियों ने उनकी पूजा की। तब उन्होंने अपना एक ऐसा रूप धारण किया जिसमें त्रैलोक्य का सौन्दर्य समाश्रित था। गोपियों ने हृदय में प्रेम को उद्दीप्त करने वाली मधुर मुस्कान तथा प्रेमपूर्ण चितवन से उनका सम्मान किया कर- युगल तथा चरण-कमलों को अपनी गोद में रख लिया। वे उनकी सराहना कर रही थीं और कभी कुछ रूठी-सी उलाहने के स्वर में बातें करती थीं। गोपियों ने कहा, "कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करने वालों से ही प्रेम करते हैं और कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो प्रेम न करने वालों से भी प्रेम करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जो न तो प्रेम करने वालों से प्रेम करते हैं और न ही प्रेम न करने वालों से। इसका कारण आप कृपा करके स्पष्ट कीजिए।" भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "सखियो ! जो प्रेम करने पर प्रेम करते हैं, उनका प्रेम स्वार्थपूर्ण है। वे अपने स्वार्थपूर्ण हितों से ही प्रेरित होते हैं। उनमें न तो सौहार्द्र है और न धर्म । उनका प्रेम केवल स्वार्थ के लिए ही है। वास्तव में वे एक-दूसरे से प्रेम नहीं करते, वरन् अपने से तथा अपने स्वार्थ से ही प्रेम करते हैं। उनका प्रेम केवल आत्म-तृप्ति के लिए है, इसके अतिरिक्त उनका और कोई प्रयोजन नहीं।

"जो लोग प्रेम न करने वालों से प्रेम करते हैं, वे माता-पिता की श्रेणी के हैं। और करुणा तथा स्नेह से पूर्ण होते हैं। उनका व्यवहार धर्म तथा हितैषिता से अनुशासित होता है। ऐसे मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—दयालु तथा

सहृदय । इनमें से प्रथम कोटि के लोग महान् पुण्य अर्जन करते हैं तथा दूसरी कोटि के लोग लोगों की अटूट मैत्री प्राप्त करते हैं।

"इनके अतिरिक्त जो तीसरी श्रेणी के व्यक्ति हैं, जो प्रेम करने वालों से भी प्रेम नहीं करते, फिर प्रेम न करने वालों से प्रेम करने का तो उनके सामने प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसे लोग चार प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो आत्मा में ही लीन रहते हैं. उन्हें बाह्य जगत् की चेतना ही नहीं रहती। दूसरे वे जो कृतकृत्य हो चुके हैं। तीसरे प्रकार के लोग कृतघ्न हैं तथा चौथे वे जो अपने हितैषी को भी आघात पहुँचाते हैं।

"हे सखियो। मैं इन सब श्रेणियों में से किसी में नहीं हूँ। मैं अपने प्रेम करने वालों से आसक्त नहीं होता; परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि मैं उनसे प्रेम नहीं करता। मैं उनके प्रेम को प्रगाढ़ करने के लिए, उनके हृदय को और अधिक अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ही वैसा करता हूँ जिससे उनका हृदय पूर्णतया मुझमें ही लगा रहे। तब उन्हें किसी वस्तु की चिन्ता नहीं रहेगी। वे नित्य निरन्तर मुझसे ही प्रेम करेंगे तथा मेरा ही चिन्तन करेंगे। जैसे किसी निर्धन व्यक्ति को कुछ धन मिल जाये और फिर खो जाये तो वह उसी धन के विषय में चिन्तन करता रहता है, और कुछ नहीं सोचता, वैसे ही जब मैं भक्तों से मिल कर बार-बार छिप जाता हूँ, तो उनके सतत ध्यान का विषय बन जाता हूँ ।

"यद्यपि मुझे देवताओं के समान अमर जीवन प्राप्त है, फिर भी मैं तुम्हारी उत्तम सेवा का बदला कभी नहीं चुका सकता। मेरे साथ तुम्हारा यह सम्बन्ध सर्वथा निर्मल तथा निर्दोष है। तुमने मेरे लिए कठोर पारिवारिक बन्धन को तोड़ डाला है। मैं सदा के लिए तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम्हारी सौम्यता ही तुम्हारी भक्ति का प्रतिफल है। तुम्हारी धर्मपरायणता पूर्णतः फलदायी हो!"

गोपियों का प्रेम

श्रीकृष्ण जी के प्रति गोपियों का प्रेम शारीरिक काम-वासना-जन्य प्रेम न था । उनके लिए भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परमात्मा थे, परमात्मा के चल-रूप थे। उनमें श्रीकृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा थी। उनका ध्यान आते ही वे अपने सांसारिक कार्यों की सुध-बुध को खो कर कृष्ण प्रेम में तन्मय हो जाती थीं।

शैशवावस्था से ही भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको मोहित कर लिया था। वे बहुत ही रूपवान् बालक थे। सौन्दर्य की मूर्ति थे। अतः गोपियाँ उनके जन्म से ही उनसे प्रेम करने लगीं। वे श्रीकृष्ण को अपने बालको की भाँति दुलारती तथा वात्सल्य स्नेह रखती थीं। व्रज की गोपकुमारियाँ उनसे अपने सहोदर भाई की भाँति स्नेह करती हैं, क्या कभी भाई-बहन में कामुक प्रेम सम्भव है? जैसे बहन अपने भाई से स्नेह करती है, उसे दुलारती है तथा उसके साथ खेलती है, वैसा ही प्रेम गोपियों का श्रीकृष्ण के साथ था।

श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम ने शनैः-शनै दिव्य प्रेम का रूप धारण कर लिया। दही मथते समय, कुएँ से जल निकालते समय भी उनका ध्यान श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था। स्नान करते समय वे उनके ही गुणों का वर्णन करती रहती थी। भोजन करते समय तथा सदा-सर्वदा ये उनके विषय में ही सोचा करती थीं। इस प्रकार भगवान् के सतत स्मरण से उनका चित्त कृष्णमय हो गया।

सभी प्राणियों में निद्रा, आहार, भय और मैथुन की प्रवृत्ति समान रूप से पायी जाती है; अतः यह हो सकता है कि वयस्क होने पर गोपियों में भी अंग-संग की कामना जाग्रत हुई हो, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों के हृदय से सुपरिचित थे। उन्होंने उनकी काम वासना का उन्मूलन कर उनके हृदय को उचित दिशा में मोड़ दिया। इसी लक्ष्य को ध्यान में रख कर भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों के संग रास लीला की।

रासलीला के समय वे अनेक श्रीकृष्ण का रूप धारण कर लेते थे। गोपियाँ आश्चर्यचकित यह सब देखती ही रह जातीं। इस अलौकिकता के कारण उनकी शारीरिक प्रेम की चाह जाती रही। आकाश से उन्होंने देवों को पुष्प वृष्टि करते हुए. देखा; गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, चारण इत्यादि को स्तुति गान करते हुए सुना। उन्होंने वैषयिक सुख से करोड़ों गुना अधिक आनन्द रासलीला के समय श्रीकृष्ण के सुखमय संग से उपभोग किया। उन्होंने समाधि-सुख का आनन्द लूटा।

"यह 'यह' है, यह 'वह' है "- यह पार्थक्य भाव उस मनुष्य का केवल भ्रम है जिसका मन विक्षिप्त और अनियन्त्रित है तथा भगवान् के साथ सम्बद्ध नहीं है। अस्थिर मन वाला व्यक्ति विषय-पदार्थों में बहुलता मानने की भूल करता है। यह भूल उसे पुण्य-पाप, उचित-अनुचित तथा अच्छे-बुरे मार्ग पर ले जाती है। इन्द्रियों की स्वाभाविक बहिर्मुखी वृत्ति द्वारा निर्मित भेद के कारण भ्रान्त एवं आश्चर्यचकित हुआ अनियन्त्रित प्राणी संसार में अपना अलग व्यक्तित्व मान बैठता है और कामनाएँ उत्पन्न करना प्रारम्भ कर विषय - सुख भोगता है। मन, इन्द्रिय तथा बुद्धि-कल्पित भेद की यह भ्रान्त धारणा ही कर्म, अकर्म तथा विकर्म का कारण है। जिस व्यक्ति में पुण्य-पाप, उचित-अनुचित तथा भले-बुरे की भावना विद्यमान है, यह कर्म, अकर्म तथा विकर्म का भेद केवज उन्ही के लिए है। भेद-भाव के ज्ञान से ही यह भ्रम उत्पन्न होता है जिससे उचित-अनुचित भला-बुरा तथा पाप-पुण्य का अनुभव या विचार होता है। जिनमें उचित-अनुचित, भले-बुरे तथा पाप-पुण्य की भावना है, केवल उन्हीं मनुष्यों के लिए विहित, अविहित तथा निषिद्ध कर्मों का वेदों ने वर्णन किया है। व्यक्ति को अहंभाव का परित्याग कर तथा इन्द्रियों एवं मन को नियन्त्रित रख कर अखिल विश्व की समस्त वस्तुओं में एक ही ब्रह्म के दर्शन करने चाहिए। मनुष्य को अपने आत्म तत्व का, संसार में सुख एवं एकता का अनुभव करना तथा इस व्यापक विश्व का अपनी आत्मा में और अपनी आत्मा का परमात्मा में दर्शन करना चाहिए।

जो बुरे और भले की भावना से ऊपर उठ चुका है, वह अविहित कर्मों को कुपरिणाम के भय की भावना से करने में नहीं हिचकता और न ही विहित कमों को इस आशा से करता है कि उनसे पुण्य की प्राप्ति हो। वह केवल शिशुवत व्यवहार करता है। उसमें उचित-अनुचित का भाव, शास्त्रीय उपदेशों पर आधारित न हो कर स्वाभाविक होता है। उसने अहंभाव को पूर्णतः नष्ट कर डाला है। संसार के नीति-नियम उसे प्रभावित नहीं करते। उसके लिए

कोई कर्तव्य नहीं है। वह कर्म से ऊपर उठ चुका है। कर्म उसको स्पर्श नहीं कर पाते हैं। जगत् की शिक्षा के हेतु वह विहित कर्मों को करता तथा अविहित का परित्याग करता है। वह उचित-अनुचित- दोनों की सीमा रेखाओं का अतिक्रमण कर चुका है।

इस अद्भुत एवं अभूतपूर्व अनुभव से गोपियों को दृढ विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण एक साधारण मानव नहीं। यद्यपि गोपियाँ कभी-कभी उन्हें नन्द-यशोदा के पुत्र के रूप में ही समझतीं, फिर भी उन्हें दृढ निश्चय हो चुका था कि श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। भगवान् की योग-माया के कारण रास-लीला के समय तक श्रीकृष्ण के भगवद्-स्वरूप की भावना उनमें बलवती न थी।

श्रीमद्भागवत (स्कन्ध १०, अध्याय ३१) के गोपीगीत में इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि गोपियाँ श्रीकृष्ण को परमेश्वर मानती थीं। वे काम-वासना के लेशमात्र से मुक्त हो गयी थीं और भगवान् के प्रेम के बन्धन से आबद्ध थीं।

श्रीकृष्ण के बाल्य काल की अतिमानवीय लीलाओं ने गोपियों में उनक सर्वज्ञता तथा सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास उत्पन्न कर दिया। भला क्या इस संसार में इतना निम्न कोटि का मूर्ख हो सकता है जो सम्पूर्ण मानवीय आकांक्षाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् के प्रति निम्न वासनात्मक प्रेम रखे ? मानव-अनुभवगम्य सम्पक सुखों के भगवान् ही परम कारण है। भगवान् का साक्षात् दर्शन कर लेने पर ऐसा कोई महान मूर्ख है जो क्षुद्र सुख की कामना रखे? मिश्री की डली प्रचुर मात्रा में प्राप्य होने पर क्या कोई गुड़ की आकांक्षा करेगा ?

इससे यह स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम दिव्य था। उनमें अनन्य भक्ति थी और वे कामोपभोग की सभी प्रकार की निम्न तथा क्षुद्र तृष्णाओं से मुक्त थी।

रासलीला का रहस्य

रासलीला वह दिव्य क्रीड़ा है जिसमें भक्त प्रेम के द्वारा भगवान् से ऐक्य प्राप्त करता है। रस प्रेम का मधुरतम तत्त्व है। यह दिव्य प्रेम की वह अभिव्यक्ति है जो भक्त को भगवत्साक्षात्कार के उच्चतम शिखर पर ले जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला रहस्यों का रहस्य है। यह अत्यन्त गुह्य है, यह बौद्धिक विलास का विषय नहीं। यह तो भक्तों के मूक ध्यान का विषय है। भगवद्-भक्ति-हीन अश्रद्धालु आलोचकों पर इसे प्रकट नहीं करना चाहिए। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए। पूर्ण आत्मार्पण तथा भगवान् का सायुज्य प्राप्त कराने वाली भक्ति की श्रेष्ठतम विभूति माधुर्य रस का इसमें वर्णन है।

श्रीकृष्ण ने पवित्र प्रेम द्वारा विषय-वासना को नष्ट करने के लिए ही रासलीला की थी। उन्होंने रासलीला द्वारा जगत् को यह शिक्षा दी कि किस प्रकार राग को वैराग्य तथा प्रेम में परिणत किया जाये तथा किस प्रकार

मन को काम-वासना से हटाया जाये। उन्होंने प्रदर्शित किया कि माधुर्य-रस द्वारा व्यक्ति आत्म-निवेदन कर सकता है तथा अपने हृदयेश भगवान् का सायुज्य प्राप्त कर सकता है।

जिस समय श्रीकृष्ण ने रासलीला की, उस समय वे केवल दस वर्ष के थे। नृत्य-काल में गोपियों ने अपने अन्तर, बाह्य, चतुर्दिक् तथा सर्वत्र ही श्रीकृष्ण को देखा। वे अपने घर, पति, पुत्र तथा माता-पिता-सबकी सुध-बुध खो बैठीं। उनका हृदय भगवान् श्रीकृष्ण में लीन गया। प्रेमाग्नि ने उनके हृदय को विगलित कर दिया। प्रेम-रस ने उनके हृदय को श्रीकृष्ण से संयोजित कर दिया। गोपियाँ साधारण स्त्रियाँ न थीं, उनका व्यक्तित्व महान् था।

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के २९, ३०, ३१, ३२ तथा ३३ – इन पाँच अध्यायों में रासलीला का वर्णन है। रासलीला प्रारम्भ होने पर गोपियों के मद-मान-मर्दन करने के लिए श्रीकृष्ण अदृश्य हो गये। गोपियाँ श्रीकृष्ण को खोजती हुई यमुना जी के वालुकामय पुलिन पर श्रीकृष्ण के पुनरागमन की आशा में एकत्रित हुई और गोपी-गीत गाना प्रारम्भ किया। अकस्मात् भगवान् श्रीकृष्ण प्रलाप करती गोपियों के मध्य में प्रकट हो गये और उन्होंने उनके साथ नृत्य किया।

भागवत का दशम स्कन्ध सारे भागवत का सार माना जाता है और दशम स्कन्ध की रासलीला के पाँच अध्याय दशम स्कन्ध के सार हैं। सारे संस्कृत-साहित्य के विशाल क्षेत्र में आपको रास-पंचाध्यायी के समान विवरण नहीं मिलेगा। आत्म-प्रेरक, उत्कृष्ट तथा रहस्यात्मक हैं। इनके दार्शनिक विचार बहुत गूढ़ हैं।

जिसमें शास्त्र तथा भगवान् के अस्तित्व में पूर्ण विश्वास है, जिसमे गुरु-भक्ति है, जिसने अपने इन्द्रिय तथा मन को वश में कर लिया है, जो विवेक, वैराग्य शुचिता से सम्पन्न है, जो भगवान् के दर्शन तथा साक्षात्कार के लिए व्याकुल है और जो भक्त तथा सन्तों के बीच में रहता है, वही रासलीला के पाठ का अधिकारी है, केवल उसी व्यक्ति को इसका रहस्य, इसका दिव्य स्वरूप और भाव हस्तामलकवत प्रकट हो सकता है।

एक विषय-परायण व्यक्ति, जिसका हृदय इन्द्रिय-सम्भोग तथा काम-वासनाओं में लिप्त है, जिसने अपनी इन्द्रियों को अनियन्त्रित छोड़ दिया है, जो इन्द्रिय-परायणता से ऊपर उठना नहीं चाहता, जो अतीन्द्रिय वस्तुओं तथा मानवी चेतना से परे सुखोन्मादमय दिव्य जीवन में विश्वास नहीं करता, उसके लिए भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं का वर्णन करने वाले ये पाँचों अध्याय कलुषित साहित्य के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं । उसे भागवत के इस खण्ड के अध्ययन से कुछ भी लाभ न होगा।

रासलीला के इन श्लोकों का गान करते समय श्री नारद, व्यास, शुकदेव तथा गौरांग-जैसे महर्षियों तथा भागवतों के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होती थी। नैमिषारण्य के मुनियों ने बड़े प्रेम-भाव से ध्यानपूर्वक इसे श्रवण किया। महाराजा परीक्षित ने मोक्ष की प्राप्ति के लिए अपनी मृत्यु-शय्या पर इन्हें श्रवण किया। जिस प्रकार बन्दरों के लिए मोती का कोई मूल्य नहीं है वैसे ही नास्तिक, भौतिकवादी तथा कामी व्यक्ति के लिए सच्चे भक्तों को भगवान् के समीप पहुँचाने वाली इन उत्कृष्ट बातों का कोई महत्त्व नहीं है।

सारी रासलीला भक्ति रस से ओत-प्रोत है। यह एक पवित्र यज्ञ है। परा-भक्ति में जीवात्मा (गोपिकाएँ) परमात्मा अर्थात् भगवान् कृष्ण में लीन हो गयीं । दो अब एक हो गये। यही परा-भक्ति द्वारा वेदान्त की अद्वैतानुभूति है। श्रीकृष्ण तथा जागनाओं का सम्बन्ध अत्यन्त पवित्र था। उसमें काम-वासना का लेश भी न था। क्या उसमें विषय-वासना का लेश हो सकता है, जो त्रिलोकी का स्रष्टा, पालक तथा संहारक है, जो सभी भूतों की योनि है, जो शुद्धस्वरूप है तथा जो धर्मरक्षक और जगद्गुरु है ?

भगवान् से योग प्राप्त करना ही रासलीला का उद्देश्य था। केवल प्रेम-भक्ति के. द्वारा ही भगवान् का सायुज्य प्राप्त हो सकता है, जो कि वृन्दावन की गोपियों में थी। भगवान् श्रीकृष्ण तथा गोपियों में शुद्ध प्रेम का बन्धन था, उनमें काम-वासना की गन्ध भी न थी। वे बहुत ही शुद्ध तथा पवित्र थीं। सांसारिक वृत्ति वाले मनुष्य चाहे वे कितने ही बुद्धिमान् क्यों न हो, इस शुद्ध प्रेम की कल्पना भी नहीं कर सकते। सांसारिक मानव स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध केवल काम-वासना के निमित्त ही अनुमान करेगा; क्योंकि उसकी बुद्धि पर आवरण पड़ा हुआ है तथा उसकी समझ तमसाच्छत्र है। वह इस दिव्य प्रेम की किंचित् झलक तभी पा सकता है, जब वह अपनी माता के प्रति अपने प्रेम को स्मरण करे। क्या यह प्रेम काम वासना से मुक्त नहीं है?

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी योगमाया से अपने भक्तों को आनन्दप्रद रासलीला सत्य का मार्ग दिखलाया। रासलीला काम पर विजय की शिक्षा देती है। ये पाँचों अध्याय सांसारिक विषयों से पूर्णतः उपरत बनाने के लिए ही हैं।

शरत्कालीन रात्रि थी। शुभ्र ज्योत्स्ना बिखर रही थी, जिससे गोपियों का हृदय उल्लसित हो उठा। भगवान् श्रीकृष्ण ने रात्रि को यमुना जी के तट पर मधुर गीत गाया और बाँसुरी पर मधुर तान छेड़ी। गोपियों ने अपना-अपना काम छोड़ दिया और वे अपने प्रिय श्रीकृष्ण के पास चल पड़ीं। उनका मन श्रीकृष्ण में लीन था।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, “तुम सब अपने-अपने घरों को लौट जाओ तथा अपने पति, पुत्र एवं माता-पिता की देखभाल करो। बछड़े रंभा रहे हैं और तुम्हारे बच्चे रो रहे हैं। पातिव्रत्य ही स्त्रियों का परम धर्म है।"

गोपियों ने उत्तर दिया, "हे प्रभु! आपके लिए हम सबने सब-कुछ त्याग दिया है और आपके चरण-कमलों की शरण ली है। आप ही सारी धार्मिक शिक्षाओं के लक्ष्य हैं। शाश्वत सुख के स्रोत आपसे जब हमारा प्रेम है तो हम पति-पुत्रादिकों की चिन्ता करें जो कि दुःख के कारण हैं। हमें अपनी सेवा का अवसर दीजिए।”

भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकी आर्त विनती से द्रवित हो कर उन्हें वहाँ रहने दिया। भगवान् के साहचर्य से गोपियाँ बहुत गर्वीली हो गयीं। उन्होंने सोचा कि संसार के सब लोगों में हम ही सर्वश्रेष्ठ है। भगवान् उनके गर्व को दूर करने के लिए अकस्मात अन्तर्धान हो गये।

गोपियों के हृदय में बहुत ही वेदना हुई और वन-वन में श्रीकृष्ण को ढूंढतह फिरीं। वे वृक्ष, पौधों, लताओं, पृथ्वी तथा मृगों से पूछतीं कि क्या किसी ने प्रियतम कृष्ण को देखा है ? उनके कपोलों पर अश्रुधारा बह चली।

उनका सारा ध्यान श्रीकृष्ण में ही लगा था। वे श्रीकृष्ण की ही चर्चा करती थीं, वे कृष्णमय हो रही थी। वे श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाएँ करने लगीं। वे यमुना तट पर गयीं और एक-साथ मिल कर श्रीकृष्ण के गुणों का गायन करने लगीं तथा उनके वापस आने के लिए हार्दिक प्रार्थना करने लगी। ये गीत सुधा के समान मधुर है तथा बहुत ही हृदयस्पर्शी है।

श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए प्रकट हो गये। गोपियाँ प्रसन्न हो गयीं। उनकी विरह वेदना शान्त हो गयी। श्रीकृष्ण ने कहा, "हे प्रिय गोपिया, तुम लोगों ने मेरे लिए अपने पति पुत्र तथा सगे-सम्बन्धियों को भी छोड़ दिया है। मैं कुछ समय के लिए छिप गया था जिससे तुम्हारा प्रेम निरन्तर प्रवाहित होता रहे। तुम सब मुझे अत्यन्त प्रिय हो। यदि मैं अनन्त काल तक जीवित रहँ, तो भी मैं तुम्हारे प्रेम का बदला नहीं चुका सकता। मेरे साथ तुम सबने सर्वथा निर्मल तथा पवित्र सम्बन्ध स्थापित किया है।"

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ रासलीला प्रारम्भ की। उनके दोनों और एक-एक गोपी थी और गोपियों के दोनों ओर श्रीकृष्ण थे। गोपियों ने वृत्त बनाया । योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियों के बीच में थे। सभी गोपियाँ ऐसा अनुभव करती थीं कि श्रीकृष्ण हमारे ही पास हैं। क्या ही महान् कौतुक था वह! सर्वशक्तिमान् भगवान् ही अनेक रूप धारण करने का चमत्कार कर सकता है। क्या यह श्रीकृष्ण की सर्वशक्तिमत्ता का द्योतक नहीं है? अपनी-अपनी पत्नियों के साथ देवताओं के शत-शत विमानों की आकाश में भीड़ लग गयी। वे रासोत्सव देखने को उत्सुक हो रहे थे। उन्होंने ऊपर आकाश से पुष्प वृष्टि की, गन्धर्वों ने भगवान् के यश का गायन किया।

राधा अथवा राधिका गोपियों में प्रधान थीं। उन्होंने श्रीकृष्ण की आराधना की थी। 'राधिका' का शब्दार्थ है जो राधना या आराधना करें। राधा प्रेम की मूर्ति थीं । वे स्वयं भगवान् कृष्ण का ही स्वरूप थीं। अग्नि और ताप के सदृश्य राधा- -कृष्ण हैं। रासलीला के द्वारा भगवान् ने यह प्रकट किया कि वे ही वास्तविक पति अथवा मित्र हैं। वे ही इस देह में परम पुरुष है। वे ही भर्ता, भोक्ता, महेश्वर तथा परमात्मा हैं (गीता १३-२२) । वे ही सभी इन्द्रियों के प्रकाशक है। वे ही सब प्राणियों में निवास करते हैं। उन्होंने स्वयं ही शरीर, मन, प्राण तथा इन्द्रिया का रूप धारण किया है। वे ही कर्ता तथा भोक्ता है। श्रृंगार रस के द्वारा उनका भी मन भगवान् की ओर आकर्षित हो जाता है, जो भगवान् से विमुख है; इसीलिए भगवान् की वह प्रेम-लीला हुई। भगवान् की योगमाया से ब्रजवासी गोपों ने अपनी पत्नियों को अपने पास से अलग होने का अनुभव नहीं किया। क्या ही चमत्कार! एक गोपी को उसके घर वालों ने बलपूर्वक रोक लिया। वह अविलम्ब ही अपना यह भौतिक शरीर परित्याग कर श्रीकृष्ण से मिल कर एक हो गयी। क्या इससे यह प्रकट नहीं है कि श्रीकृष्ण भगवान् थे और उनके प्रति गोपियों का प्रेम वासनात्मक न था? गोपियाँ भगवान् की सबसे बड़ी भक्त थीं। भक्ति-भाव के चरमोत्कर्ष-रूप माधुर्य भाव के द्वारा श्रीकृष्ण की आराधना कर वे भक्ति के उच्चतम शिखर पर जा पहुँची थीं।

वे मनुष्य जो संसार-सागर में निमग्न हैं तथा जिनका मन काम-वासना से भरा हुआ है, भगवान् को अन्यथा समझ कर इस रासलीला पर आक्षेप करते हैं। प्रेमी के लिए रति ही प्रेम का श्रेष्ठतम रूप है। भगवान् से

उसी प्रकार का प्रेम होना चाहिए जैसे की राधा जी श्रीकृष्ण से प्रेम करती थीं। हमारे ग्रन्थों में राधा का प्रेम सर्वोच्च प्रेम के रूप में विख्यात है।

त्रिलोकी में राधा के प्रेम की समता नहीं है। एक बार राधा रुष्ट तथा मानिनी हो कर रास - मण्डल को छोड़ कर चली गयीं। श्रीकृष्ण राधा के लिए शोकाकुल हो गोपियों के साथ नृत्य करना बन्द कर वन में भटकते फिरे। राधा के न मिलने पर वे अत्यन्त शोक सन्तप्त हुए, सहस्रों गोपियाँ उन्हें सन्तुष्ट न कर सकीं। इससे ही आप राधा के गुणों का अनुमान लगा सकते हैं।

राधा महाभाव का स्वरूप हैं। रासलीला का रहस्य सर्वसाधारण भक्तों के जानने की वस्तु नहीं। इनके रहस्य का तो भाग्यवती गोपियों को ही पता था। गोपियाँ ही इसकी अधिकारी थीं। शान्त, दास्य और वात्सल्य भाव वाले भक्तों को इसे समझ सकना कठिन ही है। माधुर्य भाव अथवा सखी-भाव से श्रीकृष्ण की उपासना करने वाले भक्त ही रास से आनन्द उठा सकते हैं।

गोपियों का प्रेम काम-वासना का न था। वह पवित्र, निष्काम, दिव्य प्रेम था। वे श्रीकृष्ण के आलिंगन के लिए लालायित न थीं। उनका यथाशक्य यही प्रयास रहता था कि श्रीकृष्ण राधा का आलिंगन करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे अनेकानेक बहानों से श्रीकृष्ण को राधा के पास भेजती थीं। इससे वे अपने मिलन की अपेक्षा सैकड़ों गुना अधिक आनन्द लूटती थी। श्रीकृष्ण गोपियों के पवित्र निःस्वार्थ प्रेम को देख कर बहुत ही प्रसन्न होते थे। गोपियों के निःस्वार्थ प्रेम ने उनके प्रेम-रस को प्रगाढ़ कर दिया।

गोपियाँ अथवा सखियाँ अपने सुख के लिए श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा करने की किंचित भी इच्छा न रखती थीं। श्रीकृष्ण को राधा का आलिंगन करने के लिए प्रेरित करने में ही हार्दिक आनन्द लेती थीं। राधा कृष्ण प्रेमवल्लरी थी। गोपियाँ इस लतिका के पत्र, पुष्प और कोमल शाखाओं के रूप में थीं। यदि कृष्ण-बिहार के अमृत-जल से इस लता का सिंचन किया गया तो पत्र, पुष्प और कोपल अपने सीचे जाने की अपेक्षा करोड़ों गुना अधिक प्रफुल्लित होंगे।

यदि आप श्रीकृष्ण को प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको गोपी की तरह उनकी सेवा करनी होगी, आपको गोपी भाव से उनकी आराधना करनी होगी। जो श्रीकृष्ण की उपासना सखी-भाव से करते हैं, वे माधुर्य-रस के आनन्द का उपभोग करते हैं।

रासलीला का अभिनय शुद्ध मन वाले भक्तों को ही करना चाहिए और वह भी किसी बन्द स्थान में भक्ति-भाव--सम्पन्न कुछ चुने हुए व्यक्तियों के ही सम्मुख। तभी वह दर्शकों पर अपना अमिट प्रभाव डाल सकेगा और उनके हृदय में भक्ति जाग्रत कर सकेगा। माधुर्य-भाव परम पवित्र भाव है।

आधुनिक काल में स्वार्थी व्यक्ति तथा दम्भी भक्त धन के लोभ से कृष्ण-राधा का अभिनय अपवित्र हृदय से खुले रंगमंच पर करते हैं। इससे दर्शकों के मन पर दूषित प्रभाव ही पड़ता है। लोगों को ऐसी रासलीला में

सम्मिलित नहीं होना चाहिए। उन्हें ऐसे लोगों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए जो अपने विषैले प्रचार से जनता को महान क्षति पहुँचाते हैं। जो अपने शरीर और वासना के दास हैं, उन्हें अपने मन में भी रासलीला का चिन्तन नहीं करना चाहिए। यदि वे अज्ञानवश ऐसा करते हैं, तो उनका विनाश निश्चित समझिए। क्षीर सागर से निकले हुए विष का पान तो केवल शिव ही कर सकते हैं।

जो पुरुष ब्रजांगनाओं के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की इस पवित्र लीला का श्रवण अथवा वर्णन करता है, उसे भगवान् में परा-भक्ति की प्राप्ति होती है और वह बहुत शीघ्र अपने हृदय के रोग, काम-विकार से छुटकारा पा जाता है।

व्रजयुवतियों के समान अपने मन को भगवान् में लीन कर आप सभी अपने हृदय रूपी वृन्दावन में नित्य रासलीला करें।

रासलीला

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी प्रेयसी और सेविका गोपियों के साथ रासलीला प्रारम्भ की। वे एक-दूसरे की बाँह में बाहें डाले एक चक्र बनाये हुए खड़ी थीं। सम्पूर्ण योगों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियों के बीच में उपस्थित हो गये और निकट वाली गोपी के गले में अपना हाथ डाले हुए उस गोपी-मण्डल में अपनी रासलीला प्रारम्भ की। सभी गोपियाँ ऐसा अनुभव करती थीं कि हमारे प्रियतम तो हमारे ही पास है। अपनी-अपनी पत्नियों के साथ देवों के शत-शत विमानों से आकाश भर गया। वे रासोत्सव देखने को उत्सक थे। दुन्दुभियाँ बजायी गयीं और पुष्प-वर्षा होने लगी । गन्धर्व गण अपनी-अपनी पत्नियों के साथ भगवान् के निर्मल यश का गायन करने लगे। अपने प्रियतम के साथ नृत्य करती हुई व्रजयुवतियों के कंगन, चूड़ी, बाजूबन्द तथा पायल से सारा रास मण्डल झंकृत हो उठा। भगवान् वासुदेव उन युवतियों के मध्य में ऐसे शोभायमान तथा दीप्तिमान हो रहे थे मानो स्वर्ण मणियों के हार के मध्य में नीलम हो ।

अपने सन्तुलित पद- संचार, सुन्दर हाव-भाव, मनोहारी मुस्कान, मोहक भ्रू-भंगिमा, कपोलों पर झूमते हुए कुण्डल, लचकीला बदन, मुख पर लटकती हुई अलकों, मुखारविन्द से टपकते हुए स्वेद-कणों तथा ढीली पड़ी हुई चोटियों के साथ गोपियों ने गाना आरम्भ किया। उस समय वे नीले मेघ-मण्डल को प्रकाशित करने वाली बिजली की कौंध के समान शोभायमान प्रतीत हो रही थीं।

गोपियाँ श्रीकृष्ण का संस्पर्श पा पा कर आनन्दमन हो रही थीं। उनके संगीत से विश्व गूंज उठा। वे बड़े प्रेम से ऊँचे स्वर में गा रही थीं। एक गोपी ने श्रीकृष्ण के स्वर में स्वर मिला कर उनके साथ गाना प्रारम्भ किया। वह अचानक और ऊँचे स्वर में राग अलापने लगी और उसने बहुत ही सुन्दर गाया। 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कह कर भगवान् ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। इसी भाँति प्रोत्साहित हो कर उसने उसी राग को ध्रुपद में गाया। भगवान् ने पुनः उसे सम्मानित किया।

एक गोपी नृत्य करते-करते थक गयी। उसकी चोटियों से बेला के फूल खिसकने लगे और कलाइयों के कंगन ढीले पड़ गये। उसने श्रीकृष्ण के गले में बाँहें डाल दीं और उन्हें कस कर अपने से लगा लिया।

दूसरी गोपी ने अपने कन्धे पर रखे हुए चन्दन लगे हुए तथा कमल से सुगन्धित श्रीकृष्ण के हाथ को सूँघा । उसने आनन्द से पुलकित हो उसे चूम लिया।

एक दूसरी गोपी ने अपने कपोलों को श्रीकृष्ण के कपोलों से सटा दिया जो कि नृत्य करते समय कुण्डल की चमक से सुशोभित हो रहे थे।

एक दूसरी गोपी पायलों को झंकृत करती हुई उनके साथ गान तथा नृत्य करती रही। जब वह थक गयी, तब उसने श्रीकृष्ण का शान्तिदायक कर-कमल अपने वक्षस्थल पर रख लिया।

इस भांति लक्ष्मीपति भगवान् अच्युत को पा कर तथा उनके भुज पाश में आलिंगित हुई गोपियां उनके साथ गायन करती हुई बिहार करने लगी। कानों में कुमुदिनी से उनका मुखारविन्द अधिक शोभित हो रहा था। कपोलों पर अलके लटक रही थीं। उनके मुख-मण्डल पर स्वेद-कण थे। अपने कंगन और पायल पर रास-मण्डल में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही थी। भ्रमर वहां गायक थे।

जैसे नन्हा सा बालक दर्पण में पड़े हुए अपने प्रतिबिम्ब के साथ खेलता है, वैसे ही श्रीकृष्ण ने हाथ से उनके अंग स्पर्श करके, प्रेम-भरी चितवन से, मनोहारी हास्य से एवं मधुर मुस्कराहट से व्रजांगनाओं को प्रमुदित करते हुए उनके साथ क्रीड़ा की।

परीक्षित। भगवान् के अंगों का स्पर्श प्राप्त कर गोपियों की इन्द्रियों आनन्द-विह्वल हो गयीं। फूलों के हार टूट गये और उनके आभूषण ढीले हो कर अपने स्थान से गिर पड़े। वे अपने केश, वस्त्र और कंचुकी को भी पूर्णतया सँभालने में असमर्थ थीं। भगवान् श्रीकृष्ण की यह रासलीला देख कर देवांगनाएँ काम से आहत हो मोहित हो गयीं। समस्त तारों और ग्रहों के साथ चन्द्रमा विस्मित हो स्थिर रह गये। यद्यपि भगवान् आत्माराम हैं फिर भी उन्होंने खेल-खेल में, जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण कर उनके साथ विहार किया।

जब गोपियाँ बहुत श्रान्त हो गयीं, तब करुणामय भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सुखद हाथों से उनके मुख पर से श्रम-कण पोंछे। भगवान् के कर-स्पर्श से गोपियों को बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपने कपोलों के सौन्दर्य से, जिन पर सोने के कुण्डल झिलमिला रहे थे और घुँघराली अलकें लटक रही थीं तथा उस प्रेम-भरी चितवन और सुधा से भी अधिक मधुर मुस्कान से श्रीकृष्ण का सम्मान किया और प्रभु की पवित्र लीलाओं का गायन किया।

जैसे गजराज बाँध को तोड़ता हुआ हथिनियों के साथ जल में प्रवेश करता। वैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी थकान दूर करने के लिए गोपियों के साथ यमुना जल में प्रवेश किया। गन्धर्वराज की तरह उनके यश का गायन करते हुए भ्रमर पीछे-पीछे चल रहे थे।

तत्पश्चात् गोपियों ने प्रेम-भरी चितवन से देखते हुए और हँस-हँस कर श्रीकृष्ण के ऊपर जल उलीचा विमानों पर चढ़े हुए देवता पुष्पवृष्टि करके उनकी स्तुति करने लगे। इस भांति आत्माराम भगवान् श्रीकृष्ण ने गजराज के समान यमुना जी में जल-विहार किया।

तदुपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण जल से बाहर आये और गोपियों तथा भौरों की भीड़ से घिरे हुए यमुना तट के कुंज में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने जल तथा स्थल के पुष्पों से सुरभित रमणीय वायु में गजराज की भाँति विहार किया। पूर्णचन्द्र ने अपनी शुभ्र रजत ज्योत्स्ना समस्त भूमण्डल में बिखेर रखी थी। कवियों ने शरद ऋतु की जिन रस-सामग्रियों का वर्णन किया है, उन सभी से वह रात्रि युक्त थी। भगवान् ने चाँदनी रात्रि अपनी प्रेयसी गोपियों के संग बितायी।

राजा परीक्षित ने कहा, "भगवान्! समस्त जगत् के एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण ने धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश के उद्‌देश्य से ही अपने एक अंशा से अवतार ग्रहण किया था। वे धर्म-मर्यादा को बनाने वाले, उपदेश करने वाले और रक्षक थे। उन्हें तो आदर्श उपस्थित करना था। फिर उन्होंने स्वयं धर्म के विपरित पर-स्त्रियों से प्रेम और उनका स्पर्श कैसे किया ? भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णकाम थे। उन्हें किसी भी वस्तु की कामना न थी। उन्होंने निन्दनीय कर्म किया। उन्होंने यह अनुचित काम क्यों किया? ऐसा करने में उनका क्या अभिप्राय रहा होगा? हे मुनिसत्तम। आप कृपा करके मेरा यह सन्देह मिटाइए।"

श्री शुकदेव जी ने उत्तर दिया, "राजन्! ईश्वर कभी-कभी धर्म का उल्लंघन और साहस का काम करते देखे जाते हैं। किन्तु उन तेजस्वी पुरुषों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यानी महान् आत्माओं को इन कर्मों का कोई दोष नहीं होता। अग्नि सब कुछ खा जाती है; परन्तु उन पदार्थों के दोष से लिप्त नहीं होती। जिसने अपनी वासनाओं पर आधिपत्य नहीं प्राप्त किया है, जो अपनी देह का गुलाम है, उसे मन से भी ऐसी बात नहीं सोचनी चाहिए, शरीर से करना तो दूर रहा। यदि मूर्खतावश कोई ऐसा काम कर बैठे, तो उसका नाश हो जाता है। जैसे भगवान् शंकर के अतिरिक्त यदि कोई दूसरा व्यक्ति विषपान करे, तो वह नाश को प्राप्त करता है। क्षीर-सागर से निकले हलाहल का पान तो रुद्र ही कर सकते हैं।

"सामर्थ्यवान् पुरुषों के वचन सत्य मानने चाहिए और उसी के अनुसार आचरण करना चाहिए। उनके आचरण का अनुकरण तो कभी-कभी किया जाता है। वे विशेष उद्‌देश्य के लिए ही असाधारण परिस्थितियों में अलौकिक जीवन-यापन करते है। यह सर्वसाधारण के लिए सदा अनुकरणीय नहीं है। अतः बुद्‌धिमान् मनुष्य को चाहिए कि उनके उपदेशों को अपने जीवन में उतारे। वे मानव-कल्याण के लिए है।

"सामर्थ्यवान् पुरुष अहंकार-रहित होते हैं, शुभ कर्म करने में उनका कोई लाभ नहीं होता और न अशुभ कर्म करने में उनकी कोई हानि होती है। वे शुभ और अशुभ, पाप और पुण्य से ऊपर उठे होते हैं। जब सामर्थ्यवान् पुरुषों के विषय में ऐसी बात तो समस्त जीवों के प्रभु भगवान् के लिए अशुभ और शुभ कैसा? क्या यही अदभुत बात है कि मनुष्य तथा दूसरे प्राणी, जिनके भगवान् नियामक है। पुण्य और पाप कर्म से मुक्त है और जगत् के प्रभु के चरित्र का माप साधारण मनुष्य के शुभ और अशुभ धारणाओं की कसौटी पर हो ?

"जिनके चरण-कमलों में प्रेम कर तथा जिनसे योग प्राप्त करन शुभ-अशुभ के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं: वे कर्म के बन्धनों से आबद्ध नहीं होते और स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करते हैं, वे ही भगवान् लोक-कल्याण के लिए स्वेच्छा से शरीर धारण करते हैं, तो भला उनमें कर्म-बन्धन कैसे आरोपित किया जा सकता है?

"वे गोपियों के, उनके पतियों के और सम्पूर्ण शरीरधारियों के अन्तःकरण में विराजमान हैं । वे अन्तर्यामी हैं। उन्होंने लीला के हेतु ही शरीर धारण किया था। अपने भक्तों पर कृपा करने के लिए ही भगवान् ने मनुष्य-रूप धारण किया और ऐसी लीलाएँ की जिन्हें सुन कर मनुष्य भगवत्परायण हो जाये।

"परीक्षित! वज्रवासी गोपों ने भगवान् श्रीकृष्ण में कभी भी दोष-दृष्टि नहीं की: क्योंकि वे भगवान् की योगमाया से मोहित हो रहे थे और अपनी पत्नियों को सदा अपने पास ही पाते थे।"

रात्रि का अवसान निकट आया । उषा का आगमन हुआ ! प्रेमी गोपियाँ श्रीकृष्ण के इच्छानुसार अन्यमनस्क भाव से अपने-अपने घर वापस चली गयीं।

जो पुरुष व्रजयुवतियों के साथ श्रीकृष्ण की इस रासलीला का श्रद्धा के साथ श्रवण अथवा वर्णन करता है, उसे परा-भक्ति की प्राप्ति होती है, वह ज्ञान प्राप्त करता है और बहुत ही शीघ्र वह अपने हृदय के रोग काम-विकार से छुटकारा पा जाता है। वह शीघ्र ही मन की मल-वासनाओं को नष्ट कर डालता है। वह आत्म-दमन कर हृदय के सभी विकारों से मुक्त हो जाता है।

द्वितीय अध्याय

उपदेश

श्रीकृष्ण तथा उद्धव

ब्रह्मा तथा अन्य देव गण द्वारकापुरी गये। ब्रह्मा जी ने कहा, "प्रभो। यदुवंश में अवतार ले कर अत्याचारी राजाओं से पृथ्वी की रक्षा करने की हमारी प्रार्थना को आपने पूरा कर दिया है। हमारे प्रार्थित सभी काम पूरे हो चुके हैं। आपको यदुवंश में अवतार ग्रहण किये एक सौ पचीस वर्ष व्यतीत हो चले है। वह कुल भी अब नष्टप्राय हो चुका है; अतः आप अपने परम धाम को पधारिए।"

भगवान् ने कहा, “अब ब्राह्मणों के शाप से यदुवंश का नाश प्रारम्भ हो चुका है। इसका अन्त हो जाने पर मैं अपने धाम को चला जाऊँगा।" ब्रह्मा जी अपने धाम को चले गये।

भगवान् ने यदुकुल के बड़े-बूढ़ों से कहा, "चारों ओर बड़े-बड़े अपशकुन हो रहे हैं। हमारे वंश पर ब्राह्मणों का घोर शाप है। हमें आज ही परम पवित्र प्रभास क्षेत्र के लिए चल पड़ना चाहिए।" यदुवंशी प्रभास क्षेत्र जाने की तैयारी में लग गये।

उद्धव जी ने घोर अपशगुन देख कर और जो कुछ भगवान् ने आज्ञा दी थी, उसे सुन कर श्रीकृष्ण से कहा, “यदुवंश का संहार होते ही आप इस लोक का परित्याग कर देंगे। हे केशव! मैं आधे क्षण भी आपके चरण-कमलों का वियोग नहीं सहन कर सकता। हे प्रभो! आप मुझे भी अपने धाम में ले चलिए।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "तुमने जो कुछ कहा है, वही होने वाला है। जिस काम के लिए ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर मैं अपने एक अंश से अवतीर्ण हुआ था, इस पृथ्वी पर देवताओं का वह सारा कार्य पूरा हो चुका है।

"यदुवंशी पारस्परिक फूट से नष्ट हो जायेंगे। आज के सातवें दिन समुद्र इस पुरी को आत्मसात् कर लेगा। जिस क्षण में इस भूलोक का परित्याग कर दूंगा, कलि इस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेगा और मनुष्य अधार्मिक बन जायेंगे। तब तुम यहाँ न रहना।

"सभी रागों से अपने को मुक्त करो। अपने आत्मीय स्वजन और बन्धु-बान्धवों छोड़ दो। अनन्य प्रेम से मुझमें अपना मन लगाओ। प्राणियों में मेरा दर्शन करते हुए, सभी जीवों में समदृष्टि रखते हुए इस पृथ्वी पर स्वच्छन्द विचरण करो। जो कुछ तुम इन्द्रियों से देखते अथवा ग्रहण करते हो, जो कुछ अपने मन से सोचते हो, सब मिथ्या है, नाशवान् है। ये तुम्हारे मनसे माया की कल्पना है।

"यह 'यह' है, यह 'वह' है—यह पार्थक्य-भाव उस मनुष्य का केवल भ्रम है, जिसका मन विक्षिप्त और अनियन्त्रित है और मुझसे सम्बद्ध नहीं है। असयंत मन वाला व्यक्ति विषय-पदार्थों में बहुलता मानने की भूल करता है। यह भूल उसे पुण्य-पाप, उचित-अनुचित तथा अच्छे-बुरे मार्ग पर ले जाती है। इन्द्रियों की स्वाभाविक बहिर्मुखी वृत्ति द्वारा निर्मित भेद के कारण भ्रान्त एवं आश्चर्यचकित अनियन्त्रित प्राणी संसार में अपना अलग व्यक्तित्व मान बैठता है और कामनाओं का सृजन करना प्रारम्भ कर विषय-सुख भोगता है। मन, इन्द्रियों तथा बुद्धि द्वारा कल्पित भेद की यह प्रान्त धारणा ही कर्म, अकर्म तथा विकर्म का कारण है। जिन व्यक्तियों में पुण्य-पाप, उचित-अनुचित तथा भले-बुरे की भावना विद्यमान है, यह कर्म, अकर्म तथा विकर्म का भेद केवल उन्हीं के लिए है। भेद-भाव के ज्ञान से ही यह भ्रम उत्पन्न होता है जिससे उचित-अनुचित, भले-बुरे तथा पाप-पुण्य का अनुभव या विचार होता है। जिनमें उचित-अनुचित, पाप-पुण्य तथा भले-बुरे की विभेद-दृष्टि है, केवल उन्हीं मनुष्यों के लिए विहित, अविहित तथा निषिद्ध कर्मों का वेदों में प्रतिपादन है। अहंभाव का परित्याग करो। समस्त इन्द्रियों तथा मन को नियन्त्रित करो और जगत् की सभी वस्तुओं में ब्रह्म अथवा अपनी आत्मा की भावना करो। अपने आत्म-तत्त्व का, संसार में सुख एवं एकता का साक्षात्कार करो। इस व्यापक विश्व को अपनी आत्मा में और अपनी आत्मा को मुझ परमात्मा में देखो।

"सभी वेदों के मुख्य तात्पर्य-रूप ज्ञान और एक आत्मा अथवा ब्रह्म अनुभव-रूप विज्ञान से जब सम्पन्न हो कर तुम अपनी आत्मा के अनुभव में ही मत्र रहोगे और सभी शरीरधारियों के आत्मा हो जाओगे तो तुम विघ्न-बाधाओं से पीड़ित नहीं होगे।

"जो पुरुष गुण और दोष-बुद्धि से अतीत हो जाता है, वह बालक के समान होता है। वह न तो निषिद्ध कर्म में दोष-बुद्धि से निवृत्त होता है और न विहित कर्मो का अनुष्ठान गुण-बुद्धि से करता है। उसमें अनुचित का विचार, शास्त्रीय उपदेशों पर आधारित न हो कर स्वाभाविक होता है। उसपे अहं-भाव को पूर्णतः नष्ट कर डाला है। संसार के नीति-नियम उसे प्रभावित नहीं करते। उसके लिए कोई कर्तव्य नहीं है। वह कर्म से ऊपर उठ चुका है। कर्म उसको स्पर्श नहीं कर पाते हैं। जगत् की शिक्षा के हेतु ही यह विहित कर्मों को करता तथा अविहित कर्मों का परित्याग करता है। वह उचित-अनुचित दोनों की सीमा रेखाओं का अतिक्रमण कर चुका है।

"वह समस्त प्राणियों का सुहृद होता है। उसकी वृत्तियाँ शान्त होती हैं, ज्ञान और विज्ञान से वह अटल निश्चय वाला होता है। वह इस संसार को आत्म स्वरूप देखता है। ऐसा व्यक्ति शोक को नहीं प्राप्त होता। वह पुनः जन्म नहीं प्राप्त करता। वह आनन्दमय स्थिति से कभी विचलित नहीं होता। वह संसार-पथ में नहीं भटकता। "

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार आदेश दिया, तब भक्तशिरोमणि उद्धव जी ने उनको प्रणाम करके तत्त्वज्ञान की इच्छा से यह प्रश्न किया, "हे योगेश्वर। आप ही समस्त योगों के लक्ष्य, आधार और उनके कारण हैं। आपने मुझे मोक्ष के लिए संन्यास-रूप सांसारिक मोह-ममता का पूर्णतया त्याग बतलाया है; परन्तु विषयासक्त मनुष्यों के लिए जिनकी आपके चरणों में प्रीति नहीं, सभी इच्छाओं का त्याग सम्भव नहीं है। मेरे जैसे

संसारासक्त व्यक्ति के लिए सांसारिक इच्छाओं का परित्याग करना अथवा संसार को विनश्वर समझना कैसे एकाएक सम्भव हो सकता है?

"मैं अभी तक 'मैं' तथा 'मेरा' की भावना को विदूरित नहीं कर सका हूँ। मैं मन्द बुद्धि वाला जीव हूँ। मैं आपकी माया से इस देह तथा इस देह सम्बन्धी सभी वस्तुओं से अत्यन्त आसक्त हूँ और इन्हें 'मैं' और 'मेरा' समझता हूँ। पुत्र, परिवार तथा शरीर में मेरी प्रगाढ़ आसक्ति है। भगवन्! आप ही बतलाइए कि मैं आपके उपदेशों का किस प्रकार सुगमतापूर्वक पालन कर सकता हूँ?"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "इस संसार में वे लोग, जिन्हें जगत् के वास्तविक स्वरूप का सूक्ष्म ज्ञान है, संसार-सम्बन्धी सत्यताओं का जिन्हें ज्ञान है, वे चित्त में भरी हुई अशुभ वासनाओं तथा भौतिक पदार्थों की तृष्णाओं से अपने-आपको प्रायः अपने ही प्रयास से बचा लेते हैं।

"समस्त प्राणियों का, विशेषकर मनुष्य का आत्मा ही गुरु (उपदेशक) है; क्योंकि मनुष्य प्रत्यक्ष अनुभव तथा अनुमान के द्वारा परमानन्द को पा लेता है।

"सांख्ययोग-विशारद धीर पुरुष सभी प्राणियों में व्यापक तथा सर्वशक्तिमान् परम पुरुष के रूप में मेरा सुस्पष्ट साक्षात्कार कर लेते हैं।

'एक पाँव वाले, दो पाँव वाले, तीन पाँव वाले, चार पाँव वाले, चार से अधिक पाँव वाले और बिना पाँव वाले अनेक प्रकार के शरीरों की रचना सबमें मुझे मनुष्य शरीर ही सर्वाधिक प्रिय है; क्योंकि इस मनुष्य शरीर में मन और और इन्द्रियों को नियन्त्रित करने वाला योगाभ्यासी, ध्यान में स्थिर पुरुष मुझ परमेश्वर को पा लेता है, जो कि बुद्धि आदि उपकरणों से तथा अनुमान से भी अग्राह्य है।

इस विषय में एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। वह इतिहास अवधूत और यदु का संवाद है। राजा यह चन्द्रवंश के महाप्रतापी राजा नहुष के पौत्र तथा ययाति के ये पुत्र परम शक्तिशाली और बुद्धिमान् थे।

अवधूतोपाख्यान

धर्म में पारंगत यदु ने एक युवक ब्राह्मण संन्यासी को निर्भय विचरते हुए देखा। तथा धर्म-तत्त्व को जानने की इच्छा से उनसे निम्नांकित प्रश्न पूछे:

यदु ने कहा, "हे ऋषि। बिना किसी कार्य को करते हुए भी आपने इस विशुद्ध ज्ञान को कैसे पाया जिसके बल से आप सारे संगों से मुक्त हो कर शिशुक्त निर्भय अवस्था में सम्पूर्ण सुख में विचरण कर रहे हैं?

"साधारणतः इस जगत् के लोग धर्म, अर्थ, काम तथा आत्म-चिन्तन का अभ्यास चिरायु, यश तथा सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए ही करते हैं। आपका सुगठित शरीर है। आप ज्ञान तथा विज्ञान से पूर्ण तथा सुन्दर हैं। आपकी वाणी मधुर तथा अमृत के समान है, यद्यपि आप कोई काम नहीं करते और न कोई प्रयास ही करते हैं। आप किसी वस्तु से राग नहीं रखते। संसार के लोग काम तथा लोभ की अग्नि में झुलस रहे हैं; परन्तु आप इस अग्नि से जरा भी सन्तप्त नहीं हैं। आप आत्मतृप्त तथा सुखी हैं। जिस प्रकार गंगा-जल में बैठा हुआ हाथी दावानल से पीड़ित नहीं होता उसी प्रकार आप भी क्लेशाग्रि से पीड़ित नहीं हैं। आपके सुख और आनन्द का मूल क्या है. इसके प्रति मुझे शिक्षा दीजिए। एकान्त जीवन में विषय-पदार्थों से अलिप्त आत्मा में ही आप कैसे सुख को प्राप्त करते हैं? आपके न तो परिवार है और न विषय-सुख, आपको सुख कहाँ से मिलता है?"

श्रीकृष्ण ने कहा, "बुद्धिमान् यदु के इस प्रकार विनम्र भाव से पूछे जाने पर उन ब्राह्मण ने राजा से कहा।

"मेरे बहुत से गुरु हैं। मैंने अपनी बुद्धि से उन गुरुओं से शिक्षा पायी है। उससे ज्ञान को प्राप्त कर मैं असंग इस पृथ्वी पर विचरण करता हूँ। और सुनिए,वे कौन-कौन है।

"पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, कबूतर, अजगर, सागर, पतंग, भौंरा या मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालने वाला, हिरन, मछली, पिंगला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी और भृंगी कीट—ये ही मेरे चौबीस गुरु हैं जिनसे मैंने शिक्षा पायी है। उनके स्वाभाविक गुणों से मैंने अपने सारे पाठ पढ़े हैं। मैं अब बतलाऊँगा कि मैंने उनसे क्या-क्या सीखा है।

"ज्ञानी मनुष्य अपने धर्म मार्ग से कभी विचलित न हो। नियति के वशीभूत हो यदि जीव गण उसे कष्ट भी दें तो भी वह अविचल रहे इस तितिक्षा को मैंने पृथ्वी से सीखा है। मैंने पर्वतों से, जो पृथ्वी के ही भाग हैं, यह सीखा कि हमारे सारे फर्म परोपकार के लिए होने चाहिए तथा हमारा अस्तित्व ही परोपकारार्थ होना चाहिए। मैंने वृक्षों, जो पृथ्वी के ही भाग हैं, से सीखा कि मुझे सदा दूसरों की सेवा में ही रहना चाहिए।

"ज्ञानी अपने जीवन निर्वाह में ही सन्तुष्ट रहे। वह इन्द्रिय-सुख के लिए, लालायित न हो; क्योंकि इससे व्यर्थ पदार्थों में पड़ कर मन विक्षिप्त हो जायेगा तथा ज्ञान नष्ट हो जायेगा।

"वायु के समान ही योगी वस्तुओं से निर्लिप्त रहे। शरीर में तथा विभिन्न वस्तुओं के मध्य में रहते हुए भी वह उनसे असंग रहे। वस्तुओं के भले-बुरे परिणामों से भी उसका मन अप्रभावित रहना चाहिए। वायु सुगन्धित एवं दुर्गन्धपूर्ण पदार्थों से हो कर बहते हुए भी अलिप्त रहता है, ठीक उसी प्रकार ज्ञानी को भी रहना चाहिए। आत्मा शरीर में प्रवेश करती है तथा शरीर के गुण उसके अपने जैसे मालूम देते हैं; परन्तु ऐसा नहीं है। वायु गन्ध वहन करता है परन्तु गन्ध वायु का गुण नहीं है। यह शिक्षा मैंने शरीर से बाहर रहने वाले वायु से ग्रहण की है।

"मैंने प्राण से यह शिक्षा ली है कि मनुष्य को जीवन-रक्षा के लिए आहार करना चाहिए, न कि आहार के लिए ही जीवन-यापन करना चाहिए। वह इन्द्रियों के पोषण तथा उन्हें सबल बनाने के लिए भोजन न करे। उतना ही भोजन करे जो कि जीवन की ज्योति को बनाये रखे।

'आत्मा सर्वव्यापक है। वह शरीर के गुणों से अलिप्त है। ऐसा मैंने आकाश से सीखा जो सर्वव्यापक है तथा मेघ एवं अन्य वस्तुओं से अलिप्त है। शरीर में रहते हुए भी ज्ञानी आकाश-सदृश आत्मा के साथ एकता स्थापित कर आत्म-चिन्तन करे। जिस प्रकार एक ही सूत्र में माला के फूल ग्रथित रहते हैं, उसी प्रकार उसी आत्मा के अधिष्ठान में सारे चल एवं अचल भूत पदार्थ ग्रथित है। आत्मा देश-काल से सीमित नहीं है तथा वह किसी वस्तु से लिप्त नहीं होती।

"जल स्वभावतः शुद्ध, स्निग्ध तथा मधुर होता है। उसी प्रकार मनुष्यों में ज्ञानी भी रहता है। वह तीर्थ के जल के समान लोगों को अपने दर्शन, स्पर्श तथा भगवन्नाम के उच्चारण से शुद्ध बनाता है। यह मैंने जल से सीखा।

"तेजस्वी, ज्ञान में सबल, तपस्या से विभासित, पेट के अतिरिक्त भोजन के लिए अन्य कोई पात्र न रखते हुए तथा सब कुछ भक्षण करते हुए ज्ञानी अग्नि के समान ही अलिप्त रहता है। वह कभी-कभी दृष्टि में नहीं आता। कल्याण- कामी मनुष्यों की दृष्टि में आ जाता है। श्रद्धालु भक्ता द्वारा प्रदत्त भिक्षा को वह खाता है। तथा उनके भूत और भविष्य के मलों को भस्मीभूत कर डालता है।

"अग्नि एक ही है, यद्यपि वह विभिन्न प्रकार के ईंधनों में प्रवेश करती है। ईंधन के आकार के अनुसार अग्नि भी त्रिकोण, वृत्त, आयत तथा अन्य आकारों में जलती है। उसी प्रकार परमात्मा भी सभी भूतों में गुप्त हो कर विभिन्न शरीरों में उन उपाधियों के समान ही प्रतीत होता है। अपनी ही माया से रचित इस जगत् के ऊँचे-नीचे पदार्थों में प्रवेश कर हर पदार्थ के समान ही वह प्रतीत होता है। जन्म तथा मृत्यु शरीर के लिए हैं, आत्मा के लिए नहीं तथा ये कालानुसार होते हैं। लपटें ही परिवर्तनशील हैं, अग्नि नहीं।

"चन्द्रमा की घटती-बढ़ती चन्द्रमा के परिवर्तन के कारण नहीं होती, वरन् सूर्य के प्रकाश के परावर्तन के कारण होती है; अतः मैंने यह सीखा कि जन्म, वृद्धि, जरा, मृत्यु इत्यादि शरीर के विकार हैं, आत्मा के नहीं। आत्मा असीम, अजर तथा अमर है। चन्द्रमा ज्यों-का-त्यों रहता है, केवल ग्रह-गति के कारण ही उनमें प्रतीयमान परिवर्तन होता है।

"सूर्य रश्मियों के द्वारा जल खींचता है और कालान्तर में सारे जल को लौटा देता है। ज्ञानी भी ग्रहण करता है देने के लिए ही, अपने अधिकार की वृद्धि के लिए नहीं। जिस प्रकार एक ही सूर्य विभिन्न जल-पूर्ण पात्रों में प्रतिबिम्बित हो कर विभिन्न मालूम पड़ता है, ठीक उसी प्रकार आत्मा भी विभिन्न शरीरों में मन की उपाधियों में विभिन्न रूप से प्रतिबिम्बित हो कर विभिन्न मालूम पड़ता है।

"अधिक आसक्ति बुरी है। मनुष्य को किसी भी व्यक्ति के साथ अधिक ममता अथवा आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। किसी भी वस्तु के प्रति अत्यधिक आसक्ति मनुष्य के विनाश का कारण है, यह मैने कबूतर के जोड़े से सीखा। किसी जंगल में एक वृक्ष के ऊपर एक कबूतर ने घोसला बनाया तथा अपनी मादा के साथ कुछ वर्षो तक निवास किया। दोनों एक-दूसरे के प्रति अतिरागात थे। बड़ी ममता के साथ उन्होंने बच्चों का पोषण किया। एक दिन घोंसले में ही बच्चों को छोड़कर वे भोजन की तलाश में चल पड़े। एक शिकारी ने जाल फैला कर उन बच्चों को पकड़ लिया। कबूतर भोजन ले कर नीड़ में लौटे। माँ को बच्चों पर अत्यधिक ममता थी। वह जान-बूझ कर जाल में गिर पड़ी। नर कबूतर भी जाल में जा फंसा। शिकारी ने बच्चों के साथ कबूतरों को भी पकड़ लिया। वह बहुत ही सन्तुष्ट हो कर घर की ओर चला। उसी प्रकार अनियन्त्रित इन्द्रिय वाले दुःखी परिवार के लोग वैवाहिक जीवन में सुखोपभोग करते हुए उस कपोत और कपोती के समान ही शोक में निमम हो जाते हैं। मानव जन्म पा कर जो व्यक्ति गृहस्थ जीवन से ही आसक्त है, वह उस पक्षी के समान ही जाल में जा गिरा है।

"इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त सुख, चाहे इस लोक में या परलोक में नश्वर तथा गतिमान है। ज्ञानी जन उसके पीछे नहीं पड़ते।।

"विशाल अजगर अपने स्थान पर ही स्थिर रहता है और जो कुछ भी आहार उसे स्वतः आ प्राप्त होता है, उसी से वह तृप्त रहता है। अजगर की भाँति मनुष्य को भी प्रयत्न-रहित बन कर जो कुछ भी आहार संयोगवश आ प्राप्त हो, सुस्वाद या नीरस, अधिक या अल्प, उसी को ग्रहण करना चाहिए। यदि भोजन उसके पास न पहुँचे तो उसे दीर्घ काल तक भी शान्त पड़े रहना चाहिए और उसके लिए प्रयास भी नहीं करना चाहिए। शक्तिशाली शरीर के रहते हुए भी तथा बल एवं धैर्य से युक्त हो कर भी वह सज़ग पड़ा रहे तथा सबल इन्द्रियों के रहते हुए भी प्रयत्न न करें।

"ज्ञानी को शान्त, गम्भीर, अथाह, असीम तथा अविचल प्रशान्त सागर की भाँति रहना चाहिए। सागर कभी-कभी नदियों से अत्यधिक जल को प्राप्त करता है और कभी-कभी अत्यल्प; फिर भी वह एक समान ही बना रहता है। उसी प्रकार वह ज्ञानी भी, जिसने अपने हृदय को ईश्वर पर स्थिर किया है, न तो हर्ष से फूलता है और न शोक से खिन्न होता है। अत्यधिक उपभोग से वह फूलता नहीं है, घोर विपत्ति से भी वह खिन्न नहीं होता ।

"अनियन्त्रित इन्द्रिय वाला मनुष्य स्त्री को, ईश्वरीय माया को देख कर उसके हाव-भाव से मोहित हो कर घोर अन्धकार में ठीक उसी प्रकार जा गिरता है, जिस प्रकार पतंगे अग्नि में जा मरते हैं। वह मूर्ख जो कामिनी-कांचन, वस्त्राभूषण आदि मायिक वस्तुओं को भोग-पदार्थ मानता है, वह अपनी विवेक-बुद्धि खो कर पतंगें के समान नष्ट हो जाता है।

"ज्ञानी मनुष्य घर-घर भिक्षा के लिए जाये। हर घर से हथेली-भर प्राप्त करे उनता ही भोजन प्राप्त करे जितना उसके शरीर निर्वाह के लिए पर्याप्त हो गृहस्थ के ऊपर भार न डाले। मधुमक्खी जिस प्रकार सभी फलों से मधु एकत्र करती है, ठीक उसी प्रकार वह भी भिक्षा एकत्र करे ।

"बुद्धिमान मनुष्य सभी छोटे-बड़े शास्त्रों के सारतत्त्व को ग्रहण करें, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मधुमक्खी फूलों से मधु एकत्र करती है। ज्ञानी पुरुष शाम के लिए अथवा दूसरी सुबह के लिए भोजन संग्रह न करे। हाथ तथा पेट ही उसके पात्र हो। मधुमक्खी की भाँति एकत्र न करे। जो भोजन एकत्र करता है, वह मधुमक्खी की भाँति भोजन के साथ विनष्ट हो जाता है।

"संन्यासी अपने पैरों से भी काष्ठ-निर्मित युवा स्त्री को कभी न छुए। ऐसा करने पर यह उसी प्रकार बंध जायेगा जिस प्रकार हथिनी के अंग-संग से हाथी बंध जाता है। ज्ञानी मनुष्य स्त्री के संग को उसी तरह त्यागे मानो कि वह मूर्तिमती मृत्यु ही है. क्योंकि जैसा करने पर वह हाथियों से कमजोर हाथी की तरह अधिक बलवान् अन्य पुरुषों के द्वारा मारा जायेगा।

" कृपण मनुष्य जो धन का संचय करता है, वह न तो दान देता है और न स्वयं ही धन का उपयोग करता है। जो कुछ भी वह कठिनाई के साथ एकत्र करता है, उसे अन्य ले जाते हैं, जिस प्रकार कि मधु निकालने वाला मधुमक्खियों द्वारा संचित मधु को निकाल ले जाता है। मधु निकालने वाले की भाँति संन्यासी गण उन पदार्थों को गृहम्बों से पहले ही भोगते हैं जिन्हें कि उन्होंने सुखोपभोग की आशा में बड़ी कठिनाई से संचित कर रखा हो।

"यति विषय-सम्बन्धी गीतों का श्रवण न करें। वह मृग से शिक्षा ले। मृग व्याघ के संगीत से मोहित हो बंध जाता है । मृगी के गर्भ से उत्पन्न ऋष्यशृंग मुनि स्त्रियों के विषय संगीत को सुन कर आसानी से बन्धन में पड़ गये। वे उनके हाथ की कठपुतली बन गये थे।

"जिस प्रकार मछली काँटे में लगे हुए आहार से आकृष्ट हो कर बंध जाती है उसी प्रकार स्वाद का लोभी मूर्ख मनुष्य मृत्यु का शिकार बन जाता है। जिह्वा स्वाद के प्रति राग को जीतना सबसे अधिक कठिन है। रसनेन्द्रिय को वश में करने में अन्य सभी इन्द्रियाँ अपने-आप वश में हो जाती हैं। रसनेन्द्रिय को वश में किये बिना कोई भी जितेन्द्रिय नहीं हो सकता । विवेकी पुरुष उपवास द्वारा शीघ्र ही दूसरी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं ।

"प्राचीन काल में विदेह नगरी में एक वेश्या रहती थी। उसका नाम पिंगला था। मैंने उससे भी शिक्षा ली। राजन्! सावधान हो कर सुनो। वह एक दिन सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज कर शाम तक ग्राहकों की प्रतीक्षा में दरवाजे पर बैठी रही। उसे कुछ लोगों ने आमन्त्रित भी किया; परन्तु इस आशा में कि अन्य धनिक व्यक्ति उसे अधिक धन देगा, उसने उन्हें भेज दिया। इस तृष्णा से यह निद्रा रहित हो कर दरवाजे पर कभी भीतर तो कभी बाहर आ कर आधी रात तक प्रतीक्षा करती रही। धन की अभिलाषा से आशा ज्वर से पीड़ित हो कर उसने निराशा एवं शोक में रात्रि व्यतीत - की उसे अपने लोभ, काम एव तृष्णामय जीवन से बड़ी विरक्ति हुई।

"अत्यधिक निराश हो कर उसने एक गाना गाया राजन् विषयों के प्रति वैराग्य ही उस खड्ग की भाँति है जिससे मनुष्य अपने आशा-पाश को काट सकता है। मनुष्य को निराशा न हो, वह शरीर और इसके अन्धनों से उसी प्रकार मुक्त नहीं होना चाहता, जैसे अज्ञानी पुरुष अह तथा 'मम' का परित्याग करना नहीं चाहता।

“पिंगला ने गाया : अहा! मन के अनियन्त्रित होने से मैं कितनी भ्रमित हूँ! कितनी मूर्ख हूँ मैं! मनुष्य-जैसे क्षुद्र प्राणियों से मैं अपनी काम तृप्ति की अभिलाषा रखती हूँ ।

"अपने हृदय में विराजमान् भगवान् नारायण को छोड़ कर, जो वास्तविक प्रेमी हैं जो मुझे तुष्टि, शाश्वत सुख तथा आनन्द प्रदान कर सकते हैं, मैं क्षुद्र मनुष्य को प्रसन्न कर रही हूँ, जो मेरी कामनाओं की पूर्ति नहीं कर सकता तथा जिससे दुःख, भय, रोग, शोक तथा मोह की प्राप्ति होती है। मैं सचमुच ही बड़ी मूर्ख हूँ।

“खेद है कि मैंने इस निन्दनीय वेश्यावृत्ति से अपनी आत्मा को व्यर्थ ही पीड़ा पहुँचायी। मैंने अपने शरीर को इन लम्पट और लोभी मनुष्यों के हाथ बेच कर धन और सुख की कामना की।

"मेरे अतिरिक्त अन्य और कौन व्यक्ति इस स्थूल शरीर रूपी गृह का सेवन करेगा जिसमें हड्डियों के शहतीर, खम्भे तथा छत हैं, जो चाम, रोयें तथा नाखूनों से छाया गया है, जिसमें नौ दरवाजे हैं, जिनसे सदा मल निकलते रहते हैं।

“इस विदेह नगरी, जो ज्ञानियों से भरी हुई है, में मैं ही एक स्त्री हूँ जिसने अपने सुख, आशा तथा कामना को शरीर में स्थापित किया है। मैं ही अकेली मूर्ख और दुष्ट हूँ, जो मुक्तिदायक परमात्मा को छोड़ कर विषय-पदार्थों में सुख का कामना

"वे प्रभु ही समस्त प्राणियों के हितैषी, रक्षक, स्वामी और आत्मा है। अपने शरीर को उन्हें अर्पित कर उन्हें खरीद लूँगी और लक्ष्मी जी के समान ही सहवास का आनन्द भोगूँगी तथा उन्हीं में शाश्वत सुख प्राप्त करूंगी।

"दूसरों की सेवा से क्या लाभ? मनुष्य तथा देवताओं की कृपा काल तथा अन्य प्रतिबन्धों से सीमित है। इन्द्रिय-सुख, मनुष्य तथा देवता स्त्रियों को क्या आनन्द प्रदान कर सकते हैं? सबका आदि तथा अन्त है।

"अवश्य ही अपने पूर्व जन्मों से मैंने विष्णु भगवान् के लिए कुछ व्रतादि किये हैं; क्योंकि उन्ही की कृपा से मेरे मन में यह वैराग्य उत्पन्न हुआ है, जो सारी कामनाओं का उन्मूलक है। उन्हीं की कृपा से मैंने शाश्वत शान्ति और सुख के को प्राप्त किया है।

"यदि प्रभु प्रसन्न न होते तो इस प्रकार की निराशा तथा उससे उत्पन्न वैराय उदय नहीं होता जिससे मैं सारे रागों तथा सुखों को त्यागने में समर्थ बन सकूँ।

“अब मैं भगवान् की इस देन को विनम्र भाव से अपने शिर पर ग्रहण करती हूँ । मैं अपनी समस्त दुराशाओं और दुष्कामनाओं का परित्याग कर, उन्हीं परम प्रभु के शरण में जाती हूँ। सन्तुष्ट, ईश्वर में अटूट श्रद्धा रख कर, भाग्यवश जो कुछ भी मिल जाये उसी से जीवन-निर्वाह करते हुए मैं परमात्मा के नित्य सुख का

उपभोग करूंगी। संसार-कूप में पतित, विषयान्ध तथा काल-रूपी अजगर से ग्रस्त इस जीव की रक्षा करने में भगवान् के अतिरिक्त दूसरा कौन समर्थ है !

“जब मनुष्य इस जगत् की विनश्वरता का साक्षात्कार करता है, जब वह इस समस्त जगत् को काल-रूपी अजगर के गाल में देखता है, तब वह निश्चय है इहलौकिक तथा पारलौकिक चलायमान, भ्रान्तिमय, असार सुखों से घृणा करेगा। वह सावधान हो कर मिथ्या पदार्थों से अलग रहेगा तथा अपनी आत्मा में ही नित्य सुख का अनुभव करेगा। जिस समय मनुष्य सारे विषय-पदार्थों के प्रति उपेक्षा करता है। उस समय वह स्वयं ही अपनी रक्षा कर लेता है।"

ब्राह्मण ने कहा, "इस प्रकार निश्चय करके प्रेमियों के लिए अपनी सारी आशाओं एवं तृष्णाओं का परित्याग कर तथा अपने मन को ईश्वर में लगा कर शान्त मन से वह अपनी सेज पर जा कर लेटी रही। उसने मन को अशान्त बनाने वाली सारी अपवित्र कामनाओं का परित्याग किया और शान्त मन से वह गहरी नींद में सो गयी। आशा ही सबसे बड़ा दुःख है और निराशा ही सबसे बड़ा सुख है। आशा के परित्याग से मनुष्य परमानन्द को प्राप्त करता है। यह परम सुख की अवस्था है। वैराग्य सुख का मूल है जैसा कि पिंगला के उदाहरण से स्पष्ट होता है जिसने प्रेमियों के प्रति तृष्णा का परित्याग कर सुखपूर्वक निद्रा ली।

"मनुष्य जिसको सबसे अधिक प्रिय मानता है, उसको प्राप्त करना ही सारे क्लेशों तथा दुःखों का मूल है। सत्य को जानने वाला सारे पदार्थों का परित्याग कर असीम सुख की प्राप्त करता है।

"एक कुरर पक्षी अपनी चोंच में मांस का एक टुकड़ा लिये हुए था। दूसरे बलवान् पक्षियों ने, जिनके पास मास का कोई टुकड़ा न था, उसे जा दबोचा; परन्तु कुरर ये उस मांस के टुकड़े को गिरा दिया और वह स्वतन्त्र तथा सुखी बन गया। प्रिय वस्तुओं का परित्याग भला है। इससे शान्ति मिलती है।

"मैं मानापमान की चिन्ता नहीं करता। मैं गृह, स्त्री अथवा सन्तान की चिन्ता नहीं करता। मैं आत्मा में क्रीड़ा करता हूँ, आत्मा में ही रमण करता हूँ तथा शिशुवत् विचरण करता हूँ। यह शिक्षा मैंने बालक से ली है।

"दो प्रकार के व्यक्ति ही दुःखों से विमुक्त तथा सर्वोच्च सुख में निमग्न है-शिशु जो कुछ भी नहीं जानता तथा वह मनुष्य जिसने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है, जो गुणों के प्रभाव से परे चला गया है।

"किसी स्थान में एक कुमारी कन्या रहती थी। उसके साथ विवाह के सम्बन्ध के लिए आये हुए लोगों का उसे ही आतिथ्य सत्कार करना पड़ा; क्योंकि उसके - परिवार के लोग कहीं अन्यत्र गये हुए थे वह एकान्त स्थान में धान कूट रही थी। ऐस करते समय उसकी चूड़ियों से बड़ी आवाज होती थी। बुद्धमती लड़की अपनी निर्धनता पर लज्जित हुई। उसने विचार किया कि आये हुए अतिथियों को उसकी निर्धनता का पता नहीं चलना चाहिए। उसने एक-एक कर चूड़ियाँ तोड़ डालीं। केवल दो-दो चूड़ियाँ प्रत्येक हाथ में बच रही थीं। परन्तु धान कूटते समय इन दो

चूड़ियों से भी आवाज होती थी। उसने उनमें से भी एक-एक को तोड़ डाला। अब बची हुई एक चूड़ी से आवाज न हुई, यद्यपि वह अपना काम करती रही ।

"सत्य तथा अनुभवों की खोज में विचरण करते हुए मैंने उस लड़की के अनुभव से इस उपदेश को ग्रहण किया । जहाँ बहुत लोग रहते हैं, वहाँ झगड़ा होगा। दो मनुष्यों के बीच भी वाद-विवाद अथवा बातचीत का मौका मिलेगा। अतः कुमारी चूड़ी के समान मनुष्य को एकाकी रहना चाहिए।

"श्वास को वशीभूत कर, आसन में स्थिरता ला कर मनुष्य बाण के समान अपने मन को परमात्मा में एकाग्र करें। वैराग्य, सतत ध्यान तथा क्रमबद्ध साधना के द्वारा वह सावधानीपूर्वक अपने मन को स्थिर करे। जिस प्रकार ईंधन समाप्त हो जाने पर अग्नि स्वयमेव बुझ जाती है, उसी प्रकार मन की बहिर्मुखी वृत्तियों को रोके रखने पर गुण-जन्य नानात्व का निराकरण हो जाता है, मन धीरे-धीर बन्धनों का परित्याग करता है, कर्म की प्रवृत्ति का सन्यास करता है, रजोगुण और तमोगुण का परित्याग करता है तथा गुण-रूपी ईंधन के हट जाने के कारण और इन्द्रिय-संस्कारों के अभाव के कारण मन विलीन हो कर प्रशान्त हो जाता है। मन के आत्मा में विलीन होने पर मनुष्य अन्तर्बाह्य किसी पदार्थ का भान नहीं करता । जिस प्रकार एक बाण बनाने वाले ने बाण निर्माण करने में अपने मन को इतना लीन कर रखा था कि वह अपने सामने से गुजरते हुए राजा को भी न देख सका। मैंने उससे मन एकाग्रता की शिक्षा ग्रहण की।

"ज्ञानी मनुष्य को अकेले ही विचरण करना चाहिए। वह गृह-रहित रहे तथा प्रमाद न करें। वह गुहा का आश्रय ग्रहण करे तथा अपनी योग्यता का परिचय न दे । वह मित्र - रहित रहे । यथासम्भव कम बोले ।

“शरीर नश्वर तथा गतिशील है; फिर भी साधु के लिए गृह-निर्माण करना व्यर्थ है तथा दुःख की जड़ है। जिस प्रकार सर्प दूसरों के बनाये बिल में प्रवेश करता है और बड़े आराम से समय काटता है, उसी प्रकार संन्यासी भी जो भी वास स्थान मिल जाये, उसी में आराम से रहे। उसके लिए एक ही निश्चित स्थान की आवश्यकता है।

"जिस प्रकार मकड़ी अपने भीतर से ही सूत्र निकालती है और उससे जाला फैलाती है, उसी में खेलती है और पुनः उसे पेट के भीतर डाल लेती है, उसी प्रकार परमेश्वर भी अपने भीतर से ही त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा जगत् को उत्पन्न करते. उसमें लीला करते तथा उसे स्वयं में विलीन कर लेते हैं।

"प्रेम, घृणा अथवा भय से जिस वस्तु पर प्राणी सदा ध्यान बनाये रखता है, वह भ्रमर-कीट न्याय से कालान्तर में उसी वस्तु के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

"इस प्रकार उपर्युक्त चौबीस गुरुओं से मैंने ये शिक्षाएँ ग्रहण की हैं। हे राजन्! सुनिए। मैंने शरीर से भी शिक्षा ली है। यह शरीर भी मेरा गुरु है। यह मुझे विवेक तथा वैराग्य की शिक्षा देता है। यह सदा परिवर्तित होता रहता है तथा गतिशील है। मरना और जीना तो इसके साथ ही लगा रहता है। दुःखों की परम्परा का यह शिकार है। यह अहंकार का घर है। इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राणियों को कितना कष्ट झेलना पड़ता है, यह

चिन्ता और शोक का कारण है। यद्यपि इस शरीर से तत्त्व- विचार करने में सहायता मिलती है, तथापि इसे मैं अपना कभी भी नहीं समझता और इसीलिए इसमें मेरा राग नहीं है। मैं सर्वदा यही निश्चय रखता हूँ कि मृत्यु के अनन्तर तो इसे गीदड़ और कुत्ते ही खा जायेंगे।

"शरीर के आराम के लिए मनुष्य स्त्री-पुत्र, हाथी-घोडे, नौकर-चाकर, घर-द्वार और भाई-बन्धुओं के पालन-पोषण में लगा रहता है तथा बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सह कर धन संचय करता है। अन्ततः वृक्ष के सदृश यह शरीर भी नष्ट हो जाता है और दूसरे शरीर के लिए बीज भी रख छोड़ता है।

"जिह्वा उसे एक ओर खींचती है तो पैर उसे दूसरी ओर जननेन्द्रिय उसे एक ओर ले जाना चाहती है तो त्वचा, कान और पेट दूसरी ओर; नाक कहीं सुन्दर गन्ध सूँघने के लिए जाना चाहती है तो चंचल नेत्र कहीं दूसरी ओर ज्ञानेन्द्रिय किसी दूसरी ओर ले जाती है तो कर्मेन्द्रियाँ उसे दूसरी दिशा में ले जाती है। ये इन्द्रियाँ उसके प्राण-तत्त्व को उसी प्रकार खींच लेती हैं जिस प्रकार बहुत-सी सौतें अपने एक पति को।

"ईश्वर ने वृक्ष, रेंगने वाले जन्तु, पशु, पक्षी, डांस और मछली आदि अनेक प्रकार की योनियाँ रचीं; परन्तु उन्हें सन्तोष न हुआ। तब उन्होंने मनुष्य की सृष्टि की। यह मनुष्य शरीर ऐसी बुद्धि से युक्त है, जो ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

"यह मनुष्य शरीर यद्यपि क्षणभंगुर है, किन्तु इससे परम पुरुषार्थ — मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है; अतः अनेक जन्मों के पश्चात् यह अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर पाकर बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह शीघ्र से शीघ्र मृत्यु से पूर्व ही मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न कर ले। विषय-भोगों के संंग्रह में यह अमूल्य जीवन नहीं खोना चाहिए; क्योंकि ये तो सभी योनियों में प्राप्त हो सकते हैं ।

"इस भाँति अपने शरीर से सांसारिक भोगों के प्रति वैराग्य तथा अपने भागवतीय स्वरूप के ज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर मैं अहंकार और राग-रहित हो कर ज्ञान के प्रकाश के साथ सारे संसार में विचरण करता रहता हूँ।

“अकेले गुरु से ही यथेष्ट और सुदृढ़ बोध नहीं होता; क्योंकि ऋषियों ने एक ही अद्वितीय ब्रह्म को अनेक प्रकार से गायन किया है।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "इतना उपदेश दे कर अवधूत जी ने विदा माँगी। यदु ने उनकी समुचित पूजा की और वे वहाँ से चले गये। राजा यदु ने अवधूत की शिक्षाएँ हृदय से ग्रहण की। उन्होंने समस्त आशक्तियों से छुटकारा पा कर मन का समत्व और शान्ति प्राप्त की।"

संसार

(जीव संसार में क्योंकर आ फँसता है, इसी की व्याख्या भगवान् श्री उद्धव से की है। यहाँ जैमिनि के सिद्धान्त का खण्डन किया गया है।)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं: "मनुष्य को चाहिए कि मेरी शरण में उपदेशानुसार अपने धर्म का सम्यक् परिपालन करे तथा निष्काम भाव से आश्रम और कुल के अनुसार आचरण करे।

"स्वधर्म परिपालन से शुद्ध हुए अपने चित्त में सत्य पर ध्यान करते सावधानीपूर्वक इसका विचार करे कि जो लोग सांसारिक विषयों को सत्य समझ कर उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं तथा उनमें आसक्त बनते हैं, वे अपने उस प्रयत्न में कैसे निष्फल होते हैं।

“जिस तरह स्वप्नशील व्यक्ति के तथा मनोराज्य में विचरण करने वाले व्यक्ति के दृश्य पदार्थ मिथ्या ही हैं, उसी तरह काम्य पदार्थ तथा बाह्य पदार्थों में अथवा इन्द्रियजन्य भेद-बुद्धि भी असत्य ही है।

"कर्म चार प्रकार के होते हैं : (१) काम्य कर्म—जो कर्म स्वार्थपूर्ण कामनाओं की पूर्ति के लिए किये जाते हैं; (२) निषिद्ध कर्म-जिन कर्मों को शास्त्रों ने बताया है; (३) नित्यकर्म-ये कर्म वे हैं जो नित्यप्रति करने चाहिए जैसे संध्या इत्यादि; तथा (४) नैमित्तिक कर्म-जिन कर्मों का विशेष अवसरों पर ही अनुष्ठान किया जाता है जैसे श्राद्ध आदि। इनमें से प्रथम दो प्रवृत्ति या सकाम कर्म है। स्मृतियों की घोषणा है कि मुमुक्षुओं को प्रवृत्ति कर्म नहीं करने चाहिए। उन्हें नित्य तथा नैमित्तिक कर्म ही करने चाहिए; क्योंकि इनके न करने से बाधाएँ उपस्थित सकती हैं।

"मनुष्य को चाहिए कि मुझ (ईश्वर) में पूर्ण श्रद्धा रख कर निवृत्ति कर्म (नित्य तथा नैमित्तिक कर्म) करे तथा जन्म-मृत्यु-दायक प्रवृत्ति कर्मों से दूर रहे। सत् वस्तु की खोज प्रारम्भ कर देने पर तो उसे कर्म-सम्बन्धी विधि-विधानों की ओर विशेष ध्यान नहीं देना चाहिए। ज्ञानयोगी को तो निवृत्ति-मार्ग की भी अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

"मुझमें स्थित हो कर तथा मेरा परायण हो कर वह सदा धर्मों का पूर्णतः तथा नियमों का आंशिक रूप से अभ्यास करे। वह उस गुरु की सेवा करे जिसका मन शान्त है, जो वेदों में पारंगत है, जो मेरा भक्त है, जो मुझसे पूर्ण हैं, जो मुझमें एक हो गया है तथा जिसने अपनी आत्मा के रूप में मेरा साक्षात्कार कर लिया है।

"शिष्य को अभिमान, द्वेष, ईर्ष्या तथा ममता से रहित होना चाहिए। उसे गुरु में दृढ अनुराग होना चाहिए। अधैर्य का वह त्याग करे तथा परमार्थ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सदा तत्पर रहे। वह किसी में दोष न निकाले और न व्यर्थ की बात ही करे। आत्मा सर्वत्र एक ही समान है तथा सबसे हो कर आत्मा ही विभाषित होती

है; अतः वह सबको समान दृष्टि से देखे और अपनी स्त्री, सन्तान, घर, भूमि, सम्पत्ति, स्वजन आदि के प्रति उदासीन रहे ।

"जिस तरह काष्ठ को जलाने तथा उसे प्रकाशित करने वाली अग्नि उस काष्ठ से पृथक् है ठीक उसी प्रकार यह आत्मा भी, जो स्वयंप्रकाश तथा साक्षी है, इन स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों से सर्वथा पृथक् है। जिस तरह अग्नि काष्ठ में प्रवेश कर काष्ठ के उत्पत्ति, विनाश, बड़ाई, छोटाई, अनेकता आदि गुणों को धारण कर लेती है, उसी तरह आत्मा भी शरीर से सर्वथा भिन्न होते हुए भी शरीर के गुणों को धारण कर लेती है।

“ईश्वर की त्रिगुणात्मिका माया से निर्मित यह शरीर ही संसार-प्राप्ति का कारण है। यही मनुष्य के आवागमन का कारण है। आत्मज्ञान जन्म-मृत्यु के इस प्रवाह को नष्ट कर डालता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आत्मा में ही परमात्मा का साक्षात्कार करे। इस दृश्य जगत् तथा स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर में सत्यत्व की भ्रान्त धारणा का शनैः-शनैः परित्याग करे। उसे यह भी पूर्णतः अनुभव करना चाहिए कि आत्मा शरीर से भिन्न तथा उससे अतीत है।

“विद्या-रूप अग्नि को उत्पन्न करने के लिए गुरु को नीचे की अरणि तथा शिष्य को ऊपर अरणि समझना चाहिए। उपदेश मध्य का मन्थन-काष्ठ है। इन दोनों के को योग से सुखदायक ज्ञानाग्नि की उत्पत्ति होती है। इस भाँति गुरु के द्वारा जो अत्यन विशुद्ध ज्ञान शिष्य प्राप्त करता है, वह गुणों से बनी हुई विषयों की माया को भस्म कर देता है। तत्पश्चात् वे गुण भी भस्म हो जाते हैं, जिनसे कि यह संसार बना हुआ है और अन्ततः वह ज्ञानामि भी वैसे ही शान्त हो जाती है जैसे कि समिधा के अभाव में अग्नि बुझ जाती है।"

(अब मीमांसकों के मत की चर्चा की जा रही है। उनका यहाँ खण्डन भी किया गया है। इस मत के अनुसार जीव नित्य तथा अनेक है। इसके मतावलम्बी ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखते। स्वर्गप्राप्ति ही उनका लक्ष्य है। कर्म उनका सर्वस्व है। कर्म से ही फल की प्राप्ति होती है; कर्म-फल-प्रदाता ईश्वर की आवश्यकता नहीं है।)

"यदि तुम ऐसा सोचते हो कि कर्मों के कर्ता तथा सुख-दुःखों के भोक्ता जीव अनेक हैं अथवा स्वर्ग, काल, वेद और आत्माओं को नित्य जानते हो अथवा ऐसा समझते हो कि सभी वस्तुओं का अस्तित्व सत्य एवं शाश्वत है तथा विषय पदार्थे के बाह्य आकार के अनुसार ज्ञान उत्पन्न होता तथा बदलता रहता है। यदि ऐसा मान भी लिया जाये, तो भी सारे प्राणियों को शरीर और कालावयवों के सम्बन्ध से होने जीवों की जन्ममरणादि अवस्थाओं में बारम्बार आना ही पड़ेगा; क्योंकि तुम देहादि पदार्थ और काल को नित्य मानते हो?

“इसके अतिरिक्त इस दशा में कर्म का कर्ता तथा सुख-दुःख के भोक्ता को कुछ भी स्वतन्त्रता नहीं है। फिर जो परतन्त्र है, उसे भला क्या सुख-सौभाग्य के प्राप्ति हो सकती है? ऐसा भला कौन व्यक्ति होगा जो परमार्थ की आशा में उपासना करे जो स्वयं ही परतन्त्र है ?

“जो लोग यह समझते हैं कि वे अपने वैदिक कर्मों में कुशलता के कारण सुखी हैं, यह उनका अज्ञान ही है; क्योंकि कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि विद्वान् को सुख नहीं प्राप्त होता, जब कि कोई-कोई मूढ़ कभी भी दुःखी नहीं देखे जाते । यदि यह मान लें कि लोगों को सुख की प्राप्ति तथा दुःख के नाश के उपाय का पता है, किन्तु उन्हें भी ऐसे उपाय का पता नहीं है जिससे मृत्यु के ऊपर विजय पायी जाये। जब मृत्यु शिर पर हो तो ऐसा कौन-सा भोज्य-पदार्थ है जो मनुष्य को सुखी बना सकें ? जिस मनुष्य को फाँसी पर लटकाने के लिए ले जा रहे हों, उसे कोई भी वस्तु प्रिय नहीं मालूम होती ।

"वेदों में वर्णित स्वर्ग-सुख भी क्षणभंगुर ही है। वहाँ भी विशुद्ध सुख नहीं है। स्वर्ग में भी ईर्ष्या, प्रतिद्वन्द्विता, विनाश, क्षय, दोष-दर्शन, विषमता और इसके परिणाम स्वरूप अशान्ति पायी जाती है। भोग भी नाशवान् हैं। कृषि की भॉंति स्वर्गिक भोग की कामना की पूर्ति में बहुत-सी बाधाएँ हैं। यह उसकी भाँति ही निष्फल है। अतः स्वर्ग भी श्रेय नहीं है।

"मनुष्य यज्ञों के द्वारा देवों की उपासना करके स्वर्ग जाते हैं और वहाँ अपने पुण्यकमों से उपार्जित दिव्य भोगों को देवताओं के समान ही उपभोग करते हैं। वहाँ वे सुन्दर वस्त्रों को धारण करते तथा अपने सुकर्मों से प्राप्त विमान में सवार हो कर स्वर्गिक अप्सराओं के साथ विहार करते हैं। गन्धर्व गण उनका यश-गान करते हैं। उनका विमान छोटी-छोटी घण्टियों से अलंकृत होता है और उनके इच्छानुसार ही चलता है। वे अप्सराओं के साथ देव-उद्यानों में विहार करते हुए अपना समय यों ही गंवा देते हैं। उन्हें अपने पतन का ध्यान ही नहीं रहता। पुण्य-कर्म शेष रहने तक वे स्वर्ग में सुख भोगते हैं; किन्तु पुण्य क्षीण होते ही, उनकी इच्छा न रहते हुए भी काल की गति के कारण उन्हें भी नीचे गिरना ही पड़ता है।

“यदि मनुष्य कुसंग के कारण अधर्मपरायण होता है, यदि उसकी इन्द्रियाँ अनियन्त्रित हैं, यदि वह अज्ञानी, अविवेकी तथा लोभी है, यदि वह विषयी है, यदि वह प्राणियों को सताता है, यदि वह विधि-विरुद्ध पशुओं की बलि दे कर भूत-पिशाचों की उपासना करता है तो वह अवश्य ही विभिन्न नरकों में जाता है और वहाँ घोर अन्धकार में पड़ता है। वह भयंकर तामसिक योनियों में प्रवेश करता है।

"अतः सकाम कर्मों का परिणाम दुःखमय ही होता है। शरीर से कर्म करने पर मनुष्य को नये-नये शरीर प्राप्त होते रहते हैं। इस क्षणभंगुर शरीर को मृत्यु- धर्मा जान कर कर्मों में प्रवृत्त होने पर क्या सुख मिलेगा ?

“सारे लोक तथा लोकपालों की आयु एक कल्प है। वे मुझसे सदा भयभीत रहते हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मा भी मुझसे भय खाते हैं; क्योंकि उनकी आयु भी केवल दो परार्ध है; अतएव दुःख, शोक तथा क्लेश-संकुलित प्रवृत्ति-मार्ग का परित्याग कर नित्य-सुख तथा अमृतत्व-प्रदायक निवृत्ति-मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

"गुण इन्द्रियों को कर्म में प्रेरित करते हैं और इन्द्रियाँ कर्म करती हैं। गुणों तथा इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने के कारण ही उनके कर्मों के फल (सुख-दुःख) का उपभोग करता है।

"जब तक गुणों में विषमता है तब तक आत्मा की अनेकता का बोध होता है, जब तक आत्मा की अनेकता है तब तक वह परतन्त्र है, जब तक परतन्त्रता है, तब तक उसे ईश्वर से भय बना रहता है; अतः जो कर्मों का सेवन करते हैं, वे शोक और मोह से पीड़ित रहते हैं।

"जब गुणों में क्षोभ होता है, तब मुझको ही आत्मा, वेद, लोक, स्वभाव, धर्म आदि अनेक नामों से पुकारते हैं।'

उद्भव जी ने पूछा: "भगवन्! ब्रह्म शरीर में ही रह रहा है, फिर भी वह शरीर के गुणों से नहीं बंधता है, ऐसा क्यों? जब तक जीव गुणों के विकार रूप इस शरीर में निवास करता है, तब तक वह उन गुणों के बन्धन से कैसे बच सकता है? यदि आत्मा आकाश के समान मुक्त है तो वह बन्धन में क्योंकर आता है ?

"मुक्त तथा बद्ध पुरुष के क्या लक्षण है? वे कैसे व्यवहार करते तथा विहार करकरते हैं? कैसे खाते-पीते, सोते, बैठते तथा चलते हैं? उपर्युक्त बातों पर प्रकाश डालिए। आप सर्वज्ञ हैं। इस प्रश्न का मर्म जानने वालों में आप श्रेष्ठ है। क्या एक ही आत्मा नित्य-बद्ध और नित्य-मुक्त है? "

बन्धन तथा मुक्ति

भगवान् ने कहा : गुणों की उपाधि से ही आत्मा को बद्ध या मुक्त कहा जाता है; परन्तु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। सभी गुण मायामूलक हैं—वे माया की सृष्टि है, अतः न तो बन्धन है और न मोक्ष ही।

“शोक-मोह, सुख-दुःख तथा शरीर की उत्पत्ति माया के कारण ही है। जिस प्रकार स्वप्न मन की भ्रान्त कल्पना है, उसी प्रकार यह संसार-चक्र भी असत्य ही है।

“हे परम ज्ञानी उद्धव ! जीव तो मेरा अंश है। वह अनादि अज्ञान के कारण बद्ध होता है और आत्मज्ञान से मुक्त होता है। अज्ञानवश वह अपने को मुझ (ईश्वर) से भिन्न मान बैठता है, यही बन्धन का कारण है। जब उसे यह ज्ञान होता है कि वह और 'मैं' एक ही हैं, वह मुक्त हो जाता है।

“अब मैं बद्ध और मुक्त जीव का भेद बतलाता हूँ जो एक ही धर्म में रहते हुए भी विरुद्ध धर्म वाले जान पड़ते हैं।

"जीव और ईश्वर नाम के दो पक्षियों ने एक ही वृक्ष (शरीर) में नीड़ बना रखे हैं। वे दोनों चेतन होने के कारण समान हैं और सखा भी हैं। उनमें से एक (जीव) शरीर रूपी वृक्ष के फल का आस्वादन करता है तथा दूसरा (ईश्वर) अभोक्ता होते हुए भी जीव से शक्ति और सामर्थ्य में बढ़ कर है।

"जो फलों का भक्षण नहीं करता, वह (ईश्वर) ज्ञानी है। वह अपने वास्तविक स्वरूप को तथा दूसरे को भी जानता है; परन्तु भोक्ता जीव नहीं जानता है। जीव अविद्या से युक्त होने के कारण सदा बद्ध है और ईश्वर विद्यायुक्त अथवा ज्ञानसम्पन्न होने के कारण नित्य-मुक्त है।

"स्वप्न से जगे हुए पुरुष के समान ही ज्ञानी पुरुष शरीर में रहते हुए भी शरीर से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता; परन्तु अज्ञानी मनुष्य शरीर से सम्बद्ध न होते हुए भी अज्ञान के कारण, स्वप्न देखने वाले व्यक्ति की भाँति शरीर से बद्ध रहता है। स्वप्नद्रष्टा पुरुष की भाँति अज्ञानी पुरुष शरीर से ही सम्बन्ध स्थापित किये रहता है।

"इन्द्रियाँ ही विषयों को ग्रहण करती हैं। ज्ञानी जन इनमें अभिमान नहीं करते; अतः वे इनसे प्रभावित नहीं होते हैं। यह शरीर प्रारब्ध के अधीन है। इसमें इन्द्रियाँ कार्य करती है; किन्तु अज्ञानी यह सोचता है कि वह कर्ता है और इसी कारण वह बंध जाता है।

"विवेकी पुरुष सोते, बैठते, घूमते फिरते, नहाते, देखते, छूते, सूँघते, खाते आदि क्रियाओं में अज्ञानी की भाँति अपने को इनका कर्ता नहीं मानता है। वह विषयों से विरक्त रहता है। गुण ही सभी कर्मों के कर्ता-भोक्ता हैं, ऐसा समझ कर ज्ञानी पुरुष उनमें आसक्त नहीं होता । वह इन्द्रियों की सभी क्रियाओं तथा अनुभवों का मूक साक्षी बना रहता है। प्रकृति में रहते हुए भी वह आकाश, सूर्य तथा वायु की तरह असंग रहता है। वह शरीर में निवास करता है; परन्तु शरीर में आसक्त नहीं होता है। सूर्य जल में प्रतिबिम्बित होता है; किन्तु वह अस्पृष्ट रहता है। वायु सर्वत्र प्रवाहित होती है; किन्तु वह किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं होती। इसी भाँति आकाश भी सर्वव्यापक है; किन्तु वह किसी से आसक्त नहीं होता।

"वैराग्य-बल से ज्ञानी की दृष्टि तीक्ष्ण हो जाती है। सारी शंकाएँ दूर हो जाती हैं। ज्ञानी व्यक्ति निद्रा से जगने की भाँति ही उठ जाता है तथा शरीर एवं विषयों में भेद-दृष्टि से अपने को अलग कर लेता है। जीव-ब्रह्म की एकता सम्बन्धी उसकी सारी शंकाएँ ज्ञान चक्षु के द्वारा नष्ट हो जाती हैं। उसकी समस्त कामनाएँ वैराग्य -खड्ग से छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। वह सर्वत्र ब्रह्म के ही दर्शन करता है तथा इस विविधतापूर्ण जगत्, दृश्य जगत् से पुनः भ्रमित नहीं होता है। जिस प्रकार स्वप्न से जगा हुआ व्यक्ति स्वप्न के अनुभवों से भ्रमित नहीं होता, उसी तरह ज्ञानी भी भेद-बुद्धि-भ्रम से मुक्त हो जाता है।

"जिनके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि की समस्त चेष्टाएँ बिना संकल्प के होती हैं, वे देह में स्थित रह कर भी उसके गुणों से मुक्त हैं। शरीर में रहते हुए भी वे कर्म-बन्धन से मुक्त हैं।

"ज्ञानी पुरुष किसी द्वारा उत्पीड़न से न तो दुःखी होते हैं और न पूजा करने से सुखी, न तो अच्छे काम करने वालों की प्रशंसा करते हैं और न बुरे काम बालों की निन्दा ही। वे पाप तथा पुण्य से सर्वथा मुक्त हैं। वे सबके प्रति समदृष्टि रखते हैं। वे न तो कोई भला या बुरा काम करते हैं, न कुछ भला या बुरा कहा करते हैं और न सोचते

ही हैं। वे आत्म-सुख का अनुभव करते हैं। आत्मानन्द में ही मग्न रहते हैं तथा बाह्य जगत् से उदासीन हो कर जड़ के समान विचरण करते हैं।

"जो पुरुष वेदों में तो पारंगत हो; परन्तु ब्रह्म में संस्थित न हो, जिसे आत्म- साक्षात्कार प्राप्त न हुआ हो, उसका सारा श्रम यो ही निष्फल है जैसे कि बिन दूध की गाय पालने वाले का।

"दूध न देने वाली गाय, व्यभिचारिणी स्त्री, पराधीन शरीर, कुपुत्र, सत्पात्र के रहने पर भी दान न दिया हुआ धन तथा मेरी स्तुति से रहित वाणी-इनकाजो संरक्षण करता है, वह दुःख पर दुःख ही प्राप्त करता रहता है।

"जिस वाणी से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय-रूपी मेरी लोकपावन लीला का वर्णन न हो अथवा मेरे लोकप्रिय लीलावतारों का गायन न हो, वैसी बन्ध्या वाणी में बुद्धिमान् पुरुष को प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

"मनुष्य को चाहिए कि वह इस प्रकार के विवेक द्वारा आत्मा में अनेकता के भ्रम को दूर कर दे और सभी प्रकार के सांसारिक व्यवहारों से उपरत हो कर अपना निर्मल मन मुझ सर्वव्यापी परमात्मा में लगा दे। यदि तुम अपना मन परब्रह्म में स्थिर न कर सको तो सारे कर्म निरपेक्ष-भाव से मेरे लिए ही करो। "

(अब भगवान् श्रीकृष्ण भक्ति का उपदेश प्रारम्भ कर रहे हैं।)

“हे उद्धव! मेरी कल्याणकारी लोक-पावन कथाएँ सुनने से, निरन्तर कीर्तन से मेरे दिव्य कर्मों तथा लीलाओं के स्मरण से, मेरे लिए ही सभी कर्मों को करने से, मुझे ही अपना परम आश्रय मान लेने से तथा मेरे लिए धर्म, अर्थ और काम-स्वरूप त्रिवर्ग की प्राप्ति में प्रवृत होने से श्रद्धालु व्यक्ति मेरी अनन्य भक्ति प्राप्त कर लेता है।

"सत्संग द्वारा भक्ति का अर्जन कर वह मेरा प्रेमी उपासक बन जाता है और सन्तों द्वारा उपदिष्ट मेरे परम पद को अवश्य प्राप्त कर लेता है।"

साधु तथा भक्ति

उद्धव जी ने पूछा: "भगवन्! कृपया बतलाइए कि आपके विचार से साधु क कौन है? आप कैसे साधु को सर्वाधिक पसन्द करते हैं? आपके प्रति कैसी भक्ति सार्थक होगी? नारदादि महर्षियों द्वारा प्रतिपादित कौन-सी भक्ति आपको अधिक स्वीकार्य है?

"हे भूताधिपति! हे जगदीश्वर! मैं आपके चरणों में पड़ा हूँ। मैं आपका भक्त तथा शरणागत हूँ। कृपया आप मुझे इनका उपदेश दीजिए। हे प्रभो! आप चिदाकाश-स्वरूप परब्रह्म है। आप प्रकृति से परे पुरुषोत्तम है। आपने इच्छा से ही इस भूलोक में अवतार धारण किया है।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : “करुणा की मूर्ति, किसी भी प्राणी से बैर न रखने वाला, सहनशील, तितिक्षु, सत्यनिष्ठ, निष्पाप मन बाला, समदर्शी, सबका हितैषी, कामनाओं से अकलुषित बुद्धिमान्, संयमी, विनीत, शुद्ध, भद्र, पवित्र, अपरिग्रही, अकिंचन, अचंचल, खान-पान में परिमित, स्थिर बुद्धि वाला, दृढ़, मेरा शरणागत, प्रमाद-रहित, आत्म-तत्त्व के चिन्तन में संलग्न, जागरूक, गम्भीर, धैर्यवान्, षड उर्मियों (भूख-प्यास, शोक-मोह, जरा-मृत्यु) को वश में रखने वाला, अपने सम्मान की अपेक्षा न रख दूसरों को सम्मान देने वाला, निपुण, मित्र, कारुणिक, ज्ञानी-साधु ऐसा होता है।

“जो स्वधर्म के परिपालन के विषय में मेरे बतलाये हुए विधि-निषेध को जान कर मेरे लिए उन सबका परित्याग कर देता है और मेरे भजन में लगा रहता है, वह परम सन्त है।

"मैं कौन हूँ, मैं क्या हूँ, मैं कैसा हूँ—इन बातों को जाने, चाहे न जाने; किन्तु जो अनन्य भाव से मेरा भजन करता है, वह मेरे विचार में मेरा परम भक्त है।

"मेरी मूर्ति तथा मेरे भक्तों का दर्शन, स्पर्श, पूजन, सेवा-शुश्रूषा, स्तुति और प्रणाम करे; मेरे गुणों तथा कर्मों का भावपूर्वक कीर्तन करे; मेरी कथा सुनने में श्रद्धा रखे; निरन्तर मेरा ध्यान करते रहे; दास्यभाव से आत्मनिवेदन करे; मेरे दिव्य जन्म और कर्मों की चर्चा करे; विशेष पर्वों को मनाये; मेरे मन्दिरों में संगीत, नृत्य और बाजों आदि के साथ उत्सव करे; वार्षिक त्यौहारों के दिन जुलूस निकाले और उपहारों से पूजा करे; वैदिक विधि से दीक्षा ग्रहण करे; मेरे व्रतों का पालन करे; मन्दिरों में मेरी मूर्तियों की स्थापना में उत्साह रखे ; मेरे लिए उद्यान, क्रीड़ा के स्थान, नगर और मन्दिर स्वयं अथवा दूसरों के साथ मिल कर बनवाने का उद्योग करे। सेवक की भाँति मेरे मन्दिरों में झाड़े-बुहारे, लीपे-पोते तथा सजाये, अभिमान तथा दम्भ से रहित हो, अपने शुभ कर्मों का ढिंढोरा न पीटे, मौन रहे; मुझे समर्पित दीपक को भी अपने काम में न लाये। मेरी कृपा तथा नित्य-सुख की प्राप्ति के ये निश्चित साधन है। ये भक्ति के लक्षण हैं। इनसे व्यक्ति के हृदय में भक्ति-भावना का संचार होता है।

"लोगों को जो वस्तु सबसे अधिक अभीष्ट हो तथा जो अपने को भी अधिक प्रिय हो, उसे वह मुझे समर्पित कर दे। इस प्रकार के समर्पण से उसे कल्याण की प्राप्ति होगी।

प्यारे उद्धव ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी हृदय और समस्त प्राणी इन सबमें मेरी उपासना करनी चाहिए। मेरी पूजा के लिए ये ही ग्यारह स्थान हैं।

"वैदिक मन्त्रों के द्वारा सूर्य में, घी की आहति के द्वारा अग्नि में, आतिथ्य द्वारा ब्राह्मण में, घास के द्वारा गौ में, सत्कार के द्वारा वैष्णव में, निरत ध्यान के द्वारा हृदयाकाश में, प्राण को मुख्य समझने से वायु में; जल, पत्र, पुष्पादि विभिन्न सामग्रियों द्वारा जल में, पवित्र मन्त्रों द्वारा पृथ्वी में, भोगों के द्वारा आत्मा में तथा समदृष्टि के द्वारा सभी प्राणियों में क्षेत्रज्ञ के रूप में मेरी आराधना करनी चाहिए।

"पूजा के इन सभी स्थानों में शान्त एवं एकाग्र मन से मेरी शंख, चक्र, और पद्मधारी चतुर्भुज सौम्य मूर्ति का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार जो एकाग्र मन से यज्ञ यागादि, इष्ट और सरोवर, बाग, मन्दिर, आदि पूर्व-कर्मा के मेरी पूजा करता है, मेरा स्मरण करता है तथा साधु पुरुषों की सेवा करता है, उसे के श्रेष्ठ भक्ति प्राप्त होती है।

"हे उद्धव! भक्ति के अतिरिक्त मुक्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है। यह भक्ति सत्संग के द्वारा ही प्राप्त होती है; क्योंकि मैं ही सन्तों का आधार, लक्ष्य तथा आश्रय हूँ। हे यदुनन्दन ! अब मैं तुम्हें एक अत्यन्त गोपनीय रहस्य को बताऊँगा; क्योंकि मेरे सेवक, सुहृद् और सखा हो। "

सत्संग की महिमा

"मैं योग, सांख्य, धर्म-पालन, स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्टापूर्त, दक्षिणा, व्रत यज्ञ, वेद, तीर्थ, यम-नियम आदि से वैसी सुगमतापूर्वक प्राप्त नहीं होता जैसा कि सत्संग से, जो कि सभी आसक्तियों को नष्ट कर डालता है।

"सत्संग के द्वारा ही दैत्य असुर, पशु-पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध चारण, गुह्यक और विद्याधर तथा मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्री, चाण्डाल आदि रजोगुणी तथा तमोगुणी प्रकृति के बहुत से प्राणियों में मेरा परम पद प्राप्त किया है। त्वष्टा ऋषि पुत्र वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय दानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रज की गोपियाँ, यक्षपत्नियाँ और दूसरे लोगों ने भी न तो वेदों का स्वाध्याय किया, न ज्ञान के लिए महापुरुषों की विधिवत् सेवा ही की, न तो व्रत-उपवास किये और न तपस्या ही ; किन्तु सत्संग के प्रभाव से वे मुझे प्राप्त हो गये।

"योग, सांख्य, दान, व्रत, तपस्या, यज्ञ, श्रुतियों की व्याख्या, स्वाध्याय, संन्यास आदि बड़े-बड़े साधनों के द्वारा भी लोग मुझे प्राप्त नहीं कर पाते; किन्तु गोपियाँ, गायें, वृक्ष, मृग, नाग तथा मूढ़ बुद्धि के जीव सत्संग से विकसित प्रेमपूर्ण भाव के द्वारा मुझे सहज ही प्राप्त कर कृत-कृत्य हो गये। जिस समय अक्रूर जी मुझे बलराम जी के साथ मथुरा ले जा रहे थे उस समय गोपियों को, जो कि प्रगाढ़ प्रेम के कारण अपना हृदय मुझे अर्पित कर चुकी थीं, मेरे वियोग के कारण मर्मान्तक पीड़ा पहुँची। मेरे अतिरिक्त उन्हें अन्य कुछ भी आनन्दप्रद या रुचिकर न था। गोपियों का प्रियतम मैं जब वृन्दावन में उनके साथ था तब जो रात्रियाँ उन्होंने पल के समान बिता दी, वे ही रात्रियाँ मेरे वियोग में उनके लिए युग के समान हो गयीं। जैसे ऋषि गण समाधि में तथा नदियाँ समुद्र में मिल कर नाम-रूप को खो देती हैं वैसे ही वे गोपियाँ परम प्रेम के द्वारा मुझमें इतना तन्मय हो रही थीं कि उन्हें देह-गेह की, अपने सगे-सम्बन्धियों की तथा अपने पास-पड़ोस की सुध-बुध ही न रह गयी थी।

"उनमें से बहुत-सी गोपियाँ मेरे वास्तविक स्वरूप, परब्रह्म को न जान कर मुझे अपना प्रियतम यार ही समझती थीं; किन्तु उन्होंने सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में केवल सत्संग के प्रभाव से मुझ परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लिया । हे उद्धव ! इसलिए तुम विधि-निषेध, प्रवृत्ति-निवृत्ति और सुनने योग्य तथा सुने हुए विषयों

का परित्याग कर नीति-नियमों से ऊपर उठ जाओ। श्रुति-स्मृति की, विधि-निषेध की चिन्ता न करो। समस्त प्राणियों के आत्म-स्वरूप मुझ एक की ही शरण पूर्ण हृदय तथा परम प्रेम से ग्रहण करो। तुम्हें किसी से भय नहीं होगा।"

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं: "सम्पूर्ण वस्तुओं को जीवन-दान देने वाले परमात्मा चक्रों में प्रकट हैं। वे पहले अनाहतनादस्वरूप परा वाणी नामक प्राण के साथ मूलाधार चक्र में प्रवेश करते हैं। क्रमशः पश्यन्ती और मध्यमा वाणी का मनोमय सूक्ष्म रूप धारण करने के अनन्तर वे अन्त में मात्रा, स्वर तथा वर्ण-रूप स्थूल-वैखरी वाणी का रूप ग्रहण करते हैं।"

(**टिप्पणी**-वैखरी वाणी दिव्य शक्ति की अन्तिम तथा स्थूलतम अभिव्यक्त है। ईश्वरीय वाणी की सर्वोच्च सूक्ष्मतम प्रारम्भिक अभिव्यक्ति परा है। परा वाणी ही विचारों का मूल अथवा बीज का रूप धारण करती है। यह वाणी की प्राथमिक अभिव्यक्ति है। परा में ध्वनि अव्यक्तावस्था में रहती है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा वैखरी वाणी के क्रमिक रूप है। मध्यमा अप्रकट वाणी में माध्यमिक अवस्था है । इसका स्थान हृदय है।

पश्यन्ती का स्थान मणिपूर चक्र (नाभिस्थान है)। सूक्ष्म अन्तदृष्टि प्राप्त योगी गण पश्यन्ती वाणी का अनुभव कर सकते हैं। इसमें रंग तथा रूप होता है। यह भाषाओं के लिए एक-सा ही है। इसके स्पन्दन में भी समानता होती है। भारतीय यूरोपियन, अमरीकी, जापानी, पशु-पक्षी सभी पश्यन्ती वाणी के द्वारा ही किसी वस्तु की भावना करते हैं। संकेत अव्यक्त वाणी का एक प्रकार है। यह सभी लोगों के लिए एक ही है। किसी भी देश का कोई भी व्यक्ति क्यों न हो अपने हाथों को मुख के निकट ला कर एक ही सा संकेत करता है। जैसे एक ही शक्ति कानों में क्रियाशील हो कर श्रवण शक्ति, नेत्रों में दृष्टि-शक्ति इत्यादि बन जाती है वैसे ही एक ही पश्यन्ती वाणी भी स्थूल रूप में विभिन्न ध्वनियों में परिणत हो जाती है । अपनी माया-शक्ति के द्वारा परमात्मा प्रथम मूलाधार चक्र में परा वाणी के रूप में तदनन्तर नाभि के मणिपूर-चक्र में पश्यन्ती के रूप में, हृदय में मध्यमा के रूप में अन्ततः कण्ठ और मुख में वैखरी के रूप में अपने को प्रकट करते हैं। यह भगवान की वाणी का दिव्य अवतरण (अवतार) है। सभी वैखरी परमात्मा की ही वाणी है। यह विराट् पुरुष की वाणी है।

जैसे अग्नि काष्ठ में अव्यक्त उष्णता के रूप में विद्यमान रहती है। बलपूर्वक रगड़ने से वह वायु की सहायता से चिनगारी के रूप में प्रकट होती है, तदनन्त अग्नि-शिखा के रूप में और अन्ततः घी की आहुति देने पर ज्वाला का रूप धारण कर लेती है वैसे ही मैं वाणी के रूप में प्रकट होता हूँ। उष्णता परा वाणी, चिरगांरी पश्यन्ती, अग्नि- शिखा मध्यमा और ज्वाला वैखरी है।)

"इसी प्रकार बोलना, काम करना, चलना मल-मूत्र त्याग करना, सूँघना, देखना, छूना, सुनना, संकल्प-विकल्प करना, जानना, अभिमान करना, जानना, अभिमान करना,तथा सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के विकार—ये सब मेरी ही अभिव्यक्तियाँ हैं।

"यह ईश्वर एक और पहले अव्यक्त था। वही त्रिगुणात्ममय ब्रह्माण्ड कमल का कारण है। वह ही कालगति से अनेक रूपों में प्रतीत होने लगता है जैसे कि भूमि में बोया हुआ बीज बहुत-सी शाखाएँ प्रस्फुटित कर अनेक रूप धारण कर लेता है।

"जैसे वस्त्र धागे से ओत-प्रोत है, वैसे ही यह विश्व परमात्मा में ही ओत-प्रोत है। यह संसार वृक्ष अनादि और नित्य है। कर्म-परम्परा इसका स्वरूप है। यह फूल भोग और फल मोक्ष उत्पन्न करता है। इसके दो बीज (पाप और पुण्य), सैकड़ों जड़ें (असंख्य वासनाएँ), तीन तने (सत्त्व, रज और तम), पाँच प्रधान शाखाएँ (पाँच भूत) और ग्यारह शाखाएँ (दश इन्द्रियाँ और एक मन) हैं।

"यह पाँच प्रकार के रस (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) उत्पन्न करता है। इसमें दो पक्षियों (जीव और परमात्मा) के घोंसले हैं। इसमें तीन तरह की छाल (वात, पित्त और कफ) और दो फल (सुख और दुःख) है । यह सूर्य मण्डल तक का फैला हुआ है। जो सूर्य मण्डल को पार कर जाते हैं, वे फिर जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ते ।

"गाँवों में रहने वाले गृध्र (गृहस्थ जीवन से आसक्त कामनाओं से पूर्ण गृहस्थ) इस वृक्ष का एक फल अर्थात् दुःख का उपभोग करते हैं। जो अरण्यवासी हैं तथा विवेक और ज्ञान से सम्पन्न होने के कारण हंस कहलाते हैं, वे सुख-रूप फल को भोगते हैं। जो गुरु की कृपा से इस बात को जान जाता है कि एक ही ईश्वर माया द्वारा अनेक रूप धारण कर रहा है, वह वास्तव में सत्य को और वेदों के रहस्य को जान जाता है।

"गुरुदेव की सेवा और उपासना से प्राप्त अनन्य भक्ति के द्वारा अपने ज्ञान की कुल्हाड़ी को तीक्ष्ण बना कर धैर्य एवं सावधानीपूर्वक तुम इस संसार वृक्ष का उच्छेदन कर डालो और परमात्मा को प्राप्त कर इन अस्त्रों को भी छोड़ दो।"

गुण

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : "सत्त्व, रज और तम—ये तीन बुद्धि (प्रकृति) के गुण हैं, आत्मा के नहीं। अतः मनुष्य को सत्त्व के द्वारा रज और तम—इन दोनों पर विजय पानी चाहिए और तदनन्तर सत्त्व को सत्त्व के द्वारा ही वशीभूत करना चाहिए।

''जब मनुष्य में सत्तव गुण की वृद्धि होती है, तब वह मेरे भक्तिरूप स्वधर्म को प्राप्त करता है। सात्त्विक वस्तुओं के सेवन से सत्त्व की और तत्पश्चात् सत्त्व से धर्म की वृद्धि होती है । सत्त्व की वृद्धि से उत्पन्न होने वाली धर्म की शक्ति अप्रतिहत होती है। वह रजोगुण तथा तमोगुण दोनों को नष्ट कर डालता है। इन दोनों के नष्ट हो जाने पर इनसे उत्पन्न होने वाला अधर्म भी शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है।

"शास्त्र, जल, प्रजा, देश, समय, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र तथा सस्कार - इन दश वस्तुओं के अनुसार ही गुणों की वृद्धि होती है। ऋषि गण इनमें से जिनकी प्रशंसा करते हैं, वे सात्विक हैं; जिनकी निन्दा करते हैं, वे तामसिक हैं और जिन वस्तुओं उपेक्षा करते हैं, वे राजसिक हैं।

सत्त्व की वृद्धि के लिए मनुष्य को सात्त्विक वस्तुओं का ही सेवन करना चाहिए। सत्त्व से धर्म की उत्पत्ति होती है और धर्म से ज्ञानोद्भव होता है। ज्ञान की परिसमाप्ति आत्म-साक्षात्कार में होती है जिससे व्यक्ति के सारे सांसारिक बन्धन निवृत्त हो जाते हैं।

(**टिप्पणी**-सात्त्विक तथा ब्रह्म-साक्षात्कार का पथ-प्रदर्शन करने वाले ग्रन्थों का ही स्वाध्याय करना चाहिए। उपन्यास तथा बाजारू पुस्तकें नहीं पढ़नी चाहिए। इत्र, शराब, अफीम, गाँजा आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। उसे सांसारिक व्यक्तियों से नहीं, अपितु सन्त लोगों से मिलना-जुलना चाहिए।)

“मनुष्य को चाहिए कि वह पवित्र जल का ही प्रयोग करे। वह एकान्त स्थान में रहे, सड़कों तथा जुआ खेले जाने वालों स्थानों में न रहे। ब्राह्ममुहूर्त का समय ध्यान के लिए विशेष उपयुक्त है, अन्य समय उपयुक्त नहीं; क्योंकि उस समय मन में विक्षेप रहता है। उसे नित्य तथा निष्काम कर्म करने चाहिए, सकाम कर्म नहीं करने चाहिए। शुद्ध धर्म में दीक्षित होना आवश्यक है। दीक्षा से मनुष्य को पुनः नये जन्म की प्राप्ति होती है। ईश्वर अथवा निर्गुण ब्रह्म पर ध्यान करना चाहिए। **'ॐ', 'श्रीराम', 'ॐ नमः शिवाय', 'ॐ नमो नारायणाय', 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** में से किसी एक मन्त्र को चुन लेना चाहिए। सांसारिक अभ्युदय प्राप्त कराने वाले मन्त्रों का जप न करें। हृदय को शुद्ध बनाना चाहिए।

"इस सात्विक साधना से सत्त्वगुण की वृद्धि होती है। सत्त्व के विकसित होने पर मनुष्य की सारी प्रकृति सात्त्विक बन जाती है। मनुष्य पूर्ण शान्ति का अनुभव करता है, जो सत्त्व का ही सार है। यही धर्म है। इसके विपरीत अधर्म है। इससे विक्षेप तथा अशान्ति की प्राप्ति होती है। धर्म से ज्ञान की प्राप्ति होती है। मन के शान्त हो जाने पर सत्य उसमें प्रतिबिम्बित होता है, सत्य का साक्षात्कार होता है। गुणों के विनिष्ट हो जाने पर ब्रह्म की अपरोक्षानुभूति होती है। इसमें ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान एक बन जाता। है; त्रिपुटी विलीन हो जाती है।

"जिस प्रकार वन में बाँसों के संघर्षण से उत्पन्न अग्नि वन को जला कर स्वतः ही शान्त हो जाती है, वैसे ही यह शरीर भी गुणों के वैषम्य से उत्पन्न है। इसमें प्रज्वलित ज्ञानाग्नि समस्त शरीर एवं गुणों को भस्म करके स्वयं भी शान्त हो जाती है।"

प्रत्याहार का अभ्यास

उद्धव जी ने पूछा : “भगवन्! साधारणतः लोग जानते हैं कि इन्द्रियों के विषय विपत्ति में जा गिराते हैं; फिर भी कुत्ते, गधे और बकरे के समान लोग उनके पीछे क्यों भागते रहते हैं ?"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : “अविवेकी मनुष्य के हृदय में शरीर के प्रति 'अहं' की भ्रान्ति-भावना उत्पन्न होती है, तब उसके मन के ऊपर भयंकर रजोगुण अधिकार जमा बैठता है। मन मूलतः सात्त्विक है। मन के रजोगुण से पूर्ण होने पर उसमें शंकाएँ तथा कामनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह सोचता है, 'मैं अमुक वस्तु को अमुक उपाय से प्राप्त करूँगा, उसका उपभोग करूँगा' इत्यादि । तब मन विषयों के बाह्य गुणों का चिन्तन करता है, 'अहा! कितना सुन्दर है यह! कितना अच्छा यह पदार्थ है!' इससे उस वस्तु के प्रति उसका राग दृढ़ होता है तथा तृष्णा बढ़ती है।

"मूर्ख मनुष्य कामनाओं तथा तृष्णाओं के वशीभूत हो जाता है। उसका अपनी इन्द्रियों पर वश नहीं चलता है। रजोगुण के तीव्र वेग से मोहित हो कर वह जान-बूझ कर ऐसे कर्मों को करता है जिनसे दुःख तथा बुरे परिणाम प्राप्त होते हैं।

“यद्यपि विवेकी पुरुष भी रजोगुण और तमोगुण के वेग से विक्षिप्त बन जाता है; परन्तु उनकी बुराइयों से अवगत होने के कारण वह सावधान रह कर मन का नियन्त्रण करता है और मन की एकाग्रता का अभ्यास करता है। अतः वह विषयों से आसक्त नहीं होता।

“सतर्क तथा सजग रह कर मनुष्य आसन तथा प्राणायाम में दृढ़ता प्राप्त कर ले तथा मन को मुझ (परमेश्वर) में लगा कर धीरे-धीरे एकाग्रता का अभ्यास करे।

“मेरे शिष्य सनकादि महर्षियों ने योग का यही स्वरूप बतलाया है जिससे कि मनुष्य सभी वस्तुओं से मन को हटा कर मुझ (ईश्वर) में स्थिर कर सके।"

उद्धव जी ने कहा : "हे केशव! आपने कब, कैसे और किस रूप से सनकादिक महर्षियों को योग का उपदेश दिया था ? कृपा करके इस विषय में मुझे बतलाइए।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा "ब्रह्मा जी के मानस-पुत्र सनकादि महर्षियों अपने पिता जी से योग के सूक्ष्म तथा अन्तिम लक्ष्य के विषय में बतलाने की प्रार्थना की।"

सनकादि ने पूछा भगवन्! मन विषयों से आसक्त है और विषय मन को प्रभावित करते रहते हैं। ये विषय मन में वृत्ति के रूप में संस्थित हो जाते हैं। विषयों में प्रवेश करता है और यह स्वाभाविक ही है कि वह उनसे आसक्त बन जाये। विषय भी चित्त की वृत्तियों में प्रवेश करते हैं। ऐसी दशा में मुमुक्षु पुरुष कैसे इन दोनों को एक-

दूसरे से अलग कर सकता है? जो व्यक्ति विषयों का अतिक्रमण कर मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, उसके प्रति उनकी क्रिया-प्रति-क्रिया कैसे समाप्त हो जाती है?'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "सभी प्राणियों के जन्मदाता स्वयम्भू भगवान् जी ने ध्यान किया; परन्तु उनका मन कर्म में प्रवृत्त था, अतः वे प्रश्न का मूल कारण न समझ सके। इस प्रश्न का प्रामाणिक उत्तर प्राप्त करने के लिए उन्होंने मेरा ध्यान किया। मैं उनके सामने हंस के रूप में प्रकट हुआ। सनकादि ने मेरा उचित सत्कार किया। वे मेरे पास आये और मेरे चरणों की वन्दना कर ब्रह्मा जी के सामने मुझसे पूछा, 'आप कौन हैं?' परमार्थ-तत्त्व के जिज्ञासु ऋषियों को जो उत्तर मैंने दिया, वह मैं तुमको फिर सुनाता हूँ ।

"ब्राह्मणो! यदि आपका प्रश्न आत्मा के सम्बन्ध में है तो आत्मा तो अनेक नहीं है । अतः यह प्रश्न ही असंगत है। कौन और किसको उत्तर देगा? किस वस्तु का आश्रय ले कर मैं आपके प्रश्न का सम्यक् उत्तर दूँ। यदि आपका प्रश्न शरीर के सम्बन्ध में है तो पंचभूत, जिनसे सभी प्राणियों का शरीर बना हुआ है, एक ही है। आत्मा भी सबमें समान है; अतः आपका यह प्रश्न, 'आत्मा कौन है ?' निरर्थक है।

"मन, वाणी, नेत्र तथा अन्य इन्द्रियों से जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है। इसे भली-भाँति समझ लीजिए।

"पुत्रो! विषय चित्त में प्रविष्ट हो जाते हैं और मन विषयाकार हो जाता है। विषय तथा चित्त- दोनों परस्पर सम्बद्ध हो कर मेरे स्वरूपभूत जीव का शरीर निर्माण करते हैं।

(**टिप्पणी**- इन्द्रिय-द्वारों से मन का बहिर्गमन तथा तत्परिणाम ही होता है। जीव स्वरूपतः ब्रह्म ही है। यदि विषयासक्त मन जीव का स्वरूप होता तो उनका विलगाव सम्भव न होता। परन्तु जीव का स्वरूप तो ब्रह्म ही है। मन जीव की उपाधि है। मन जीव पर अध्यारोपित है। इस अध्यारोप के कारण ही वह विषयों से सम्बद्ध-सा प्रतीत होता है। मन के द्वारा जीव का विषयों से संयोग होता है। **'अहं ब्रह्मास्मि'** मैं ब्रह्म हूँ इस महावाक्य पर ध्यान के द्वारा आत्मा को मन और विषय-दोनों से अलग करना चाहिए। विषय-पदार्थ असत् हैं, ऐसा विचार कर मन को उनसे मोड़ लीजिए और ब्रह्म के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कीजिए। परमात्मा के साथ एक हो जाने पर विषयों का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। ईश्वरोपासना के द्वारा आप अपने स्वरूप असीम सत्-चित्-आनन्द ब्रह्म में निवास करेंगे।)

"मनुष्य को चाहिए कि वह मेरे साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित करें और विषयों का चिन्तन करने वाले मन तथा मन में तृष्णा, वासना और कामना के द्वारा विकार उत्पन्न करने वाले विषयों का परित्याग करे।

"जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति —ये गुणों के अनुसार चित्त की तीन अवस्थाएँ हैं। आत्मा इस अवस्था-त्रय से परे है। यह उनसे विलक्षण है, क्योंकि यह उनका साक्षी है। यह बात सुविदित तथा निश्चित रूप से प्रमाणयुक्त है।

“मन के द्वारा होने वाला यह बन्धन जीव में गुणों की वृत्तियों का दान करता है। अतः इन तीनों अवस्थाओं से परे मुझ तुरीय में स्थित हो कर मनुष्य इस मन के बन्धन का अतिक्रमण करे। तब गुण और चित्त—दोनों का परित्याग सम्भव जाता है।

'“जीव के बन्धन का कारण अहंकार है। यही बुराइयों की जड़ है। मनुष्य को चाहिए कि वह तुरीय में स्थित हो कर अहंकार का उन्मूलन कर संसार की चिन्ता का परित्याग कर दे।

"जब तक विवेक के द्वारा नानात्व की भावना का नाश नहीं होता, तब तक मनुष्य मूर्ख ही बना रहता है, जागते हुए भी वह सोता हुआ-सा है, जैसे स्वप्न में मनुष्य अपने को जागता हुआ समझता है।

'आत्मा के अतिरिक्त सारे पदार्थ असत् ही हैं। उनके कारण होने वाले 'वह ब्राह्मण है', 'वह शूद्र हैं', 'वह गृहस्थ है', 'वह संन्यासी है' आदि वर्णाश्रम-भेद, स्वर्गादि विभिन्न फल और उनके कारणभूत कर्म—ये सब वैसे ही मिथ्या हैं जैसे कि स्वप्न में देखे हुए पदार्थ।

“जो जाग्रतावस्था में अपनी समस्त इन्द्रियों से बाह्य क्षणभंगुर विषयों का सेवन करता है, जो स्वप्नावस्था में अपने हृदय के अन्दर ही जाग्रतावस्था के समान पदार्थों का उपभोग करता है, जो सुषुप्ति में इन सभी विषयों से उपरत हो जाता है, वह तीनो अवस्थाओं का साक्षी तथा समस्त इन्द्रियों का स्वामी, आत्मा एक ही है। तीनो अवस्थाओं में स्मृति अनवच्छिन्न बनी रहती है, तीनों अवस्थाओं में एक ही स्मृति प्रवाहित होती है। यह एक ही आत्मा का तीनों अवस्थाओं में होना सिद्ध करता है।

"इस बात पर अच्छी तरह विचार करो कि मन की ये तीनों अवस्थाएं गुणों के द्वारा मेरी माया से मुझमें कल्पित की गयी हैं। ऐसा निश्चय करके विवेक तथा सत्पुरुषों एवं श्रुतियों के उपदेश के श्रवण से तीक्ष्ण हुए ज्ञान-खड्ग से अहंकार का खण्डन कर डालो, जो कि सभी संशयों का आधार है और मुझ अन्तर्वासी की पूजा करो।

"इस जगत् को भ्रान्ति समझो, मन का खेल समझो। यह अभी दिखायी देता है तथा दूसरे ही क्षण स्वप्नवत् नष्ट हो जाता। यह अलातचक्र के समान अत्यन्त चंचल है। एक ही चैतन्य अनेक-सा प्रतीत होता है। गुणों के परिणामजन्य त्रिविध भेद — जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति-माया है।

"अपनी इन्द्रियों को सांसारिक पदार्थों से हटाओ। सारी कामनाओं का परित्याग करो। शान्त बनो तथा अपनी आत्मा के आनन्द में ही निमग्न रहो। मौन रहो तथा कर्मों से विरत रहो। जगत् को एक बार मिथ्या समझ लेने पर, यदि कभी जगत् का अनुभव हुआ, दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिए विषय-पदार्थों का अनुभव हो भी गया तो उससे मोह नहीं उत्पन्न होगा। जब तक शरीर है, तब तक संस्कार रूप उसकी प्रतीति होती रहेगी।

“जैसे मद्‌यपान से उन्मत्त हुआ व्यक्ति यह नहीं देखता कि उसके वस्त्र शरीर पर हैं अथवा गिर गये हैं, वैसे ही सिद्‌ध पुरुष, जिसे बोध हो गया है, जिसने अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया है, नश्वर शरीर की ओर ध्यान नहीं देता कि वह खड़ा है, बैठा है या चंचल है।

"शरीर प्रारब्ध के अधीन है और इसके आरम्भक कर्म जब तक समाप्त नहीं हो जाते, तब तक यह प्राण और इन्द्रियों के साथ उनकी प्रतीक्षा करता रहता है। परन्तु जिस मनुष्य ने समाधि प्राप्त की है, वह शरीर तथा जगत् है—उसे अपने शरीर तथा विषयों के प्रति राग नहीं रहता। को स्वप्नवत् समझता है ।

“हे ऋषियो! मैंने तुम्हें आत्म-अनात्म पदार्थों में विवेक करने वाले सांख्य की तथा मन को आत्मा पर केन्द्रित कर समाधि-प्राप्ति की शिक्षा देने वाले योग—इन दोनों के गोपनीय रहस्य का उपदेश दिया है। ऐसा जान लो कि मैं विष्णु भगवान् हूँ तुम लोगों को धर्म का उपदेश देने के लिए यहाँ आया हूँ।

"हे ब्रह्मवर ! मैं योग, सांख्य, सत्य, व्रत, तेज, श्री, कीर्ति और दम इन सबकी परम गति हूँ ।

"समदृष्टि, असंगता आदि समस्त गुण मुझमें निवास करते हैं। मैं प्रकृति से परे हूँ । मैं परम ब्रह्म, सुहृद तथा प्रियतम आत्मा हूँ ।

"इस प्रकार सनकादि ऋषियों के सारे संशय मैंने मिटा दिये। उन्होंने बड़ी भक्ति से मेरी पूजा तथा स्तुति की।

“उन महर्षियों ने जब मेरी पूजा और स्तुति भली-भाँति कर ली तो मैं ब्रह्मा जी के सामने ही अपने धाम को वापस चला आया।"

भक्तियोग

उद्‌धव जी ने पूछा: "ब्रह्मवादी महात्मा मोक्ष-प्राप्ति के अनेक साधन बतलाते हैं। क्या सभी साधन महत्त्वपूर्ण हैं अथवा उनमें से केवल कोई एक ही प्रधान है ? आपने भी भक्तियोग की शिक्षा दी है जिससे मन सभी पदार्थों से आसक्ति-रहित हो आपमें ही तन्मय हो जाता है।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : “वेद के नाम से विख्यात मेरी वाणी प्रलय के समय काल-प्रवाह में विलुप्त हो गयी थी। इसे सर्वप्रथम मैंने ब्रह्मा जी को सिखलाया। इसमें धर्म अथवा मुझमें मन को लीन करने का पवित्र साधन बतलाया गया है। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र स्वायम्भुव मनु को इसका उपदेश दिया और उनसे भृगु आदि सप्तर्षियों ने प्राप्त किया। इन ब्रह्मर्षियों से उनकी सन्तान देवता, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्‌ध, गन्धर्व, विद्‌याधर, चारण, किन्नर, नाग, राक्षस, किंपुरुष आदि ने अपने पूर्वजों से सीखा।

"इनके स्वभाव सत्त्व, रज और तमोगुण के कारण भिन्न-भिन्न हैं। मनुष्य के स्वभाव-भेद के कारण ही उनकी मनोवृत्तियों में भी अनेक भेद हैं, इसलिए भिन्न-भिन्न मार्गों का उपदेश किया गया है। इस स्वभाव की भिन्नता के कारण ही प्राणियों में और उनकी वृत्तियों में विभेद है। उनके स्वभाव के अनुसार ही उन सबसे भिन्न-भिन्न विचार प्रकट होते हैं। अभिरुचि, स्वभाव तथा प्रवृत्ति के अनुसार प्राणी और उनके मन भिन्न-भिन्न हैं। उनके स्वभाव के अनुसार वेदों के भिन्न-भिन्न अर्थ किये गये हैं।

''इस प्रकार स्वभाव-भेद तथा परम्परागत उपदेश के कारण मनुष्यों के विचार और बुद्धि में अन्तर आ जाता है और कुछ लोग वेद-विरुद्ध मतावलम्बी बन जाते हैं।

प्रकृति अथवा बुद्धि में इस विभिन्नता के कारण ही केवल वैदिक प्रमाण-ग्रन्थ के आधार पर अनेक विचारधाराओं का उद्भव हुआ। इससे कुछ लोग नास्तिक बन गये। ये लोग धर्म-विरोधी हैं और वेदों में विश्वास नहीं रखते।

"हे पुरुष श्रेष्ठ! मेरी माया से मोहित हुए सभी लोग अपने-अपने कर्म-संस्कार और अपनी-अपनी रुचि के अनुसार परम कल्याण के अनेक साधन बतलाते है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कोई धर्म को, कोई यश को, कोई काम को, कोई सत्य और शम-दमादि को, कोई ऐश्वर्य को, कोई त्याग को, कोई भोग को और कोई यज्ञ, तप दान, व्रत तथा यम-नियमादि को साधन बतलाता है।

"इन साधनों के द्वारा प्राप्त होने वाले फल उत्पत्ति और विनाश वाले है; क्योंकि ये कर्म के फल हैं। इनसे दुःख और अन्त में घोर अन्धकार की प्राप्ति होती है। ये तुच्छ एवं क्षणभंगुर सुख प्रदान करते हैं और शोक से परिपूर्ण हैं। मुझमें प्राप्त होने वाला सुख विषय-पदार्थों में कहाँ प्राप्त हो सकता है? विषयलोलुप प्राणियों को सुख किस प्रकार मिल सकता है जो सुख सब पदार्थों की ओर से निरपेक्ष हो कर मुझको अपना अन्तःकरण समर्पित करने वाले व्यक्ति को प्राप्त होता है।

"जो किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं करता है, जो अकिंचन है, जिसने अपनी इन्द्रियों और मन पर विजय प्राप्त कर ली है, जो समदर्शी है, जो मुझमें ही सन्तुष्ट है, उसके लिए सभी दिशाएँ आनन्द से परिपूर्ण हैं। मुझमें स्थित होने से और मुझमें आनन्द प्राप्त करने से मेरे भक्त के लिए सब कुछ आनन्दमय ही हैं।

"जिसने मुझे आत्मार्पण कर दिया है, वह न तो ब्रहमा का पद चाहता है और न इन्द्र का ही। वह न तो सम्राट् का राजसिंहासन चाहता है और न पाताल लोक का आधिपत्य ही। वह योग की सिद्धियों को भी नहीं चाहता है और न उसे जन्म-मृत्यु से छुटकारा दिलाने वाले मोक्ष की ही कामना रहती है। वह मुझे छोड़ कर अन्य कुछ भी नहीं चाहता है।

"तुम मुझे जितने प्रिय हो, उतने न तो ब्रहमा, न शिव, न बलराम, न लक्ष्मी जी और न अपनी आत्मा ही प्रिय है। मैं उस महात्मा की चरण-रज से अपने को पवित्र " बनाने के लिए निरन्तर उसके पीछे-पीछे फिरता हूँ जो

किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं रखता है, जो पूर्ण शान्त है, जो किसी से राग-द्वेष नहीं रखता है तथा सबके प्रति समान दृष्टि रखता है।

"किसी प्रकार की कामना जिनके मन का स्पर्श नहीं करती, जो पूर्णतः निष्पाप हैं, जो अकिंचन और शान्त हैं तथा सभी प्राणियों के प्रति दया भाव रखते हैं, जिनको मुझसे ही प्रेम है, वे महात्मा जन उस परमानन्द का अनुभव करते हैं जो मुझमें ही है, अन्यों में नहीं।

"मेरा साधारण भक्त, जो अभी तक अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सका है, यद्यपि संसार के विषय उसे तंग करते हैं, फिर भी उसकी मुझमें प्रगाढ़ भक्ति होने के कारण प्रायः वह उनसे पराजित नहीं होता है।

"उद्धव जी ! जिस प्रकार धधकती हुई अग्नि सब लकड़ियों को जला कर भस्म कर डालती है, उसी प्रकार मेरे भक्त भी समस्त पापों को पूर्णतया भस्म कर डालते हैं। उद्भव ! योग, साधन, ज्ञान, वेद-पाठ, तप और त्याग से मैं उतना सन्तुष्ट नहीं होता हूँ जितना कि मुझमें पूर्ण विकसित अनन्य भक्ति से । मैं सन्तों का प्रिय आत्मा हूँ। मैं अनन्य भक्ति तथा श्रद्धा से ही प्राप्त होता हूँ। मेरी भक्ति चाण्डाल को भी उसके जन्मजात दोष से पवित्र कर देती है और उसे जन्म-मृत्यु से बचाती है।

"मेरी भक्ति से वंचित व्यक्ति को सत्य और दया से युक्त धर्म और तपस्या युक्त विद्या भी भली-भाँति पवित्र नहीं करते। मनुष्य का चित्त बिना मेरी उस भक्ति के कैसे शुद्ध हो सकता है, जिसमें चित्त पिघल जाता है, शरीर रोमांचित हो जाता है और नेत्रों से कपोलों पर अश्रुपात होने लगता है।

"मेरा वह भक्त न केवल अपने को वरन् सारे संसार को पवित्र कर देता है जिसकी वाणी प्रेम से गद्गद हो गयी है, जिसका हृदय द्रवित हो गया है, जो बिना लज्जा अनुभव किये हुए कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी जोरों से गाता है और कभी नृत्य करने लगता है। जैसे आग में तपाये जाने पर सोना अपने मैल को छोड़ कर असली शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है, वैसे ही आत्मा मेरे भक्त के द्वारा कर्म-वासनाओं से मुक्त हो कर अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करता है और मुझको ही प्राप्त हो जाता है।

"मेरी पवित्र लीलाओं के श्रवण-कीर्तन से चित्त ज्यों-ज्यों शुद्ध होता जाता है। त्यों-त्यों उसे सूक्ष्म वस्तु—सत् वस्तु के दर्शन होने लगते हैं, जैसे नेत्रों में अंजन लगाने से दृष्टि-शक्ति बढ़ जाने से नेत्र देखने लगते हैं।

"विषयों का चिन्तन कीजिए, आपका चित्त विषयों में आसक्त हो जायेगा । मेरा स्मरण कीजिए, आपका चित्त मुझमें तल्लीन हो जायेगा। संसार के सब पदार्थ स्वप्न के समान है, उन असत् पदार्थों का चिन्तन त्याग कर तथा भक्ति के द्वारा चित्त को शुद्ध बना कर उसे मुझमें एकाग्र करो।

"स्त्री तथा स्त्रियों का संग करने वालों का दूर से ही परित्याग करो। आत्म-संयमी बनो। अनुकूल एकान्त स्थान में जा कर निरन्तर सावधानीपूर्वक मेरा चिन्तन करो। सतर्क रहो। जागरूक रहो। आलस्य और प्रमाद को

दूर भगाओ। कष्ट और बन्धन अन्यत्र कहीं से प्राप्त नहीं होता जैसा कि स्त्रियों के संग से तथा त्रियों से सम्पर्क रखने वाले लोगों के संग से प्राप्त होता है।"

ध्यान--विधि

उद्धव ने कहा "कमलयन प्रभो! आप कृपा करके यह बतलाइए कि पुरुष आपका किस रूप साकार अथवा निराकार, सगुण अथवा निर्गुणसे ध्यान करे? वह ध्यान क्या है? उस ध्यान का स्वभाव, उसका स्वरूप तथा उसकी विधि। बतलाइए।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : "जो न तो बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा ही—ऐसे आसन पर शरीर को सीधा रख कर आराम से बैठ जाये, हाथों को अपनी गोद में रख ले और दृष्टि अपनी नासिका के अग्र भाग पर जमाये। इसके बाद पूरक, कुम्भक तथा रेचक प्राणायाम के द्वारा नाड़ियों का शोधन करे। धीरे-धीरे इनको उल्टी रीति से करने का तथा इन्द्रियों को वश में करने का अभ्यास करे।

"मूलाधार से ऊपर ॐ का घण्टानाद के समान स्वर फैलता है। प्राणायाम के द्वारा वह इस ॐ को ऊपर ले जाये। कमल-नाल के पतले सूत्र के समान उसका प्रवाह टूटने न पाये। हृदय से ले जा कर उसे घण्टानाद के समान बजने दे। उसमें एकाक्षर ॐ को जोड़ दें।

"इस प्रकार प्रतिदिन वह तीन बार प्राणायाम करे और प्रत्येक बैठक में ओंकार-सहित दश बार प्राणायाम करे। श्वास-प्रश्वास के साथ ॐ का मानसिक जप करे। एक महीने में ही प्राण वश में हो जायेगा। शरीर के भीतर हृदय-कमल है। उसकी डण्डी ऊपर की ओर है तथा मुँह नीचे की ओर। फूल के आठ दल हैं और सुकुमार कर्णिका हैं। फूल बन्द रहता है। कर्णिका पर सूर्य, चन्द्र और अग्नि का, एक के अन्दर दूसरे का चिन्तन करे। तदनन्तर अग्नि के अन्दर मेरे इस रूप का स्मरण करना चाहिए। मेरा यह स्वरूप ध्यान के लिए बड़ा ही मंगलमय है।

और "मेरा रूप-सुडौल, सुन्दर, चार लम्बी मनोहर भुजाएँ, बड़ी ही सुन्दर अ ौर मनोहर ग्रीवा, सुस्निग्ध कपोल तथा अनोखी मुस्कान।

"दोनों ओर के कानों में मकराकृत कुण्डल झिलमिला रहे हैं। मेघ के समान श्यामल शरीर, पीताम्बर, वस्त्र, श्रीवत्स तथा लक्ष्मी जी का चिह्न वक्षःस्थल पर दायें-बायें विराजमान हैं।

"हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। गले में वनमाला, चरणों में नूपुर तथा सीने पर कौस्तुभ मणि दमक रही है।

"अपने-अपने स्थान पर चमकते हुए किरीट, कंकण, करधनी और बाजूबन्द शोभायमान हो रहे हैं। सुन्दर मुख और प्यार-भरी चितवन कृपा प्रसाद की वर्षा कर रही है। मेरा प्रत्येक अंग अत्यन्त सुन्दर तथा हृदयहारी है।

मेरे इस सुकुमार रूप का ध्यान करना चाहिए और अपने मन को एक-एक अंग में लगाना चाहिए। वह मन द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से खींच ले और मन को बुद्धि-रूपी सारथि की सहायता से मुझमें लगा दे, चाहे मेरे किसी अंगों में क्यों न लगे। जब सारे अंगों का ध्यान होने लगे, तब अपने चित्त को खींच कर एक स्थान में स्थिर करे। अन्य अंगों का चिन्तन न कर मुस्कान-युक्त मेरे मुख का ही ध्यान करे। जब चित्त वहाँ स्थिर हो जाये, तो उसे वहाँ से हटा कर आकाश में स्थिर करे। तदनन्तर उसका भी त्याग कर निर्विशेष शुद्ध ब्रह्म मेरे स्वरूप में निवास करे, अन्य कुछ भी न सोचे। त्रिपुटी - ध्याता, ध्येय और ध्यान को विलीन हो जाने दे। उनको एक हो जाने दे। त्रिविध भेद को भूल जाये। यही सर्वोच्च निर्विकल्प समाधि है।

“जिसे पूर्ण तन्मयता प्राप्त हो गयी है, जिसका चित्त विलीन हो चुका है, वह मुझमें अपने को और अपने में मुझे देखता है जैसे कि एक ज्योति दूसरी ज्योति से मिल कर एक हो जाती है। जो योगी इस प्रकार तीव्र ध्यानयोग द्वारा मुझ पर अपने चित्त का संयम करता है, उसके चित्त से वस्तु की अनेकता, उसके सम्बन्ध का ज्ञान और कर्मों का भ्रम पूर्णतया निवृत्त हो जाता है और समाधि प्राप्त करता है। मेरा योग ही समाधि का फल है।"

सिद्धियाँ

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "जिस योगी ने अपनी इन्द्रियों और प्राणों को वश में कर लिया है, जो सन्तुलित है तथा जो अपने चित्त को मुझमें लगाता है, वह बहुत-सी सिद्धियों को प्राप्त करता है।"

उद्धव जी ने कहा : "हे अच्युत ! कौन-सी धारणा करने से कौन-सी सिद्ध और कैसे आती है? इन सिद्धियों की संख्या कितनी है? आप ही योगियों को सिद्धिव प्रदान करते हैं। अतः आप मुझे बतलाइए।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : "सिद्ध योगियों ने इन सिद्धियों की संख्या अठारह बतलायी है। इनमें आठ मुझमें ही हैं। वे उच्चतर शक्तियाँ है। साधारणतया ये शक्तियाँ ईश्वर की हैं। ईश्वरावस्था को प्राप्त व्यक्तियों में ये पायी जाती हैं। शेष दश शक्ति सत्वगुण के अधिक विकास से भी प्राप्त हो जाती है।

"अणिमा अणु के समान छोटा बनने की शक्ति, महिमा - विशालकाय ब की शक्ति, लघिमा हल्का बन जाने की शक्ति—ये सिद्धियाँ शरीर की है। प्राप्ति-इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवों की सहायता से सभी प्राणियों की इन्द्रियों से करने की क्षमता है। प्राकाम्य-लौकिक तथा पारलौकिक पदार्थों का इच्छानुसार भोग करने वाली सिद्धि है। ईशिता माया पर प्रभुत्व, वशिता-विषयों में आसक्त न होना, विषय-सुख की कामना से मुक्त होना, कामावसायिता- सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति की शक्ति है। ये आठों सिद्धियाँ मुझमें स्वाभाविक तथा पूर्ण रूप से सदा रहने वाली हैं।

"भूख-प्यास के वेगों का न होना, दूर की बात सुन लेना (दूरश्रवण), दूर की वस्तु देख लेना (दूरदर्शन), शरीर में वायु के समान गति (मनोजय), इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर लेना (कामरूप), दूसरे शरीर में प्रवेश

करना (परकायप्रवेश), देवक्रीड़ा में सम्मिलित होना (देवानां सहक्रीडानुदर्शनम्), स्वेच्छानुसार शरीर छोड़ना (स्वच्छन्द मृत्यु), संकल्प की सिद्धि (यथा संकल्प संसिद्धि), सर्वत्र सबके द्वारा निर्विरोध आज्ञा पालन (आज्ञाप्रतिहतागतिः) ये दश सिद्धियाँ गुणों से सम्बन्ध रखती हैं।

"भूत, भविष्य और वर्तमान की बात जान लेना (त्रिकालज्ञान); शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों को वश में करना; दूसरे के मन की बात जान लेना; अग्नि, सूर्य, जल, विष आदि की शक्ति को निष्फल करना और किसी से भी पराजित न होना—ये पाँच लघु सिद्धियाँ हैं।

"ये सिद्धियाँ योग धारणा के द्वारा प्राप्त होती हैं। किस विशेष धारणा स कौन सी सिद्धि किस प्रकार प्राप्त हो सकती है, इसे अब मुझसे सीखिए।

"जो साधक मुझे सूक्ष्म समझ कर सूक्ष्म पंचभूतों में व्याप्त मुझ पर ध्यान करता है, उस तत्त्व के सूक्ष्म रूप में मेरा ध्यान करता है, जो तन्मात्राओं में परिव्याप्त समझ कर मुझ पर ध्यान करता है, जो मुझे तन्मात्रा समझ कर ही मुझमें ध्यान करता है, उसे 'अणिमा' सिद्धि प्राप्त होती है।

"जो महत् तत्त्व में व्यापक रूप में मेरा ध्यान करता है, उसे 'महिमा' नाम की सिद्धि प्राप्त होती है। जो आकाशादि पंचभूतों को मेरा शरीर समझ कर उन पर ध्यान करता है, उसे 'महिमा सिद्धि अर्थात् उन-उन भूतों की महत्ता प्राप्त होती है।

"जो परमाणुओं का आदि कारण और उनमें व्याप्त ईश्वर के रूप में मेरा ध्यान करता है, उसे 'लघिमा' सिद्धि प्राप्त होती है। वह किरणों के सहारे सूर्य तक पहुँच सकता है।

"जो मुझे सात्त्विक अहंकार में व्याप्त ईश्वर समझ कर तथा मुझे सब इन्द्रियों का अन्तर्नियामक मान कर मुझमें चित्त की धारणा करता है, वह समस्त इन्द्रियों का अधिष्ठाता हो जाता है। उसे 'प्राप्ति' नाम की सिद्धि प्राप्त होती है। वह उन्हें इच्छानुसार किसी भी दिशा में प्रेरित कर सकता है। वह अपनी उँगलियों से चन्द्रमा का स्पर्श कर सकता है।

"जो साधक मुझे अव्यक्त से उत्पन्न महत्तत्त्व का अभिमानी समझ कर मुझ पर मन लगाता है, जो अपने को महत्तत्त्व के अंश रूप में उपासना करता है और अपने चित्त को उस तत्त्व में तन्मय कर देता है, जो सूत्र अथवा महत्तत्त्व में व्याप्त मुझ पर अपना मन केन्द्रित करता है, उसे 'प्राकाम्य' नाम की सिद्धि प्राप्त होती है। इसकी शक्ति से वह लौकिक तथा पारलौकिक पदार्थों को इच्छानुसार भोगता है।

"जो माया अथवा तीनों गुणों के स्वामी काल-स्वरूप विष्णु के रूप पर ध्यान करता है, उसे 'ईशित्व' नाम की सिद्धि प्राप्त होती है। वह जीवों का, उनके शरीर तथा मन का नियमन कर सकता है।

“जो मेरे नारायण-स्वरूप में, जिसे तुरीय और भगवान् भी कहते है, धारणा करते हैं, उसे 'वशिता' नाम की सिद्धि प्राप्त होती है।

"जो मेरे निर्गुण ब्रह्म-स्वरूप में धारणा करता है, उसे परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसे 'कामावसायिता' सिद्धि कहते हैं। इससे सारी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

“जो धर्म के शुद्ध स्वरूप तथा श्वेत द्वीप के स्वामी मान कर मुझमें धारणा करता है, वह शरीर को प्रभावित करने वाली भूख-प्यास, जन्म-मृत्यु और शोक-मोह—इन छह ऊर्मियों से मुक्त हो जाता है।

"जो आकाश पर धारणा करता है और उसमें मन को तन्मय कर देता है, वह 'दूरश्रवण' की सिद्धि को प्राप्त करता है। जो नेत्रों को सूर्य में और सूर्य को नेत्रों में संयुक्त कर एकाग्र चित्त से यहाँ मेरा ध्यान करता है, उसे 'दूरदर्शन' की सिद्धि प्राप्त होती है। उसे सारे संसार को देख सकने की दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।

"मन और शरीर को प्राण-वायु सहित मुझमें संयुक्त कर मेरी धारणा करे तो 'मनोजय' नाम की सिद्धि प्राप्त होती है। इससे योगी मन के साथ ही शरीर को स्थान पर पहुँचा देता है।

"मन को उपादान कारण बना कर मुझमें धारणा करने से अपनी इच्छा के अनुसार कोई भी रूप धारण कर सकता है। जब योगी दूसरे के शरीर में प्रवेश करना चाहे, तो उसे चाहिए कि वह ऐसी भावना करे कि 'मैं उसके शरीर में हूँ। तब प्राण उसका शरीर छोड़ कर वायु के द्वारा भौंरे के समान ही दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

"जो योगी अपने प्राणों को वश में कर लेता है और उसे शरीर के षट्-चक्राें से हो कर शनैः-शनैः ब्रह्मरन्ध्र में ले जा सकता है, वह जितने काल तक चाहे जीवित रह सकता है। एड़ी पर बैठ कर प्राण-वायु को क्रमशः हृदय, वक्षःस्थल, कण्ठ और मस्तक को ले जाये और ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा उसे ब्रह्म में लीन करके इस शरीर का परित्याग कर दे।

"यदि किसी की देवोद्यानों में विहार करने की इच्छा हो, तो उसे मेरे सत्त्वमद स्वरूप की भावना करनी चाहिए। तब सत्त्वगुणोत्पन्न देवांगनाएँ विमान पर चढ़ कर उसकी सेवा में उपस्थित होंगी।

"मुझ सत्यसंकल्प में अपना मन स्थिर कर योगी जिस पदार्थ की भावना करता है, वह उसे प्राप्त करता है।

“जो योगी मेरे मेरे 'ईशित्व' और 'वशित्व' के स्वामी-रूप पर ध्यान के द्वारा उस भाव को प्राप्त कर लेता है, उसे मेरी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं और वह मेरे समान हो दूसरों पर आज्ञा करता है। मेरी आज्ञा के समान ही सब जगह उसकी आज्ञा का पालन होता है।

"मेरी भक्ति के द्वारा जिस योगी का चित्त शुद्ध हो चुका है और जो ईश्वर पर धारणा करने में कुशल है, उसे भूत, वर्तमान और भविष्य की सभी बातों का तथा अपने और अन्य लोगों के जन्म-मृत्यु के समय का ज्ञान हो जाता है।

"जिस योगी का चित्त मुझमें संयुक्त हो कर विश्राम प्राप्त करता है, उसका योगमय शरीर अग्नि आदि से वैसे ही नष्ट नहीं होता जैसे कि जलचर प्राणियों के शरीर जल से नष्ट नहीं होते।

"जो पुरुष श्रीवत्स, आयुध, अलंकार, ध्वजा, छत्र तथा चैवर से सम्पन्न मेरे रूप पर ध्यान करता है, वह कभी भी पराजित नहीं होता है।

"जो योगी पूर्वोक्त विधि के अनुसार योग- धारणा के द्वारा मेरी उपासना करता है, उसे उपर्युक्त सिद्धियाँ पूर्णतः प्राप्त हो जाती हैं।

"उस योगी को सभी सिद्धियाँ प्राप्य हैं, जिसने अपने प्राण, मन और इन्द्रियों का दमन कर लिया है, जो संयमी है और श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक मेरा ध्यान करता है।"

"वह योगी जो श्रेष्ठ भक्ति-योग का अभ्यास करता है, जिसे मेरी कृपा प्राप्त है और मुझसे एक हो रहा है, उसके लिए ये सिद्धियाँ विघ्नरूपा तथा समय को नष्ट करने वाली ही हैं। ये यौगिक सिद्धियाँ इसलिए बाधा समझी जाती हैं; क्योंकि इनके फेर में पड़ कर अथवा इनके दुरुपयोग से मेरे भक्त की मेरी ओर प्रगति धीमी पड़ सकती है। इन यौगिक सिद्धियों में पड़ कर वह अपने को विस्मृत कर सकता है और इस भाँति मेरी भक्ति द्वारा प्राप्त कष्टसाध्य तपस्या को नष्ट कर सकता है।

“मुझ पर धारणा करने से मेरे भक्त उन सिद्धियों को प्राप्त कर लेते हैं जो कि जन्म, औषधि, तपस्या और मन्त्रादि के द्वारा प्राप्त होती हैं; अतः किसी को योग के अन्य मार्ग का अवलम्बन नहीं करना चाहिए।

“मैं इन सिद्धियों का हेतु हूँ। मैं इन सिद्धियों का प्रभु हूँ। ब्रह्मवादियों के द्वारा निरूपित योग, सांख्य और धर्म का भी मैं ही स्वामी हूँ।

"मैं समस्त प्राणियों की आत्मा हूँ। मैं उनकी अन्तरात्मा हूँ। जैसे पंचभूत प्राणियों के बाहर और भीतर हैं और उनसे अलग भी हैं, वैसे ही मैं उनके बाहर-भीतर हूँ; परन्तु किसी पदार्थ से आवृत्त नहीं हूँ ।"

भगवान् की विभूतियों का वर्णन

उद्धव जी ने कहा : “भगवन्! आप स्वयं परब्रह्म हैं। आप अनादि, अनन्त तथा आवरण-रहित हैं। समस्त प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति, रक्षा और प्रलय के कारण भी आप ही हैं। वेदों के मर्मज्ञ ब्रह्मवेत्ता गण ही

आपके यथार्थ रूप की, छोटे और बड़े उच्च और निम्न सभी प्राणियों में वर्तमान, सत् वस्तु के रूप में उपासना करते हैं। परन्तु जिन्होंने अपने मन को वश में नहीं किया है, उनके लिए तो आप अज्ञेय ही हैं।

" आपके जिन विविध रूपों की भक्तिपूर्वक प्राप्त करते हैं, उनको कृपा करके मुझसे कहिए। उपासना करके महर्षि गण सिद्धि प्राप्त करते हैं, उनको कृपा करके मुझसे कहिए ।

"सभी प्राणियों के जन्मदाता भगवन्! हे अन्तर्यामी! आप उनकी दृष्टि में प्रच्छन्न रह कर उनमें निवास करते और अपनी लीला करते हैं। आपकी माया से मोहित हो कर वे आपको नहीं देख पाते; किन्तु आप सबको देखते हैं।

"हे असीम ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो! आप जिन विभिन्न विभूतियों को पृथ्वी, स्वर्ग, पाताल तथा समस्त दिशाओं में व्यक्त करते हैं, उन्हें कृपा कर मुझसे वर्णन कीजिए। मैं आपके उन चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जो पवित्र जल के आदि स्रोत है, जो पवित्रता के मूल कारण हैं और जो सभी तीर्थों के केन्द्र हैं।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा "तुम प्रश्न के मर्म जानने वालों में शिरोमणि हो। कुरुक्षेत्र के मैदान में शत्रुओं से युद्ध करने के लिए उद्यत हुए अर्जुन ने भी यही प्रश्न मुझसे किया था। राज्य के लिए अपने सम्बन्धियों को मारना निन्दनीय और अधर्म है, ऐसा मान कर तथा सामान्य मनुष्यों की तरह सोच कर कि मैं मारने वाला हूँ मुझसे मरने वाला है', युद्ध से उपराम हो गया।

"उस युद्धकाल में मैंने अर्जुन को युक्तियों द्वारा समझाया। उस समय उसने भी रणभूमि में उसी प्रकार प्रश्न किये, जैसे कि तुम अभी कर रहे हो।

"उद्धव जी ! मैं समस्त प्राणियों का आत्मा, सुहृद और ईश्वर हूँ। मैं ही ये समस्त प्राणी हूँ। मैं ही उनकी उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय करता हूँ।

"मैं गतिशील पदार्थों में गति हूँ और अपने वश में करने वालों में मैं काल हूँ। गुणों में मैं साम्यावस्था हूँ और गुणसम्पन्न पदार्थों में मैं उनका स्वाभाविक गुण हूँ।

"गुणयुक्त पदार्थों में मैं सूत्रात्मा हूँ तथा महान् पदार्थों में मैं महत्तत्त्व हूँ। सूक्ष्म वस्तुओं में मैं जीव हूँ और सभी अजेय पदार्थों में मैं मन हूँ।

"मैं वेदों को प्रकट करने वाला हिरण्यगर्भ हूँ; मन्त्रों में 'अ', 'उ', 'म्'– तीन मात्राओं वाला प्रणव हूँ या ओंकार हूँ। मैं अक्षरों में अकार और छन्दों में गायत्री हूँ।

"मैं देवताओं में इन्द्र, वसुओं में अग्नि, आदित्यों में विष्णु और रुद्रों में नीललोहित हैं। मैं ब्रह्मर्षियों में भृगु, राजर्षियों में मनु, देवर्षियों में नारद और गौओं में कामधेनु हूँ।

"मैं सिद्धेश्वरों में कपिल हूँ, पक्षियों में गरुड़, प्रजापतियों में दक्ष और पितरों में अर्थमा हूँ। उद्धव ! मैं दैत्यों में दैत्यराज प्रह्लाद, नक्षत्रों में चन्द्रमा, औषधियों में सोम और यक्ष-राक्षसों में कुबेर हूँ। तुम मुझे ऐसा जानो।

"मैं गजराजों में ऐरावत, जलचरों में उनका प्रभु वरुण, तपने और चमकने वाले पदार्थों में सूर्य और मनुष्यों में राजा हूँ। मैं घोड़ों में उच्चैःश्रवा, धातुओं में सोना, दमन करने वालों में यम और सर्पों में वासुकि हूँ ।

"मैं नागों में शेषनाग, सींग और दाढ़ वाले पशुओं में मृगराज सिंह, आश्रमों में संन्यास और वर्णों में ब्राह्मण हूँ। मैं नदियों में गंगा, जलाशयों में समुद्र, अस्त्र-शस्त्रों में धनुष तथा धनुर्धारियों में त्रिपुरारि शंकर हूँ ।

"मैं वासस्थानों में सुमेरु, दुर्गम स्थानों में हिमालय, वृक्षों में पीपल और धान्यों में जौ हूँ। मैं पुरोहितों में वसिष्ठ, ब्रह्मवेत्ताओं में बृहस्पति, सेनापतियों में स्कन्द और सन्मार्ग में ले जाने वालों में ब्रह्मा हूँ।

"यज्ञों में ब्रह्मयज्ञ, व्रतों में अहिंसा व्रत, शुद्ध करने वाले पदार्थों में वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाणी और आत्मा तथा पवित्र पदार्थों में पवित्रता हूँ। योगों में मैं चित्तवृत्ति का पूर्ण निषेध-रूप समाधि हूँ। मैं विजयकामियों में नीति, समस्त विधानों में न्याय, कौशलों में आत्म-अनात्मा की विवेक शक्ति और ख्यातिवादियों में विकल्प हूँ ।

"मैं स्त्रियों में शतरूपा (मनु की पत्नी), पुरुषों में स्वायम्भुव मनु (प्रजापति के पुत्र), मुनियों में नारायण और ब्रह्मचारियों में सनत्कुमार हूँ। मैं धर्मों में संन्यास, धार्मिक कृत्यों में भय से सुरक्षा प्रदान करने वाली अभय-वाणी, सुरक्षा के साधनों में आत्म-विचार, रहस्यों में मधुर वाणी और मौन तथा स्त्री-पुरुष के जोड़ों में प्रजापति हूँ, जिसने अपने शरीर से स्त्री और पुरुष का पहला जोड़ा मनु और शतरूपा को उत्पन्न किया।

"मैं नियमित रहने वालों में संवत्सर, ऋतुओं में वसन्त, महीनों में मार्गशीर्ष और नक्षत्रों में अभिजित हूँ। मैं युगों में सत्ययुग; वीर, धीर और बुद्धिमानों में देवल और असित; व्यासों में कृष्णद्वैपायन और कवियों में मनस्वी शुक्राचार्य हूँ।

"मैं भगवानों में वासुदेव, भक्तों में तुम (उद्धव), किम्पुरुषों में हनुमान् और विद्याधरों में सुदर्शन हूँ। मैं रत्नों में पद्मराग, सुन्दर वस्तुओं में कमल की कली, विविध प्रकार के तृणों में कुश और हविष्यों में गाय का घी हूँ ।

"मैं व्यवसायियों में लक्ष्मी, छल करने वालों में जूआ, तितिक्षुओं में तितिक्षा और सात्त्विकों में सत्त्वगुण हूँ। मैं बलवानों में उत्साह और पराक्रम, भक्तों में भक्ति तथा भक्तों द्वारा पूज्य नौ मूर्तियों में मैं पहली और श्रेष्ठ मूर्ति वासुदेव हूँ।

"मैं गन्धवों में विश्वावसु, अप्सराओं में पूर्वचित्ति, पर्वतों में स्थिरता और पृथ्वी में गन्ध हूँ। मैं जल में रस; तेजस्वियों में परम तेजस्वी अग्नि सूर्य, चन्द्र और तारों में प्रभा और आकाश में शब्द हूँ।

"मैं ब्राहमण-भक्तों में बलि, वीरों में अर्जुन और प्राणियों में उनकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलय हूँ। मैं इन्द्रियों में उनकी चलने की, बोलने की, मल त्याग करते की, पकड़ने की, आनन्दोपभोग की, छूने की, देखने की, स्वाद लेने की, सुनने की और सूँघने की शक्ति हूँ। वास्तव में मैं ही समस्त इन्द्रियों की इन्द्रिय-शक्ति

"मैं ही पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रकृति हूँ। सोलह विकार अर्थात् पाँच तन्मात्राएँ, दश इन्द्रिय और मन; पुरुष, प्रकृति, सत्त्व, रज, तम और परब्रहम हूँ। मैं ही उनकी गणना, उनका ज्ञान तथा उस ज्ञान का फल हूँ।

"मेरे अतिरिक्त और कोई भी पदार्थ नहीं है। मैं ही ईश्वर हूँ और जीव भी, मैं गुण हूँ और गुणी भी, मैं ही आत्मा हूँ और मैं ही शरीर भी। मैं कुछ काल में परमाणुओं की गणना तो कर सकता हूँ; किन्तु कोटियों ब्रहमाण्ड की रचना करने वाली मे विभूतियों की गणना नहीं हो सकती।

“जहाँ-कहीं भी तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा और विज्ञान आदि हैं, वहाँ तुम मुझे प्रकट जानो। इस भाँति मैने अपनी विभूतियों का संक्षेप में तुमसे वर्णन किया है। ये मनोविकार मात्र हैं। ये केवल मेरा अंश हैं। इनका मैंने किसी प्रकार तुमसे वर्णन किया है; किन्तु मेरा वास्तविक स्वरूप अवर्णनीय और अचिन्त्य है ।

"वाणी का संयम करो, मन का दमन करो, प्राणों को वश में करो, इन्द्रियों का दमन करो, आत्म-दमन करो, तब तुम्हें संसार में फिर नहीं आना पड़ेगा; क्योंकि जिस मनुष्य ने अपने मन और वाणी को पूर्णतया वश में नहीं करा है, उसके व्रत, तप और दान कच्चे घड़े में भरे हुए जल की भाँति क्षीण हो जाते हैं ।

"अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह मुझमें भक्ति रखते हुए अपनी वाणी, मन और प्राणों का संयम करे। दृढ भक्ति के साथ वह अपने मन को मुझमें स्थिर करे। तब वह अपने अन्तिम लक्ष्य तक सुगमतापूर्वक पहुँच जायेगा।"

ब्रहमचारी और गृहस्थ के धर्म

उद्भव जी ने कहा: "आपने पहले ही वर्णाश्रम-धर्म का पालन करने वाले सभी मनुष्यों के लिए कल्याणकारी भक्ति मार्ग को बतलाया है। हे कमलनयन प्रभो! कृपया उस धर्म का अब भक्ति प्राप्त हो। विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए, जिसके अनुष्ठान से मनुष्य को आपकी भक्ति प्राप्त हो ।

"हे महाबाहु प्रभो! हे माधव! जिस परम धर्म का आपने पहले हंस रूप से ब्रह्मा जी को उपदेश दिया था, वह मर्त्यलोक में अब विस्मृत-सा हो चला है; क्योंकि यह शिक्षा दिये हुए बहुत समय हो गया है।

"हे अच्युत ! इस पृथ्वी में और ब्रह्मा की उस सभा में भी, जहाँ ज्ञान और उनके अधिष्ठाता देवता मूर्तिमान हो कर उपस्थित रहते हैं, आपके अतिरिक्त इस धर्म की शिक्षा देने वाला, इसका अनुष्ठान करने वाला तथा इसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। हे मधुसूदन! आप ही इस धर्म के प्रवर्तक, रक्षक और उपदेशक हैं। जब आप इस भूलोक से प्रयाण करेंगे, तब इस नष्ट हुए धर्म की कौन शिक्षा देगा ?

“हे प्रभो! आप सभी धर्मों के मर्मज्ञ हैं। आप मुझसे उस धर्म का वर्णन कीजिए जिससे आपकी भक्ति प्राप्त होती है। उसका विधान किसके लिए और कैसा है, यह भी बतलाइए । '

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा: “हे उद्धव ! तुम्हारा प्रश्न धर्ममय है, क्योंकि यह वर्णाश्रम-धर्म के अनुष्ठान करने वाले मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त कराने वाला है। मुझसे इसका विवेचन ध्यानपूर्वक सुनो।

"सृष्टि के आदि में सत्ययुग-काल में सभी मनुष्यों का एक ही वर्ण था, जिसे 'हंस' कहते थे। मनुष्य जन्म से ही कृतकृत्य होते थे। स्वभाव से ही उनकी कामनाएँ पूर्ण रहती थीं। वे मेरे सम्पर्क में रहते थे और मेरी उपासना को ही अपने जीवन का लक्ष्य मानते थे, इसलिए उसका नाम कृतयुग था ।

"उस आदि युग में प्रणव ही वेद था और मैं ही चार चरणों वाला वृषभरूपधारी धर्म था। उस युग के लोग निष्पाप तथा तपोनिष्ठ थे। वे मुझ शुद्धस्वरूप का ध्यान करते थे

“हे परम भाग्यवान् उद्धव जी, त्रेतायुग के प्रारम्भ में मेरे श्वास के द्वारा मेरे हृदय से वेद प्रकट हुए और उससे होता, अध्वर्यु और उद्गाता के कर्म-रूप तीन भेदों वाले यज्ञ के रूप में मैं प्रकट हुआ।

"विराट् पुरुष के मुख, भुजा, जंघा और चरणों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र इन चार वर्णों की उत्पत्ति इनके पृथक्-पृथक् धर्म और आचरण के साथ हुई। ऊरुस्थल से गृहस्थाश्रम, हृदय से ब्रह्मचर्याश्रम, वक्षःस्थल से वानप्रस्थाश्रम और मस्तक से संन्यासाश्रम की उत्पत्ति हुई ।

"इन विभिन्न वर्णाश्रमों के लोगों के स्वभाव भी इनके जन्म-स्थानों के अनुसार ही हुए; अधम स्थानों से उत्पन्न होने वालों के अधम और उत्तम स्थानों से उत्पन्न होने वालों के उत्तम स्वभाव हुए।

"शम, दम, तपस्या, पवित्रता, सन्तोष, क्षमाशीलता, सरलता, मेरी भक्ति, दया और सत्य- ये ब्राह्मण वर्ण के स्वभाव हैं।

"तेज, बल, धैर्य, वीरता, सहनशीलता, उदारता, उद्योग, स्थिरता, ब्राह्मण भक्ति और ऐश्वर्य – ये क्षत्रिय वर्ण के स्वभाव हैं।

"आस्तिकता, दानशीलता, दम्भहीनता, ब्राह्मणों की सेवा, धनसंचय के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना — ये वैश्य वर्ण के स्वभाव हैं।

"द्विजों की, गौ की और देवताओं की सेवा करना और उससे जो कुछ भी प्राप्त हो, उसी में सन्तुष्ट रहना—ये शूद्र वर्ण के स्वभाव हैं।

"अपवित्रता झूठ, , बोलना, चोरी करना, श्रद्धाहीनता, नास्तिकता, अकारण ही लड़ पड़ना, काम, क्रोध और लोभ-ये अन्त्यजों के स्वभाव हैं।

"अहिंसक एवं सत्यशील होना; चोरी, काम, क्रोध तथा लोभ से मुक्त होना और सभी प्राणियों के हित-साधन में तत्पर रहना —ये सभी वर्ण वालों के लिए सामान्य धर्म हैं।

"क्रमिक रूप से संस्कारों को प्राप्त होता हुआ उपनयन संस्कार नाम से प्रसिद्ध द्वितीय जन्म प्राप्त कर द्विज को चाहिए कि वह गुरुकुल में रहे और अपनी इन्द्रियों को वश में रखे तथा बुलाये जाने पर वेदों का अध्ययन करे।

"वह मेखला, मृगचर्म, दण्ड, रुद्राक्ष की माला, यज्ञोपवीत तथा कमण्डलु धारण करे। वह शिर पर जटा रखे, अपना समय मुख और शरीर को सँवारने में नष्ट न करे, रंगीन आसनों का व्यवहार न करे तथा कुश धारण करे।

"स्नान, भोजन, होम, जप और मल-मूत्र त्याग के समय वह मौन रहे। वह काँख और गुप्तेन्द्रिय के बाल न बनाये। वह पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे और जानते हुए इसे भंग न करे। यदि अनजाने में वह अपवित्र हो जाये तो वह स्नान, प्राणायाम और गायत्री का जप करे ।

"प्रातः और सायं नित्य कर्म से निवृत्त हो वह मौन हो कर एकाग्र चित्त हो कर मन्त्र का जप करे और अग्नि, सूर्य, आचार्य, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध जन और देवताओं की उपासना करे। वह आचार्य को मेरा रूप समझे, उनका कभी अनादर न करे। उन्हें साधारण मनुष्य समझ कर उनमें दोष न निकाले, क्योंकि गुरु सर्वदेवमय है।

"प्रात: और सायंकाल जो कुछ भी भिक्षा उसे प्राप्त हो, वह उसे गुरु के पास लाये और उनसे आदेश प्राप्त होने पर संयम से भिक्षा ग्रहण करे ।

"जब आचार्य कहीं जा रहे हों तो उनके पीछे-पीछे चले, जब वे सोते हों तो उनके निकट ही सोये, जब वे थके हों तो पास बैठ कर उनके अंग दबाये, निकट होने पर हाथ जोड़ कर उनके आदेश की प्रतीक्षा करे। इस भांति वह आचार्य की सदा एक सेवक की भाँति सेवा-शुश्रूषा कर पूजा करे।

"इस भाँति विद्याध्ययन की समाप्ति तक वह सब प्रकार के आरामों का परित्याग कर पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरुकुल में निवास करे।

(**टिप्पणी**—ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं—उपकुर्वाण और नैष्ठिक। इनमें से प्रथम प्रकार का ब्रह्मचारी विद्याध्ययन समाप्त होने पर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है। ऊपर उपकुर्वाण ब्रह्मचारी के धर्म बताये गये हैं ।)

"यदि ब्रह्मचारी ब्रह्मलोक को प्राप्त करना चाहता है तो उसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य- व्रत धारण कर लेना चाहिए और स्वाध्याय के लिए अपना जीवन गुरु को अर्पित कर देना चाहिए। निष्पाप और ब्रह्मतेज से सम्पन्न हुआ ब्रह्मचारी इस भाव से कि सभी प्राणियों में एक ही परमात्मा विराजमान है—अग्नि, गुरु, अपने शरीर और समस्त प्राणियों में मुझ परब्रह्म की उपासना करे।

“जो गृहस्थ नहीं है, उसे स्त्रियों को देखना, स्पर्श करना, उनसे बातचीत या हास-परिहास करना तथा मैथुन करते हुए प्राणियों को देखना आदि से बचना चाहिए।

“शौच, आचमन, स्नान, सन्ध्योपासन, सरलता, तीर्थ सेवन, जप; अभक्ष्य अस्पृश्य वस्तुओं तथा न बोलने योग्य व्यक्तियों का त्याग, सब प्राणियों में मेरा ही दर्शन करना तथा मन, वाणी और शरीर पर संयम — यह नियम ब्रह्मचारी, गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी सबके लिए एक-सा ही है।

"इस भाँति जो ब्रह्मचारी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह अग्नि के सम तेजस्वी हो जाता है और यदि वह निःस्वार्थ है तो उसकी कामनाएं उग्र तप से भस्म हो जाती हैं और मेरी भक्ति प्राप्त हो जाती है।

"यदि भली-भांति वेदाध्ययन करने के पश्चात् वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहता है तो वह आचार्य को गुरु-दक्षिणा दे कर और उनकी अनुमति प्राप्त क समावर्तन संस्कार कराये। इसके पश्चात् वह गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम में प्रवेश करे। अपने चित्त को मुझमें लगा कर वह क्रमशः एक आश्रम से दूसरे आश्रम में प्रवेश करे। वह आश्रमों का सर्वथा परित्याग न करे।

"यदि वह गृहस्थाश्रम में जीवन व्यतीत करना चाहे तो उसे चाहिए कि अपने वर्ण की ही किसी कुलीन कन्या से, जिसमें जाति, स्वभाव और गुण-सम्बन्धी दोष न हों, विवाह करे। उस कन्या की आयु उससे कम हो। यदि वह किसी दूसरे वर्ण की कन्या से विवाह करना चाहे तो उसे क्रमशः अपने से निम्न वर्ण की कन्या से विवाह करना चाहिए अर्थात् ब्राह्मण अपने से तीनों निम्न वर्णों में, क्षत्रिय अपने से दो निम्न वर्णों में, वैश्य शूद्र वर्ण में और शूद्र अपने ही वर्ण में विवाह करे। इसके विपरीत नहीं करना चाहिए।

"यज्ञ, वेदाध्ययन और दान करना—ये धर्म सभी द्विजों के लिए समान रूप से हैं। दान लेना, वेद का अध्यापन करना और यज्ञ कराना —ये धर्म केवल ब्राह्मणों के लिए हैं। यदि ब्राह्मण यह सोचता है कि दान लेने

से उसके तप, तेज और यश का नाश होता है तो उसे पढ़ाने और यज्ञ कराने के द्वारा ही अपने जीवन-निर्वाह करने की कोशिश करनी चाहिए। यदि उन्हें भी वह हानिकर समझे तो खेत में बिखरे अन्न को बीन कर उसे अपनी जीविका चलानी चाहिए।

"ब्राह्मण का शरीर क्षुद्र विषय-भोग भोगने के लिए नहीं है। यह तपस्या करने और अन्त में अनन्त आनन्द की प्राप्ति के लिए है।

"जो ब्राह्मण खेतों में गिरे हुए दाने को चुन कर जो कुछ प्राप्त होता है, उसी में सन्तुष्ट रहता है और अतिथि-सत्कारादि महान् धर्म का पालन करता है तथा अन्य किसी वस्तु में आसक्त न हो कर मुझमें ही अपने मन को समर्पित कर देता है, वह गृहस्थ-जीवन में रहते हुए भी परम शान्ति अथवा मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

"जैसे समुद्र में डूबते हुए मनुष्य को नौका बचा लेती है, उसी प्रकार मैं भी शीघ्र ही उन लोगों को आपत्तियों से बचा लेता हूँ जो विपत्ति में पड़े हुए मेरे भक्त ब्राह्मण की रक्षा करते हैं।

"राजा पिता के समान विपत्ति से अपनी प्रजा की रक्षा करे। जैसे गजराज अपने दल के दूसरे हाथियों की रक्षा करता है वैसे ही वह (राजा) अपनी प्रजा की रक्षा करे और धीरता के साथ अपने-आप अपना उद्धार करे। जो राजा इस प्रकार अपने धर्म का पालन करता है, वह अपने सारे पापों से मुक्त हो जाता है, सूर्य के समान तेजस्वी विमान में स्वर्ग को जाता है और देवराज इन्द्र के साथ सुख भोगता है।

"आपत्ति-काल में आपत्ति से बचने के लिए ब्राह्मण वैश्य-वृत्ति धारण करे, सात्त्विक वस्तुओं को बेचे। यदि वह फिर भी विपत्ति में पड़े तो वह तलवार द्वारा जीवन-निर्वाह कर सकता है; परन्तु नीचों की सेवा, 'श्वान-वृत्ति' कभी न करे। "आपत्ति-काल में क्षत्रिय वैश्य-वृत्ति, आखेट अथवा ब्राह्मण की वृत्ति से जीवन-निर्वाह करें; परन्तु नीचों की सेवा का आश्रय न ले।

"आपत्ति-काल में वैश्य शूद्रों की जीविका कर सकता है।"

"शूद्र चटाई बुनने आदि का काम कर सकता है; परन्तु आपत्ति के टल जाने पर उस गर्हित व्यवसाय द्वारा जीवन-निर्वाह का लोभ न करे।

"गृहस्थ पुरुष को चाहिए कि वह प्रतिदिन ऋषि, पितर, देवता, निम्न प्राणी तथा मनुष्य को मेरा स्वरूप जान कर इनकी यथाशक्ति क्रमशः वेदाध्ययन, स्वधा, स्वाहा आदि से पूजा करे। यह पंचमहायज्ञ है। प्रत्येक गृहस्थ को इसे नित्य प्रति करना चाहिए। अनायास प्राप्त धन अथवा शुद्ध जीविका से उपार्जित धन से वह विधिपूर्वक उपर्युक्त यज्ञ को करे। इसके लिए वह न तो नौकरों को कष्ट दे और न आश्रितों से ही धन प्राप्त करे। उसे अपना तथा अपने आश्रितों का पालन करते हुए यज्ञ को करना चाहिए। यज्ञार्थ अपने परिवार वालों को भूखा न रखे।

"वह कुटुम्ब से आसक्त न हो। पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हुए भी उसे भगवान् को विस्मरण नहीं करना चाहिए। बुद्धिमान् पुरुष को स्वर्गादि के सुखों को इस लोक की वस्तुओं के समान ही नाशवान् समझना चाहिए ।

"पुत्र, स्त्री, सम्बन्धी और मित्रों का मेल, यात्रा में संयोगवश मिले हुए यात्री के मिलन के समान है। शरीरपात के साथ ही ये सम्बन्ध जाते रहते हैं जैसे कि नींद के टूट जाने पर स्वप्न। जैसे नींद से उठा हुआ व्यक्ति स्वप्न के पदार्थों का परित्याग कर देता है, वैसे ही उसे किसी भी समय इन्हें अपने मन से अलग करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

"जो इस प्रकार विचार कर घर में अतिथि की भांति अनासक्त-भाव से रहता है, वह घर में नहीं फँसता, वह मुक्त रहता है।

"गृहस्थोचित धर्मो के पालन द्वारा मेरी आराधना करता हुआ वह चाहे तो गृहस्थाश्रम में रहे अथवा वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे अथवा यदि सन्तान हो तो संन्यासी हो संन्यासाश्रम स्वीकार कर ले।

"परन्तु जो घर में आसक्त है, जो पुत्र, धन आदि के लिए चिन्तित रहते हैं, जो लम्पट हैं, वे मूढ हैं। वे 'मैं' और 'मेरा' के भाव से मोहित होते और बंध जाते हैं।

"हाय! मेरे वृद्ध माता-पिता, मेरी स्त्री और मेरे नन्हें-नन्हें बच्चे मेरे बिना असहाय हैं। मेरे बिना वे अनाथ और दुःखी कैसे अपना जीवन-निर्वाह करेंगे। इस भाँति मूर्ख मनुष्य घर की वासना से विक्षिप्त चित्त हो कर निरन्तर उनके विषय में सोचता रहता है। इस भाँति वह मर जाता है और घोर अन्धकार में पड़ता है, निम्न योनि प्राप्त करता है।

वानप्रस्थ और संन्सासी के धर्म

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : "जो वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहता है, उसे चाहिए कि अपनी पत्नी को पुत्रों के हाथ सौंप दे अथवा उसके साथ ही वन में प्रवेश करे और फिर शान्तिपूर्वक अपने जीवन का तृतीय भाग अर्थात् पचास वर्ष से पचहत्तर वर्ष की आयु तक वन में व्यतीत करे।

"उसे चाहिए कि वह कन्द-मूल-फल और वन की अन्य वनस्पतियों से अपना जीवन-निर्वाह करे और वल्कल, घास-पात और मृगछाला पहने। वह अपने बालों और नखों को बढ़ जाने दे, नित्यप्रति दिन में तीन बार स्नान करे और भूमि पर शयन करे। (उसे शरीर की ओर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए। उसे शरीर का चिन्तन नहीं करना चाहिए। तब उसे आत्म-चिन्तन के लिए पर्याप्त समय मिलेगा।)

"ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि तापे (चारों ओर चार अग्नि और शिर पर सूर्य की धूप हो, किसी प्रकार की छाया न हो), वर्षा ऋतु में खुले मैदान में वर्षा सहन करे और शीत ऋतु में गले तक जल में डूबा रहे। इस प्रकार वह तपस्या करे।

"वह आग में भून कर अथवा कालानुसार पका हुआ आहार ग्रहण करे। वह चक्की अथवा पत्थर पर पीस कर अथवा दाँतों से चबा कर खाये। देश, काल और प्रभाव का विचार कर अपने जीवन-निर्वाह के लिए स्वयं ही उसे सब साधन एकत्र करने चाहिए। पहले के संचित किये हुए पदार्थों को वह न खाये ।

"वानप्रस्थी को चाहिए कि वह जंगल में उत्पन्न अन्न से ही समयोचित यज्ञ-यागादि करे, वेद-विहित पशुबलि के द्वारा वह यजन न करे। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य आदि का वेदवेत्ताओं ने वानप्रस्थी के लिए भी विधान किया है।

"इस भाँति तपस्या से उसका शरीर सूख कर काँटा हो जाता है। वह मेरी उपासना कर महर्लोक आदि में होता हुआ मुझे प्राप्त होता है ।

"उससे बढ़ कर कोई मूर्ख नहीं होगा, जो कष्टसाध्य तथा मोक्ष-प्रदायक तपस्या को स्वर्गादि के सुख-भोग की तुच्छ कामनाओं की पूर्ति में नष्ट करे।

"वृद्धावस्था के परिणाम स्वरूप शरीरांग में कम्पन होने से वानप्रस्थ अपने आश्रमोचित धर्म का परिपालन न कर सके, तो उसे चाहिए कि भावना के द्वारा यज्ञाग्नियों को अपने अन्तःकरण में आरोपित कर ले और मुझमें अपना मन लगा कर अग्नि में प्रवेश कर जाये।

“यह जान कर कि धर्म के फल-स्वरूप प्राप्त होने वाले इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख दुःख, शोक और चिन्ता से पूर्ण हैं और शाश्वत नहीं हैं, उसको इनसे पूर्ण वैराग्य हो जाये तो यज्ञाग्नियों का परित्याग करके वह संन्यासी हो जाये।

"वह शास्त्र के नियमानुसार मेरी आराधना करे, वैदिक रीति से मेरा यजन करे और अपना सर्वस्व ऋत्विजों को दान कर दे। यज्ञाग्नियों को अपने अन्तःकरण में आरोपित कर सब प्रकार की कामना और चिन्ता से मुक्त हो कर वह संन्यास ले ले।

'जब ब्राह्मण संन्यास लेने लगता है तब देव गण, सोच कर कि यह हम लोगों को लाँघ कर परमात्मा को प्राप्त होने जा रहा है, उसके स्त्री तथा अन्य सम्बन्धी के रूप में आ कर बाधा डालते हैं।

“यदि संन्यासी कौपीन के अतिरिक्त दूसरा वस्त्र रखना चाहता है तो वह उतना ही बड़ा होना चाहिए जिससे कि लँगोटी ढक जाये । आपत्ति-काल को छोड़ कर वह दण्ड और कमण्डलु के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु, जिनका कि उसने संन्यास लेते समय परित्याग कर दिया है, अपने पास न रखे।

"धरती को भली-भाँति देख कर वह पाँव रखे। प्रत्येक पग रखने के पूर्व वह अपने नेत्रों से मार्ग को भली-भाँति देखे कि उसके पाँव रखने से किसी प्राणी की हिंसा न हो। वह जल कपड़े से छान कर पीये, सत्य वाणी ही बोले और वही कर्म करे उसके अन्तःकरण के अनुसार शुद्ध या ठीक हो ।

"मौन, काम्य कर्मों का परित्याग अथवा नैष्कर्म्य और प्राणायाम-ये क्रमश वाणी, शरीर और मन के दण्ड हैं। जिनके पास ये नहीं हैं, वे केवल बाँस के द धारण करने से संन्यासी नहीं होते। संन्यासी को चाहिए कि वह सात अनिश्चित घरों में भिक्षा ग्रहण करे, इनसे अधिक की नहीं। जो कुछ भी प्राप्त हो, उतने में ही सन्तोष करे। भोजन की चिन्ता वह पहले से न करे। इस घर से अमुक प्रकार की भिक्षा मुझे मिलेगी और उस घर से अमुक प्रकार की इस प्रकार के विचार वह अपने मन मे न लाये। एक समय के लिए जितना पर्याप्त हो, उससे अधिक वह भिक्षा न लाये।

"इस प्रकार भिक्षा ले कर वह ग्राम के बाहर किसी नदी अथवा तालाब पर जाये। वहाँ वह स्नान करे और जल छिड़क कर भोजन को पवित्र कर ले, देवता और सभी प्राणियों को उनका भाग अर्पित करे और तत्पश्चात् अवशिष्ट भिक्षा को मौन हो कर खा ले, उसमें से कुछ बचाये नहीं। विवर्जित लोगों को छोड़ कर चारों वर्णों की भिक्षा ले।

“वह अपनी इन्द्रियों और मन को वश में कर, सबसे असंग रह कर इस पृथ्वी पर एकाकी विचरण करे। वह अपनी आत्मा में क्रीड़ा करे और आत्मरत रहे। वह सबको समान जाने, वह समदृष्टि रखे और सर्वत्र समान रूप से ब्रह्म को स्थित अनुभव करे ।

"संन्यासी किसी निर्जन, सुरक्षित और अनुकूल एकान्त स्थान में रहे। मेरी परम भक्ति से विशुद्ध हृदय हो कर मुझसे अभिन्न ब्रह्म का वह चिन्तन करे।

"वह ज्ञाननिष्ठा के द्वारा अपने बन्धन और मोक्ष पर विचार करे। इन्द्रियों का विक्षिप्त होना ही बन्धन है और उनके प्रभाव से मुक्त होना ही मोक्ष है। इस प्रकार का विचार उसे निश्चय करायेगा कि ब्रह्म के साथ उसकी अभिन्नता का ज्ञान ही मोक्ष है। और इस ज्ञान के अभाव-रूप शरीर से तादात्म्य अहंकार और कर्म अथवा बन्धन का कारण है। वह अनुभव करता है कि इन्द्रियों की परितुष्टि के लिए किये गये काम्य-कर्म से बन्धन होता है और उनका (इन्द्रियों का) संयम ही मोक्ष दिलाता है।

"इसलिए संन्यासी को चाहिए कि मेरी भक्ति के द्वारा वह अपनी इन्द्रियों और भूख-प्यास, जन्म-मृत्यु और लोभ-मोह— इन छह ऊर्मियों या षड्वर्ग को वश में कर ले और सबमें मेरा दर्शन करता हुआ विचरण करे।

अपने-आपमें ही परम आनन्द और शान्ति का अनुभव करता हुआ तुच्छ कामनाओं का सर्वथा परित्याग कर वह ध्यान में संलग्न रहे।

"वह भिक्षा के लिए नगर, ग्राम, बस्ती और यात्रियों की टोली में जाये। तीर्थ-स्थान, नदी, पर्वत, वन और आश्रमों से पूर्ण भूमि में वह विचरण करे।

"वह अपनी भिक्षा अधिकतर वानप्रस्थ आश्रमों से ग्रहण करे; क्योंकि खेत से चुने हुए अन्न से बनी भिक्षा से उसका चित्त शुद्ध हो जाता है और वह शीघ्र ही मोह से छूट कर मोक्ष प्राप्त करता है।

"वह इस जगत् को सत्य वस्तु न माने; क्योंकि वह परिवर्तनशील और विनश्वर है। वह स्वादिष्ट आहार तथा दूसरी वस्तुओं को सत्य न समझे; क्योंकि स्थूल पदार्थ नाशवान् होते हैं। इसलिए वह इहलौकिक तथा पारलौकिक भोगों से विरक्त हो। कर इन भोगों को प्राप्त करने वाले समस्त काम्य-कर्म का परित्याग कर दे ।

“अपने स्वरूप में स्थित संन्यासी विचार द्वारा यह निश्चय करके कि जगत्, शरीर, मन, वाणी और प्राण – ये सब माया हैं, अपनी आत्मा में दृढ़ता से स्थित हो जाये और पूर्वोक्त पदार्थों का परित्याग कर दे। वह फिर कभी उनका स्मरण न करे।

“अब परमहंस के धर्म बतलाते हैं। जो ज्ञाननिष्ठ, विरक्त तथा मोक्ष की भी आकांक्षा न रखने वाला मेरा भक्त है, वह संन्यास के बाह्य चिह्नों को न धारण कर समस्त विधि-निषेधों से परे हो कर विचरण करे ।

"बुद्धिमान् हो कर वह बालकों के समान खेले, सम्पूर्ण कलाओं में निपुण हो कर भी जड़ के समान रहे, विद्वान् हो कर भी पागल की भाँति बातचीत करे और वेदवेत्ता हो कर भी वह प्रशंसा, नाम और यश की कामना से रहित हो पशुवृत्ति से रहे।

"वह वेदों के कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करने वाले भाग की व्याख्या में रुचि न ले, वह वेदों में अविश्वास न करे। वह व्यर्थ के तर्क-वितर्क में प्रवृत्त न हो। वह बाद-विवाद में पक्ष अथवा भाग न ले।

"संन्यासी दूसरे लोगों से भयभीत न हो और न स्वयं दूसरों को भयभीत बनाये । वह किसी से उद्विग्न न हो और न दूसरों को उद्विग्न बनाये। वह कठोर वचन को सहन करे। वह दूसरों का अपमान न करे। शरीर के लिए किसी से पशु की भाँति शत्रुता न करे ।

"एक ही परमात्मा समस्त प्राणियों के शरीर में तथा अपने शरीर में भी स्थित है, जैसे कि एक ही चन्द्रमा विभिन्न जल-पात्रों में अलग-अलग प्रतिबिम्बित होता है एक ही पंचभूत से निर्मित होने के कारण सब शरीर भी एक ही से हैं।

"संन्यासी को चाहिए कि वह कभी यदि भिक्षा न प्राप्त हो, तो खिन्न न हो न अधिक मिलने पर हर्षित ही हो, वह धैर्य रखे क्योंकि दोनों ही प्रारब्ध के अधीन हैं।

"भिक्षा के लिए अवश्यमेव प्रयास करना चाहिए। इसे भी भाग्य पर न छोड़ दें क्योंकि प्राणों का पोषण करना उचित ही है। प्राणों की रक्षा से ही वह तत्त्व का विचार कर सकता है और उसे जान कर मुक्त हो सकता है।

"संन्यासी अच्छा या बुरा, जैसा भी भोजन भाग्यवश प्राप्त हो जाये, ग्रहण करे । इसी भाँति जो वस्त्र और बिछौना भाग्यवश मिले, उसे वह स्वीकार करे । (परमहंस को यदि भाग्यवश आराम की वस्तुएँ प्राप्त हो, तो उनसे दूर भागने की आवश्यकता नहीं है। वैराग्य के प्रति आसक्ति उतनी ही दोषपूर्ण है जितनी कि राग के प्रति । परमहंस को राग और वैराग्य से ऊपर होना चाहिए। यही उसकी वास्तविक पहचान है। कुछ लो जीवन के अन्तिम क्षण तक वैराग्य से आसक्त बने रहते हैं। वैराग्य ही उनके जन लक्ष्य बन जाता है। ऐसे व्यक्ति जीवन्मुक्त के सम-भाव की वास्तविक स्थिति को नहीं प्राप्त हैं। परमहंस को सुख की प्राप्ति तथा अभाव दोनों की दशाओं में एक-सा है मन का भाव बनाये रखना चाहिए। वैराग्य के प्रति आसक्ति एकांगी विकास है। यह अपूर्णता है। कुछ संन्यासी जिनमें वैराग्य नहीं, जो वैराग्य का अभ्यास नहीं करते, जिनका मन वासनाओं से परिपूर्ण है, कहते हैं, 'हममें मानसिक अनासक्ति है। हमें वैराग्य के अभ्यास की आवश्यकता नहीं। हम द्वन्द्वों से परे हैं। हम अद्वैतवादी हैं, हममें ज्ञाननिष्ठा है।' ये विमूढ़ प्राणी हैं)।

"ज्ञानी पुरुष भी शौच, आचमन, स्नानादि नियमों का आचरण वैसे ही लीला से करे, जैसे कि मैं परमेश्वर हो कर करता हूँ। वह उन्हें विधि-विधानानुसार अनिवार्य समझ कर न करे।

"ज्ञानी पुरुष में भेद-बुद्धि नहीं रहती है; क्योंकि मेरा साक्षात्कार कर लेने पर यह नष्ट हो जाती है। शरीरपात के पूर्व कभी-कभी उसमें भेद की प्रतीति हो सकती है; परन्तु शरीरपात के अनन्तर तो वह मुझसे एक हो जाता है। जिस ज्ञानी ने मुझसे अभिन्नता प्राप्त कर ली है, वह संसार में भले ही मिले-जुले किन्तु उसे संसार सत्य नहीं भासेगा। (देहाध्यास के कारण कभी-कभी उसे अपने आनन्द-स्वरूप की विस्मृति हो सकती है और वह मोहित हो सकता है; किन्तु मेरी कृपा से वह शीघ्र ही पुन ज्ञान को प्राप्त कर इस क्षणिक मोह को विदूरित कर देगा। ऐसा केवल उन्हीं लोगों को होता है जिन्होंने ब्रह्म की झाँकी ही पायी है। जो भूमा में स्थित हो चुके हैं, जिन्हें पूर्ण साक्षात्कार प्राप्त है, वे किसी भी प्रकार के मोह से प्रभावित नहीं होंगे और न उन्हें द्वैत ही भासेगा।)

"कर्म और विषय-पदार्थों से दुःख की ही प्राप्ति होती है। जिसको इनसे वैराग्य हो गया है, जिसने अपने मन को वश में तो कर लिया है; किन्तु उसे मेरी प्राप्ति के साधनों का अभी ज्ञान नहीं है, उसे चाहिए कि वह किसी ज्ञानी की शरण ग्रहण कर उसे अपना गुरु बनाये।

""उसे चाहिए कि ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्ति तक गुरु की वैसे ही सम्मान और भक्तिपूर्वक सेवा करे जैसे कि मेरी। उनमें उसकी पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए और उनके कभी दोष नहीं निकालने चाहिए ।

"परन्तु जिसने भूख-प्यास, जन्म-मृत्यु और शोक मोह—इन छह ऊर्मियों को वश में नहीं किया है, जिसकी इन्द्रियाँ मनमाना व्यवहार करती हैं, जिसमें विवेक नहीं है, जिसमें इहलौकिक तथा पारलौकिक नाशवान् भोगों के प्रति वैराग्य नहीं है, वह यदि संन्यास को जीविका का साधन बनाता है तो वह धर्म का नाश करने वाला है। वह देवताओं को, अपने-आपको और हृदय में स्थित मुझको ठगता है। उसके दूषित पापों का अभी तक प्रक्षालन नहीं हुआ है। वह इस लोक और परलोक—दोनों से पतित होता है। वह वर्तमान तथा भावी उभय जीवन से वंचित रहता है।

"संन्यासी का मुख्य धर्म है—शम और अहिंसा; वानप्रस्थी का— तपस्या और ज्ञान; गृहस्थ का—प्राणियों की रक्षा तथा यज्ञानुष्ठान और ब्रहमचारी का पूरे हृदय से आचार्य की सेवा।

"ऋतुकाल के अतिरिक्त ब्रहमचर्य व्रत का पालन, तपस्या, शौच, सन्तोष और समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम-भाव-ये सभी गृहस्थ के धर्म हैं। मेरी उपासना सबका समान धर्म है।

"जो पुरुष इस भाँति अनन्य भाव से अपने वर्णाश्रम-धर्म के पालन द्वारा मेरी उपासना करता है और जो सभी प्राणियों में मेरी ही भावना करता है, उसे शीघ्र ही दृढ़ भक्ति प्राप्त हो जाती है।

"उद्धव जी ! मैं ही सम्पूर्ण लोकों का तथा सम्पूर्ण प्राणियों का स्वामी तथा सबकी उत्पत्ति और प्रलय का कारण ब्रहम हूँ। वह पुरुष इस प्रकार अपनी अनन्य भक्ति के कारण मुझे प्राप्त कर लेता है।

"इस भांति अपने धर्म-पालन द्वारा चित शुद्धि प्राप्त कर और मेरे स्वरूप को जान कर वह ज्ञान और विज्ञान से सम्पन्न हो कर शीघ्र ही मुझे पा लेता है।

"वर्णाश्रम की परिधि में रहने वालों के लिए यही सदाचाररूप धर्म है और यह इसके साथ मेरी भक्ति का भी योग हो, तो यह मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन बन जाता है।

"इस भाँति मैंने तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे दिया है कि किस भाँति पुरुष मेरी भक्ति के साथ स्व-वर्णाश्रमधर्म का पालन करता हुआ मुझ परब्रहम को प्राप्त करता है।"

ज्ञान और विज्ञान

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : '"जो शास्त्रीय ज्ञान से सम्पन्न है और जिसने आत्म-साक्षात्कार भी प्राप्त कर लिया है, वह यह जान कर कि सम्पूर्ण द्वैत-प्रपंच माया मात्र है, उस ज्ञान को भी मुझमें लीन कर दे।

"ज्ञानी पुरुष के लिए मैं ही प्रिय हूँ। मैं ही उसका साध्य और साधन भी हूँ। मैं ही उसका स्वर्ग और अपवर्ग भी हूँ। मेरे अतिरिक्त उसे अन्य कुछ भी प्रिय नहीं है।

"जो ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न हैं, वे ही मेरे परम पद को प्राप्त करते हैं। ज्ञानी पुरुष मुझे सबसे अधिक प्रिय है; क्योंकि वह अपने ज्ञान के द्वारा मुझे धारण करता है।

"तपस्या, तीर्थ, जप, दान तथा अन्तःकरण को शुद्ध करने वाले दूसरे साधन उस सिद्धि को प्राप्त करने में उतने सहायक नहीं जो तत्वज्ञान की एक किरण मात्र से प्राप्त होती है।

"अतः हे उद्धव! ज्ञान-सहित तुम आत्म-स्वरूप को जानो और ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न हो कर भक्ति-भाव से मेरा भजन करो।

"मुनियों ने ज्ञान-विज्ञान-रूप यज्ञ के द्वारा अपने अन्तःकरण में मुझ आत्मा और सब यज्ञों के स्वामी की उपासना करके मोक्ष की प्राप्ति की है।

"उद्धव जी ! जन्म, मृत्यु और क्षय अथवा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर रूप त्रिविध विकार जो तुममें प्रतीत होते हैं, माया-मात्र हैं; क्योंकि इसका अस्तित्व केवल मध्य में है, आदि और अन्त में इसका कोई अस्तित्व नहीं। जब इसमें (शरीर में) जन्मादि विकार घटित होते हैं, तो उससे तुम्हे क्या ? क्योंकि असत् वस्तु तो प्रारम्भ में नहीं थी और न अन्त में ही रहेगी; अतः मध्य में भी उसका कोई अस्तित्व नहींहोता।"

उद्धव जी ने कहा : "हे विश्वरूप परमात्मन्! वैराग्य और विज्ञान से युक्त यह सनातन एवं विशुद्ध ज्ञान किस प्रकार प्राप्त हो, इसे कृपा करके मुझे समझाइए। मुझे अपने उस भक्तियोग को भी समझाइए, जिसे महर्षि गण और ब्रह्मा जी भी ढूंढ़ा करते हैं।

"हे प्रभो! इस संसार के विकट मार्ग में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक-इन ताप-त्रय से सन्तप्त प्राणी के लिए आपके अमृतवर्षी युगल-चरणों की छाया के अतिरिक्त और कोई भी आश्रय नहीं दिखायी पड़ता ! हे महानुभाव! इस क्षणभंगुर सुख-भोगों की तृष्णा के कारण मैं काल-रूपी सर्प के मुख में पड़ा हुआ हूँ, उसने मुझे जन्म-मृत्यु के अनन्त चक्र-रूपी अँधेरे कुएँ में ला धकेला है। कृपा करके इस अन्ध-कूप से मेरा उद्धार कीजिए और मोक्षप्रदायिका अपनी शान्तिमयी ज्ञान-गिरा की वर्षा कीजिए।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा: "इसके पूर्व ठीक इसी प्रकार का प्रश्न महाराजा युधिष्ठिर ने धर्मशिरोमणि भीष्मपितामह जी से किया था जिसे हम सबने सुना था।

"महाभारत का युद्ध समाप्त होने पर धर्मराज युधिष्ठिर अपने सम्बन्धियों के निधन से शोक-विह्वल हो रहे थे। उन्होंने भीष्मपितामह से उपाय पूछा और बहुत विषयों पर प्रश्न करने के अनन्तर अन्त में उन्होंने मोक्ष के साधन के विषय में यह प्रश्न किया।

"इनके विषय में जो कुछ भी मैंने भीष्मपितामह के मुख से सुना है, उसे मैं तुम्हें सुनाऊँगा। ये ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान, श्रद्धा और भक्ति से परिपूर्ण हैं ।

"जिस ज्ञान से प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहंकार और पंच तन्मात्रा (नौ); पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक मन (ग्यारह); तथा पाँच महाभूत और तीन गुण (सत्त्व, रज और तम) -इन अट्ठाईस तत्त्वों को सभी प्राणियों में देखा जाता है और इन सबमें भी एक परम तत्त्व देखा जाता है, उसी को मैं सच्चा विज्ञान मानता हूँ।

"विज्ञान यह है। ज्ञानी इन अनेक तत्त्वों को सत्य नहीं समझता अथवा अनेक को एक से अनुगत हुआ नहीं मानता। वह अब पहले के समान सबमें एक को व्यापत नहीं देखता है। वह एक ही परम कारण ब्रह्म को ही देखता है, और कुछ नहीं देखता है। वह जानता है कि उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय-ये केवल त्रिगुणात्मक पदार्थों के ही हैं।

"जो किसी एक पदार्थ के दूसरे पदार्थ में रूपान्तरित होने के प्रारम्भ में, मध्य और अन्त में स्थित रहता है और उस वस्तु के अपने कारण में विलीन होने पर शेष रह जाता है, वही पदार्थ वस्तु अथवा सत् है।

"श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमान ये प्रमाण है। यह विकारवान् जगत इनमें से किसी एक भी कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इसलिए ज्ञानी पुरुष इन सब पदार्थों से विरक्त हो कर संसार का परित्याग कर देता है।

"सभी कर्म परिणामी हैं। वे दुःखोत्पादक हैं और इनकी एक निश्चित अवधि है। वे अनन्त सुख नहीं प्रदान कर सकते हैं। इसलिए ज्ञानी पुरुष कर्म से प्राप्त होने वाले ब्रह्मलोक - पर्यन्त सभी लोकों को इस प्रत्यक्ष जगत् के समान ही दुःखदायी और नाशवान् समझता है।

"हे निष्पाप उद्धव जी! भक्तियोग का वर्णन मैं पहले ही कर चुका हैं। मैं पुनः तुमको अपनी भक्ति प्राप्त होने का मुख्य साधन बतलाता हूँ। उसे पुनः मुझसे सुनो ।

'"मेरी अमृतमयी कथा में श्रद्धा रखना; निरन्तर मेरे गुण, लीला और नामों का संकीर्तन करना; मेरी पूजा में निष्ठा रखना; स्तोत्रों से मेरी स्तुति करना; मेरी सेवा कार्य में प्रसन्न होना; मुझे साष्टांग प्रणाम करना; मेरे भक्तों की पूजा मेरी पूजा से भी बढ़कर करना; समस्त प्राणियों में मुझे देखना; मेरे लिए ही प्रत्येक अंगों से क्रिया करना; मेरे गुणों का गायन करना; अपने मन को मुझे ही अर्पित करना; सारी कामनाओं का परित्याग करना; मेरे लिए धन, भोग, सुख और आराम का परित्याग करना और यज्ञ, दान, हवन, जप, व्रत, तप आदि सब मेरे लिए करना-मेरी भक्ति प्राप्त करने के साधन हैं।

"उद्धव जी ! जिन्होंने मेरे प्रति आत्म-निवेदन कर दिया है, वे इस प्रकार के पुण्य कार्यों से मेरी भक्ति का विकास करते हैं। जब एक बार उन्हें मेरी भक्ति प्राप्त हो गयी तो संसार में प्राप्त करने के लिए उन्हें कुछ भी नहीं रह जाता है।

"जब इस प्रकार से सत्वगुण से पूर्ण और सर्वथा शान्त मन को मुझ आत्मा में लगाया जाता है तो साधक को धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

"परन्तु जब मन विषय-सुखों के पीछे भागता है, जब मेरे अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु पर, प्रतीयमान पदार्थों पर लगाया जाता है, तब यह इन्द्रियों के साथ इधर-उधर भटकने लगता है, तब वह रजोगुण से दूषित हो कर असत् वस्तु में लग जाता है और उपर्युक्त गुणों के सर्वथा विपरीत अधर्म, अज्ञान, मोह आदि का विकास करता है।

"जिससे मेरी भक्ति बढ़े, वही धर्म है; जिससे ब्रह्म और आत्मा की एकता का साक्षात्कार हो, वही ज्ञान है; विषयों से असंग रहना वैराग्य है और अणिमादि सिद्धियाँ श्री ऐश्वर्य हैं।"

यम-नियम

उद्भव जी ने कहा हे रिपुदमन ! यम और नियम कितने प्रकार के हैं? हे कृष्ण। शम क्या है ? तितिक्षा क्या है ? धृति क्या है ? दान क्या है? तपस्या क्या है? शूरता क्या है ? सत्य क्या है ? ऋत क्या है ? त्याग क्या है ? अभीष्ट धन कौन-सा है ? यज्ञ क्या है? दक्षिणा क्या है ? पुरुष का बल क्या है ? भग क्या है? लाभ क्या है? विद्या क्या है ? ह्लीं क्या है ? श्री क्या है ? सुख क्या है ? दुःख क्या है? पण्डित कौन है ? मूर्ख कौन है? सुमार्ग क्या है? स्वर्ग क्या है? नरक क्या है ? सम्बन्धी कौन है? घर क्या है? धनवान् कौन है? कौन निर्धन है ? कृपण कौन है? ईश्वर कौन है? हे प्रभो! आप मेरे इन प्रश्नों के उत्तर दीजिए और इनके विरोधी भावों को भी बतलाइए।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : “अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंगता, ह्लीं, असंचय, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा और अभय —ये 'यम' हैं।

"शौच (बाह्य और आन्तर), जप, तप, हवन, श्रद्धा, आतिथ्य, अर्चना, तीर्थाटन, परोपकार की चेष्टा, सन्तोष और आचार्य-सेवा-ये 'नियम' हैं।

“यदि इन बारह गुणों वाले समूह का पालन किया जाये तो ये साधक के इच्छानुसार अवश्य ही फल प्रदान करते हैं। ये भोग अथवा मोक्ष प्रदान करते हैं।

"मन का मुझमें लगना 'शम' है। इन्द्रियों का संयम 'दम' है। दुःखों को सहना 'तितिक्षा' है। जिह्वा और जननेन्द्रिय को वश में करना 'धैर्य' है। किसी प्राणी को हानि न पहुँचाना 'दान' है। कामनाओं का त्याग करना ही 'तप' है। 'शौर्य' अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त करना है। समदृष्टि ही 'सत्य' है। महात्माओं ने सत्य और मधुर भाषण को 'ऋत' कहा है। कर्मों में आसक्त न होना 'शौच' है। कामनाओं का परित्याग ही 'त्याग' है। धर्म ही अभीष्ट 'धन' है। मैं (परमेश्वर) ही 'यज्ञ हूँ। ज्ञान का उपदेश ही 'दक्षिणा' है। प्राणायाम ही श्रेष्ठ 'बल' है।

"मेरा ऐश्वर्य ही 'भग' है। मेरी भक्ति ही उत्तम 'लाभ' है। ब्रह्म और आत्मा का भेद मिट जाना ही 'विद्या' है। पाप करने से घृणा करना ही 'ह्लीं' है। निरपेक्षता आदि ही 'श्री' है। दुःख और सुख की भावना से ऊपर उठ जाना 'सुख' है। विषय-भोगों की कामना ही 'दुःख' है। बन्धन और मोक्ष का भेद जानने वाला 'पण्डित ' है।

"जिसमें देहाध्यास है, जो शरीर को आत्मा मानता है, वही 'मूर्ख' है। जो मुझे प्राप्त कराता है, वही 'सुमार्ग' है। चित्त का विक्षेप ही 'कुमार्ग' है। सत्त्वगुण की वृद्धि ही 'स्वर्ग' है। तमोगुण की वृद्धि ही 'नरक' है। हे सखे! गुरु ही 'सम्बन्धी' है और वह गुरु मैं हूँ। मनुष्य शरीर 'घर' है। गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही 'धनी' है।

"जिसमें असन्तोष है, वह 'दरिद्र' है। जो जितेन्द्रिय नहीं है, वही 'कृपण' है। जो विषयों में आसक्त नहीं है, वही 'ईश्वर' है।

"उद्धव जी ! मैंने तुम्हारे सब प्रश्नों के उत्तर दे दिये। गुण और दोष के लक्षणों का विस्तार करने से क्या लाभ? गुण और दोष पर दृष्टि जाना ही 'दोष' है। इन दोनों से मुक्त रहना ही 'गुण' है। अच्छे गुणों और दोषों का चिन्तन बुरा है। उन दोनों का न सोचना ही अच्छा है।

तीन मार्ग : कर्म, भक्ति और ज्ञान

उद्धव जी ने कहा : "हे कमलनयन प्रभो! 'कर्तव्य' और 'अर्कतव्य', 'विहित कर्म' और 'अविहित कर्म', 'विधि' और 'निषेध' – इनका आपकी वाणी वेदों में विधान पाया जाता है। कर्मों के गुण और दोष के विचार से ही वेदों ने पुण्य और पाप का प्रतिपादन किया है। उनमें वर्णाश्रम-भेद, द्रव्य, देश, आयु, काल तथा स्वर्ग और नरक के भेद का वर्णन है।

"आपकी वाणी विधि-निषेध से पूर्ण है। यदि उसमें गुण और दोष में भेद करने वाली दृष्टि न हो, तो वह मनुष्य को मोक्ष-पथ की ओर क्योंकर ले जा सकती है ?

"हे परमेश्वर! आपकी वाणी वेद पितर, देवता, मनुष्यों के लिए स्वर्ग-मोक्ष आदि अदृष्ट वस्तुओं के तथा साध्य और साधन के विषय में ज्ञान का श्रेष्ठ पथ-प्रदर्शक है।

"गुण और दोषों में भेद का विचार तो आपकी वाणी वेद से ही लिया गया है। वह किसी व्यक्ति की अपनी कल्पना नहीं है। वह स्वतः उत्पन्न नहीं हुए; किन्तु वहीं वेद सब प्रकार की भेद-दृष्टि का निषेध करते हैं। वे ही वेद इस भेद-दृष्टि का निषेध या खण्डन करते हैं, इससे मैं भ्रम में पड़ गया हूँ। आप कृपा करके मुझे इसे समझाइए।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा: "मैंने ही मनुष्यों के परम कल्याण के लिए तीन प्रकार के योगों को बतलाया है। वे है-ज्ञान, कर्म और भक्ति । मोक्ष-प्राप्ति का इनके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

"ज्ञानयोग उन लोगों के लिए है जो कर्म से विरक्त हो गये हैं और उनका परित्याग कर चुके हैं। कर्मयोग उन लोगों के लिए है, जिन्हें कर्मों से वैराग्य नहीं हुआ है, जो उनमें आसक्त हैं और जो कर्म-फल की कामना रखते हैं।

"किसी शुभ कर्म से सौभाग्यवश जिसे मेरी लीला-कथा में श्रद्धा है और इसके साथ ही जो न तो कर्मों से विरक्त है और न उनमें अत्यन्त आसक्त ही है, वह भक्तियोग का अधिकारी है।

"मनुष्य को तभी तक कर्म करने चाहिए जब तक कि उसे कर्मों से वैराग्य न हो जाये अथवा जब तक वह मेरे प्रेम की ओर आकर्षित न हो अथवा जब तक उसे मेरी लीला-कथा के श्रवण-कथन आदि में श्रद्धा न हो जाये।

"उद्धव जी! जो अपने वर्णाश्रम-धर्म का परिपालन करते हुए फल की आकांक्षा-रहित हो यज्ञों को करता है और यदि वह कोई निषिद्ध कर्म नहीं करता है तो वह स्वर्ग अथवा नरक में नहीं जाता ।

"जो अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करता है, पवित्र रहता है और कोई निषिद्ध कर्म नहीं करता, उसे इसी लोक में विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है और उसमें मेरी भक्ति का विकास होता है।

"स्वर्ग और नरक में रहने वाले प्राणी भी इस मनुष्य शरीर की अभिलाषा करते है; क्योंकि उन्हें इस शरीर से ज्ञान और भक्ति की प्राप्ति हो सकती है, जब कि स्वर्ग अथवा नरक का शरीर इस साधन के लिए उपयोगी नहीं है।

"बुद्धिमान पुरुष स्वर्ग अथवा नरक की अभिलाषा नहीं करता। वह मनुष्य- शरीर की भी कामना नहीं करता ; क्योंकि शरीर सम्बन्ध, विक्षेप और भ्रम उत्पन्न करता है। शरीर से आसक्त हो कर वह पथ-भ्रष्ट हो जाता है।

"यह शरीर यद्यपि मरणशील है; परन्तु यह मनुष्य को परमार्थ की प्राप्ति में सहायक हो जाता है। यह बात जान कर पुरुष को चाहिए कि वह सावधान रहे और मृत्यु आने के पूर्व ही मोक्ष की प्राप्ति के लिए साधना करे। पक्षी उस वृक्ष को, जिस पर उसने घोंसला बना रखा है, क्रूर मनुष्यों द्वारा कटते हुए देख कर वृक्ष और घोसले के प्रति राग का संवरण कर लेता है और अपने घर का परित्याग कर सुखी हो जाता है। ठीक इसी भाँति बुद्धिमान् पुरुष दिवारात्रि के क्रमिक परिभ्रमण से अपनी आयु को क्षीण होता हुआ देख और जान कर भय से काँप उठता है और आसक्तियों का परित्याग कर परमात्मा का साक्षात्कार करता है। तब वह सम्पूर्ण प्रवृत्तिया से मुक्त हो जाता है। वह अपनी प्रवृत्तियों को त्याग कर प्रवृत्ति के प्रवाह से मुक्त हो जाता है और पूर्ण शान्ति प्राप्त करता है।

"यह मनुष्य शरीर समस्त फलों की प्राप्ति का मूल है। यह अत्यन्त दुर्लभ है; किन्तु यदि एक बार प्राप्त हो गया तो सुलभ है। यह एक सुदृढ़ नौका है। गुरुदेव इस नौका की पतवार हैं और मैं इसको चलाने वाला अनुकूल

वायु हूँ। इस प्रकार की नौका और ऐसे साधनों को प्राप्त कर जो व्यक्ति संसार-सागर से पार जाने का उपाय नहीं करता, वह तो वास्तव में अपने-आप अपनी आत्मा का हनन करता है।

"जब योगी कर्मों से उद्विग्न और विरक्त हो जाये, तब इन्द्रियों को संयमित कर आत्मानुसन्धान द्वारा अपने मन को निश्चल रखे। मन को स्थिर रखने की अवस्था में यदि यह इधर-उधर भटकने लगे और चंचल हो जाये तो योगी सावधान रहे और मन को थोड़ी देर भटकने दे, फिर अपने निःशेष प्रयास द्वारा उसे शनैः-शनैः पुनः अपने वश में लाये।

"मन को अपनी मनमानी करने के लिए बिलकुल स्वतन्त्र न छोड़े। अपने प्राण और इन्द्रियों को वश में रखे और सत्त्वगुण से सम्पन्न बुद्धि की सहायता से मन को अपने वश में लाये।

“अनुशासनहीन घोड़े को वश में करने की भाँति मन को इस प्रकार वश में करना परम योग है। सवार प्रारम्भ में लगाम को थोड़ा ढीला छोड़ देता है; किन्तु उसे हाथ से कभी जाने नहीं देता। वैसे ही योगी भी अपने मन को कुछ क्षण के लिए मनमानी भटकने देता है, उसकी गति को सावधानीपूर्वक देखता रहता है और तब शनैः-शनैः उसे अपने वश में लाता है।

"सांख्य-शास्त्र में बतलाये हुए सृष्टि और लय के क्रम के अनुसार प्रत्येक पदार्थ का सृष्टि से लयपर्यन्त चिन्तन कीजिए और फिर इस क्रम के विपरीत क्रम का चिन्तन कीजिए। इसे तब तक कीजिए, जब तक मन शान्त न हो जाये। गुरु के उपदेशों का चिन्तन करता है, तब ध्यान के इस प्रकार बारम्बार अभ्यास से उसका मन अपने कुत्सित स्वभाव का परित्याग कर देता है।

"यमादि योगमार्ग से, वस्तु तत्व का निरीक्षण करने वाली आत्म-विद्या से तथा प्रतीककोपासना से मन परमात्मा का चिन्तन करने लगता है, इनके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है।

"यदि योगी प्रमादवश कोई निन्दित काम कर बैठे तो वह योग के द्वारा ही उस पाप को जला डाले, किसी दूसरे प्रायश्चित्त उपाय से नहीं (जप, ध्यान, कीर्तन तथा ब्रह्म चिंतन से पाप भस्म हो जाते हैं)।

"अपने वर्णाश्रम के कर्मों में निष्ठा गुण कहा जाता है। इस प्रकार गुण-दोष का विधान कर, उन कर्मों पर नियन्त्रण कर दिया गया है, जो स्वभावतः अशुद्ध है, जिससे कि मनुष्य उनमें अपनी आसक्ति का परित्याग कर सके।

“जिसे मेरी लीला-कथा में श्रद्धा है, जिसे समस्त कर्मों से वैराग्य है और जो यह जानता है कि सभी कामनाएं दुःख-रूप है और इतना होने पर भी वह उनके परित्याग में समर्थ नहीं है, उसे चाहिए कि वह प्रेम, श्रद्धा और दृढ़ निश्चय से मेरा भजन करे और उन भोगों को भोगते हुए भी उन्हें दुःखजनक समझ कर उनकी निन्दा करे ।

यदि कोई पुरुष ऊपर बतलाये हुए भक्तियोग के द्वारा निरन्तर मेरा भजन करता हैं, उसके हृदय की सारी वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं; क्योंकि मैं स्वयं उसके हृदय में निवास करता हूँ।

“इस प्रकार मुझ सर्वात्मा का साक्षात्कार कर लेने पर उसकी हृदय-ग्रन्थि टूट जाती है, उसके संशय दूर हो जाते हैं और कर्म-वासनाएं नष्ट हो जाती हैं।

"जो मेरी भक्ति से युक्त है और जिसका मन मुझमें स्थित है, ऐसे योगी के लिए ज्ञान अथवा वैराग्य का अभ्यास कुछ लाभकर नहीं है।

"कर्म, तपस्या, ज्ञान, योगाभ्यास, दान, धर्म और अन्य कल्याणकारी साधनों से जो वस्तु प्राप्त होती है, वह सब मेरा भक्त मेरी भक्ति के द्वारा प्राप्त कर लेता है-यदि वह स्वर्ग, मोक्ष अथवा परम पद भी चाहे तो वह प्राप्त कर लेता है।

“अपने अनन्य प्रेमी भक्तों को यदि मैं कुछ देना भी चाहूँ तब भी वे कोई वस्तु, यहाँ तक कि कैवल्य मोक्ष भी, लेना नहीं चाहते।

"परम निःश्रेयस की प्राप्ति का साधन तो निरपेक्षता ही है। अतः जो निष्काम और निरपेक्ष है, उसको मेरी भक्ति प्राप्त होती है।

"विधि और निषेध के कर्मों से होने वाले पुण्य और पाप उन भक्तों को प्रभावित नहीं करते हैं, जो बुद्धि से अतीत मुझ परम तत्त्व के अनन्य भक्त है। वे गुण और दोष से परे हैं।

"जो मेरी प्राप्ति के इन मार्गों का, इन तीनों योगों का जिनका कि अभी मैंने उपदेश किया है, अनुसरण करते हैं, वे मेरे आनन्द-धाम को अथवा ब्रह्म-साक्षात्कार को प्राप्त कर लेते हैं।"

गुण और दोष

"जो मेरी प्राप्ति के इन तीन मार्ग—भक्ति, ज्ञान और कर्म का अनुसरण न कर क्षुद्र कामनाओं की परिपूर्ति में लगे रहते हैं, वे जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ते हैं।

“अपने वर्णाश्रम के धर्म में निष्ठा गुण है और उसके विपरीत दोष है। गुण और दोष की यही सम्यक् परिभाषा है। गुण और दोष के सम्बन्ध में यही निश्चयात्मक विचार है।

“वस्तुओं के समान होने पर भी शुद्धि-अशुद्धि, गुण-दोष और शुभ-अशुभ आदि का जो विधान है, वह धर्म, समाज-व्यवहार तथा जीवन-निर्वाह के विचार से ही किया गया है।

"जो धर्मानुसार अपने जीवन को नियन्त्रित करना चाहते हैं, उनके लिए मैंने आचार का उपदेश दिया है। हे निष्पाप उद्धव ! जो लोग धर्म का भार वहन करने वाले हैं, उन्हीं के लिए मैंने मनु आदि स्मृतिकारों के रूप में आचार-धर्म का निरूपण किया है जिससे कि वे जान सकें कि धर्म और अधर्म में क्या भेद है, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदियों के लिए कैसे कोई विशेष कर्म विहित है तथा जीवन-निर्वाह के लिए किस जीविका का आश्रय लेना चाहिए।

"ब्रह्मा से ले कर स्थावर तक सभी प्राणियों के शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश से बने हैं। उनमें आत्मा का निवास है।

"हे उद्धव ! इस भाँति यद्यपि सबके शरीर समान ही हैं, फिर भी वेदों ने इनके वर्णाश्रम आदि भिन्न-भिन्न नाम और रूप इसलिए बना दिये हैं जिससे कि प्राणी निर्धारित किये हुए नियमों के अनुसार व्यवहार करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूप अपने ध्येय को प्राप्त कर सके (इनका तात्पर्य वासनामूलक प्रवृत्तियों का नियन्त्रण करना ही है जिससे कि धर्म, अर्थ, काम आदि पुरुषार्थों को सिद्ध कर सकें) । "कर्मों को नियन्त्रित करने के लिए ही मैंने देश, काल आदि वस्तुओं के गुण-दोष का विधान किया है।

जिस देश में कृष्णसार मृग न हों और जिसमें ब्राह्मण भक्त न हो, वह देश अपवित्र है। जिस देश में कृष्णसार मृग भी भरे पड़े हों, फिर भी कीकट देश और ऊसर आदि वाले देश, यदि उनमें सन्त नहीं हैं तो अपवित्र ही हैं।

"वह समय पवित्र है, जिसमें वैदिक कर्म किये जा सकें और जिसमें कर्म करने के लिए आवश्यक सामग्री उचित रूप से प्राप्त हो सके। वह समय अशुद्ध है जिसमें सामग्री के अभाव अथवा अन्य कारणों से कर्म न हो सकें।

"कुछ पदार्थों की शुद्धि-अशुद्धि द्रव्य, वचन, संस्कार, काल, महत्त्व और अल्पत्व से भी होती है। शुद्धता और अशुद्धता शक्ति, अशक्ति, बुद्धि और वैभव के अनुसार भी होती है। इसमें स्थान और वायु का भी विचार होता है। (सरोवर में एकत्र जल दश दिन तक भी शुद्ध माना जाता है। कुछ घण्टों तक रखा हुआ भोजन अशुद्ध हो जाता है। पात्र का जल साधारण-सी बात में अपवित्र जाता है; किन्तु सरोवर का वैसा नहीं। यदि मनुष्य को अपने पुत्र के जन्म का समाचार जन्म से दश दिन के अन्दर प्राप्त होता है, तो वह अशुद्ध हो जाता है।)

"अनाज, लकड़ी, अस्थि (हाथीदाँत इत्यादि), सूत, तरल पदार्थ, सोना, चमड़ा और घड़ा इत्यादि की शुद्धि उनकी अवस्था के अनुसार समय, वायु, अग्नि, मिट्टी और जल के द्वारा—इनमें से किसी एक के द्वारा अथवा एक से अधिक वस्तुओं के संयोग के द्वारा की जाती है।

"यदि किसी पदार्थ में कोई अशुद्ध पदार्थ लग जाये तो जब किसी भाँति उसकी गन्ध और लेप जाता रहे और वह पदार्थ अपनी पूर्व-स्थिति में आ जाये, तब वह शुद्ध होता है।

"स्नान, दान, तप, आयु, सामर्थ्य, संस्कार, भगवान् के नाम का स्मरण, सन्ध्या, प्रार्थना और ध्यान से चित्त की शुद्धि होती है। इस प्रकार शुद्ध होकर द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को धार्मिक कर्म करने चाहिए।

"मन्त्र की शुद्धि गुरु से विधिवत् सीखने से होती है। मन्त्र में शक्ति, पवित्रता और प्रभाव होता है। कर्म की शुद्धि उन्हें मुझे समर्पित करने से होती है। देश, काल, पदार्थ, कर्ता, मन्त्र और कर्म-इन उपर्युक्त छह पदार्थों की शुद्धि होने से धर्म इनकी शुद्धि के अभाव से अधर्म होता है।

"शास्त्र के विधानानुसार जिनको गुण कहा जाता है, वह कभी-कभी दोष और कभी-कभी गुण हो जाते हैं। इस भांति वह विधान जो गुण और दोष की व्यवस्था करता है, उनके भेद का खण्डन करता है।

"जो लोग पतित हैं, यदि वे उसी स्थिति वाले अन्य पतितों के समान व्यवहार करें अथवा कोई दुष्कर्म करें तो उससे उनको पातक नहीं लगता। गृहस्थों के लिए पति-पत्नी का संग विहित माना गया है; क्योंकि जो नीचे की भूमि पर लेटा हुआ है, उसको और नीचे गिरने का भय नहीं रहता।

"जिन-जिन पदार्थों से मनुष्य उपरत होता है, उन उन पदार्थों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। मनुष्यों के लिए यही धर्म है जो उनका कल्याण करता है और उनके शोक, मोह और भय को दूर करता है।

"विषयों में भूल से गुण का आरोप करने से मनुष्य उनमें आसक्त हो जाता है। आसक्ति होने से उस वस्तु को अपने पास रखने की कामना हो जाती है और कामना से लोगों में परस्पर कलह होता है।

" कलह से उग्र क्रोध और क्रोध से अज्ञान उत्पन्न होता है। अज्ञान उसकी उचित - अनुचित की विवेक शक्ति को नष्ट कर डालता है।

"हे साधो ! जब विवेक-शक्ति तमसाच्छन्न हो जाती है, तब मनुष्य शून्य-सा हो जाता है। मूर्च्छित या मृत मनुष्य की भाँति हो जाने से वह अपने जीवन के लक्ष्य से च्युत हो जाता है।

"वह विषयों से अत्यन्त आसक्त हो जाता है और न तो अपने को जानता है और न परमात्मा को ही। उसका जीवन व्यर्थ ही है। उसका बढ़ना वृक्ष के समान और श्वास लेना लुहार की धौंकनी के समान है।

"यज्ञ करने वाले को स्वर्ग प्राप्त होता है— इस प्रकार की श्रुतियाँ केवल कर्म-फल का ही वर्णन करती हैं और परम पुरुषार्थ को नहीं बतलाती हैं। वे मोक्ष-पक्ष का निर्देश नहीं करतीं। वे तो प्रलोभित करने के लिए हैं। उनका वास्तविक तात्पर्य तो मोक्ष की प्राप्ति ही है। ये वैसे ही शब्द हैं जैसे कि बच्चों को दवा पीने के लिए फुसलाते हुए कहा जाता है। पिता कहता है, 'कड़वी दवा पी, तो मैं तुम्हें मिश्री की डली दूँगा।" बच्चा दवा पी लेता है, किन्तु जो-कुछ वह पाता है, वह मिश्री नहीं है। वह तो उससे अपनी बीमारी से स्वास्थ्य लाभ करता है। इसी भाँति ये

प्रलोभन मनुष्य में मोक्ष- प्राप्ति के लिए रुचि उत्पन्न करते हैं। प्रलोभन देने वाली ये आशाएँ मनुष्य को मोक्ष-पथ की ओर ले जाती हैं।

"मनुष्य जन्म से ही विषय-भोगों में, प्राणों में, पद अथवा अधिकार में और सम्बन्धियों में आसक्त रहता है; किन्तु ये तो दुःख और बन्धन के कारण ही है?

"भला वेद उन लोगों को विषय-भोगों में और अधिक क्यों प्रवृत्त करेगा, जो अपने जीवन के ध्येय को नहीं जानते और वेद-कर्मकाण्ड को सत्य मान कर दुःखपूर्ण मार्ग में भटक रहे हैं तथा घोर अन्धकार में पड़े हुए है? वेद उन लोगों को ऐसी वस्तु में आसक्त होने की क्यों शिक्षा देगा? कुछ अज्ञानी व्यक्ति ही वेद के अभिप्राय को न समझ कर ऐसा कहते हैं। वे वेद के कर्मकाण्ड में दिये हुए पुष्प के समान कर्म-फल की ही चर्चा करते हैं। किन्तु वेद के मर्मज्ञ कर्म-फल की चर्चा नहीं करते। (यह विचार गलत है कि वेद स्वर्ग अथवा नाशवान् भोगों की प्राप्ति के साधन बतलाते हैं। वेदों का वास्तविक अभिप्राय तो परम पुरुषार्थ के पथ की शिक्षा देना है।)

“जिनका मन कामनाओं से भरा हुआ है, जो नीच और लोभी हैं, जो पुरुष को ही फूल मान बैठते हैं अर्थात् जो असत् पदार्थ को सत् मान बैठते हैं, वे अग्नि द्वारा होने वाले यज्ञों में ही विमोहित रहते हैं जो कि उन्हें पितृयान अथवा धूम्रयान को प्राप्त कराते हैं। वे स्वर्ग में कुछ काल रह कर वहाँ के भोगों को भोगने के अनन्तर पुनः इस भूलोक में जन्म ग्रहण करते हैं। उन्हें कभी भी आत्म-तत्त्व का ज्ञान नहीं होता।

“हे प्यारे उद्धव ! यद्यपि मैं उनके हृदय में ही हूँ, यद्यपि मैं इस जगत् का मूल कारण हूँ, फिर भी वे मुझे नहीं जानते; क्योंकि वे यज्ञ-कर्मों के विषय में ही बात करते हैं और अपनी इन्द्रियों की तृप्ति की ही खोज करते हैं। वे उन मनुष्यों के समान हैं जिनकी आँखें कुहरे से धुंधली हो गयी हैं।

“यदि किसी को हिंसा से राग हो, तो वह उसे यज्ञ में ही करे। वह इसे केवल यज्ञ में ही परिपुष्ट करे। यह कोई ऐसा नियम नहीं है जो किसी को हिंसा के लिए बाध्य करे। ये दुष्ट लोग, जो केवल अपनी इन्द्रियों को ही परितुष्ट करना चाहते हैं, मेरे अभिप्राय को नहीं समझते हैं। वे अपने सुख के लिए पशुओं की हत्या करने में आनन्द अनुभव करते हैं और यज्ञ में प्राणियों की हिंसा द्वारा देवता, पितर और भूतों की पूजा करते हैं।

“स्वर्गादि लोक स्वप्न के समान ही असत् हैं, वे केवल कानों को ही सुखद हैं। वे लोग इनको सत्य समझ कर वहाँ के भोगों के लिए लालायित होते हैं और उनकी आशा में वे यज्ञों में अपने धन को वैसे ही नष्ट करते हैं जैसे कि अधिक लाभ की आशा में व्यापारी अपने धन को नष्ट कर बैठता है।

"जो लोग रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुण में स्थित हैं, वे रजोगुणी, सत्त्वगुणी और तमोगुणी इन्द्रादि देवताओं की ही उपासना करते हैं, वे मेरी पूजा नहीं करते हैं।

"वे सोचते हैं कि 'हम लोग इस लोक में यज्ञों द्वारा देवताओं की उपासना. करके स्वर्ग जायेंगे और वहाँ आनन्द लूटेंगे और आनन्द-भोग की अवधि समाप्त होने पर हम यहाँ पुनः कुलीन परिवार में जन्म ले कर सम्पत्ति प्राप्त करेंगे।

"शास्त्रों की इस प्रकार की पुष्पित वाणी से जिनका चित्त आकर्षित हो जाता है, ऐसे अभिमानी व्यक्तियों को मेरे विषय की चर्चा भी अच्छी नहीं लगती।

"वेदों के तीनों काण्ड वास्तव में जीव और ब्रह्म की एकता का ही प्रतिपादन करते हैं। उनका अभिप्राय जीवात्मा की परमात्मा से अभिन्नता का बोध कराना ही है। मन्त्रों के अर्थ परोक्ष हैं। उनके कहने का वास्तविक भाव वह नहीं होता, जो कि ऊपर से साधारणतया प्रतीत होता है।

“मैं भी इस परोक्ष रूप से कथन करने को पसन्द करता हूँ। (क्योंकि वे भी धार्मिक और पवित्र जन जो वास्तविक अभिप्राय को समझते हैं, कर्म का परित्याग करेंगे। यदि यह स्पष्ट रूप से कहा जाये तो वेदान्त का अधिकारी बनने से पूर्व ही सभी लोग कर्म का परित्याग कर देंगे।)

“शब्द-ब्रह्म अर्थात् वेदों का रहस्य समझना अत्यन्त कठिन है। यह प्राण, मन और इन्द्रियमय है। यह बहुत ही सूक्ष्म, अतीत और गहरा है। समुद्र के समान ही इसकी थाह नहीं लगायी जा सकती।

“शब्द अथवा वाणी के सूक्ष्म और स्थूल रूप होते हैं। परा, पश्यन्ती और मध्यमा सूक्ष्म रूप हैं। वे समुद्र के समान ही गहरे और अगाध हैं। वेदों में केवल वैखरी व्यक्त है। यह प्रणव से उत्पन्न है और व्यंजन तथा मात्राओं के द्वारा प्रकट होती है। परा प्राणों में, पश्यन्ती मन में और मध्यमा इन्द्रियों में व्यक्त होती है। कण्ठ से ध्वनि निकालने की अवस्था को ही वैखरी कहते हैं। वैखरी ध्वनि के रूप में व्यक्त होती है।

“मैं पूर्ण अविनाशी तथा अनन्त शक्तिसम्पन्न ब्रह्म हूँ। यह शब्द-ब्रह्म वेद मेरी सत्ता से परिपूर्ण है। योगी जन अपनी अन्तर्दृष्टि से मुझे ॐ के रूप में उसी प्रकार सभी प्राणियों में अनुस्यूत देखते हैं जिस तरह कमल-नाल में पतला-सा सूत्र होता है।

"जिस प्रकार मकड़ी अपने हृदय से मुख द्वारा जाला उगलती है, उसी प्रकार भगवान् हिरण्यगर्भ भी, जो कि स्वयं वेद-मूर्ति हैं, अपने मन रूपी वेद के द्वारा अनन्त मार्गों वाली वैखरी वाणी को प्रकट करते हैं। यह ओंकार के द्वारा अभिव्यक्त स्पर्श, ऊष्मा और अन्तःस्थ वर्णों से विभूषित है। उसमें ऐसे शब्द हैं, जिनमें उत्तरोत्तर चार-चार वर्ण बढ़ते जाते हैं और उनके द्वारा विचित्र भाषा के रूप में वह विस्तृत हुई है।

"उनमें से कुछ छन्दों के नाम ये हैं: गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् जगती, अतिच्छन्द, अत्यष्टि, अतिजगती और विराट्।

"वेदों ने क्या विधान किया है, वे किसका वर्णन करते हैं और किसकी विवेचना करते हैं, इस रहस्य को मेरे अतिरिक्त इस संसार में अन्य कोई नहीं जानता है।

“वेदों ने मेरी उपासना का ही विधान किया है। वे मेरा ही वर्णन करते हैं। मेरा वर्णन विविध रूपों में किया गया है। उनमें जिनका निषेध किया गया है, वह भी मैं ही हूँ। वेद, जो कि मुझे अपना अधिष्ठान मानते हैं, द्वैत और भेद को मायाजन्य भ्रान्ति मात्र बतलाते हैं। अन्त में वे सभी वेदों का निषेध कर स्वयं शान्त हो जाते हैं।"

तत्त्व

उद्भव जी ने कहा : "हे विश्वेश्वर! ऋषियों ने तत्त्वों की संख्या कितनी बतलायी है? आपने तो नौ, ग्यारह, पाँच और तीन अर्थात् कुल अट्ठाईस तत्त्व बतलाये हैं। उसे मैं सुन चुका हूँ।

“ऋषि इन संख्याओं को भिन्न-भिन्न बतलाते हैं। कोई इन्हें छब्बीस, कोई पचीस, कोई सात, कोई नौ अथवा छह, कोई चार, कोई ग्यारह] कोई सतरह, कोई सोलह और कोई तेरह ही बतलाते हैं।

"हे अविनाशिन् ! कृपा करके आप यह बतलायें कि ऋषियों ने भिन्न-भिन्न संख्याएँ किस अभिप्राय से बतलायी हैं?"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : “प्रत्येक संख्या, जो तत्त्वज्ञानी पण्डित जन बतलाते हैं, उनके अपने विचार से ठीक ही हैं। मेरी माया को स्वीकार कर कोई एक सिद्धान्त स्थिर करना सम्भव नहीं है ? (संख्या के विषय में वाद-विवाद करना व्यर्थ है। तत्त्वों का एक-दूसरे में अनुप्रवेश है, इसीलिए उनका क्रम और उनकी संख्या भिन्न-भिन्न मानी गयी है। यह संसार भ्रान्ति मात्र है, अतः इस जगत् के विषय में कोई कैसा भी विचार रख सकता है। मृग मरीचिका मिथ्या ही है। मृग मरीचिका के जल की गहराई के विषय में चर्चा करना अथवा मृग मरीचिका के जल से कितनी भूमि गीली है, आदि की चर्चा करना व्यर्थ ही है।)

"यदि आचार्य लोग एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझें तो विवाद की कोई आवश्यकता ही न रहे; किन्तु यदि वे अहंकारी हैं और यदि उनकी बुद्धि मेरी माया- शक्ति से विमोहित हो रही है, तो निश्चय ही विवाद होगा। 'जैसा तुम कहते हो, वह ठीक नहीं है। मैं जो कहता हूँ, वही यथार्थ है - इस प्रकार जगत् के कारण के सम्बन्ध में विवाद मेरी शक्तियों सत्त्व, रज और तम के कारण ही होता है। इनसे छुटकारा पाना बहुत ही कठिन है।

"इन गुणों अथवा तत्त्वों के विभिन्न सम्मिश्रण से विवाद का विषय अर्थात विभिन्न सिद्धान्त उठ खड़े होते हैं। जब शम-दम की प्राप्ति से व्यक्ति के मन और इन्द्रियाँ भी शान्त हो जाती हैं, तब भेद नहीं दिखायी पड़ता और उसके साथ ही ये विवाद भी मिट जाते हैं।

" तत्त्वों का एक-दूसरे में अनुप्रवेश है; अतः वक्ता के दृष्टिकोण से कार्य-कारण को ध्यान में रख कर ही उनकी गणना होती है। एक तत्त्व में, चाहे वह कारण हो अथवा कार्य, अन्य तत्त्वों का भी समावेश होता है (घट, पट, भूषण आदि कार्य वस्तुओं का उनके कारण मिट्टी, सूत, स्वर्ण आदि कारण वस्तुओं में अन्तर्भाव रहता है और इनका पुनः कार्य वस्तुओं में अन्तर्भाव रहता है) ।

"अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार कुछ लोगों ने एक ही कार्य में उन कई कारणों को अन्तर्भूत कर लिया है, जिनको कि दूसरे लोग अलग-अलग कारण मानते हैं। कार्य से कारण का पता लगाते समय अथवा कार्य-कारण का विचार करते समय प्रत्येक आचार्य की युक्ति के अनुसार उनकी संख्या निर्धारित की जा सकती है। अथवा उनमें फेर-फार किया जा सकता है।

"किसी कार्य को किसी कारण में और किसी कारण को किसी कार्य में अन्तर्भाव के विषय में तथा तत्त्वों की संख्या आदि के विषय में आचार्यों की तर्क-शक्ति के अनुसार भेद हैं; किन्तु ये सभी प्रतिपादन युक्ति-संगत होने के कारण माननीय हैं।

"मनुष्य अनादि काल से अविद्या से ग्रस्त है। वह बिना किसी गुरु की सहायता के स्वयं आत्म-साक्षात्कार नहीं प्राप्त कर सकता है। यह आत्म-ज्ञान गुरु की केवल सर्वज्ञ गुरु ही दे सकता है। ऐसा सर्वज्ञ परमात्मा ही हो सकता है, जो कि जीव से भिन्न है, इसीलिए कुछ लोग छब्बीस तत्त्व स्वीकार करते हैं।

"कुछ लोग केवल पचीस तत्त्व ही मानते हैं। जीव और ब्रह्म में अणुमात्र भी अन्तर नहीं है, अतः उन्हें दो अलग-अलग तत्त्व मानना ठीक नहीं है। ज्ञान तो प्रकृति का गुण है।

"प्रकृति गुणों की साम्यावस्था है; अतः गुण प्रकृति के ही हैं, आत्मा के नहीं। सत्त्व, रज और तम ये ही गुण हैं, जिनसे जगत् की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय हुआ करते हैं।

"ज्ञान सतोगुण का, कर्म रजोगुण का और अज्ञान तमोगुण का परिणाम है। गुणों में क्षोभ उत्पन्न करने वाला ईश्वर ही काल है और सूत्र अथवा महत्तत्त्व ही स्वभाव है।

"पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व (व्यक्त), अहंकार, आकाश, वायु, तेज जल और पृथ्वी-ये भी नौ तत्त्व हैं जिनको मैं पहले गिना चुका हूँ।

"श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, नासिका और रसना —ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। हे प्रिय उद्धव ! मन कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय – दोनों ही है। अतः मन-सहित कुल ग्यारह तत्त्व हैं।

"शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय हैं। चलना, बोलना, काम करना, मल त्याग करना और पेशाब करना-ये कर्मेन्द्रियों के पाँच कर्म हैं।

"सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकृति ही कार्य और कारण के रूप में रहती है। वही सत्त्वादि गुणों की सहायता से इन रूपों को धारण करती है। उसमें ही इस प्रकार की अवस्थाएँ घटित होती हैं। अव्यक्त पुरुष सदा अव्यय ही बना रहता है। वह प्रकृति के कार्यों का केवल साक्षी मात्र बना रहता है।

"महत्तत्व तथा दूसरे तत्त्व पुरुष के ईक्षण से शक्ति प्राप्त करते हैं, प्रकृति का आश्रय ले कर परस्पर मिल जाते हैं और इस भाँति ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं। सृष्टि की प्रत्येक अवस्था में पुरुष की सत्ता उन्हें सृष्टि-कार्य के लिए प्रेरित करती रहती है।

"कुछ लोग तत्त्वों की संख्या केवल सात ही स्वीकार करते हैं। वे हैं आकाशादि पाँच भूत, जीव और परमात्मा । परमात्मा को ही द्रष्टा और दृश्य,विषय और विषयी —दोनों का अधिष्ठान मानते हैं। इन सातों से ही देह, इन्द्रिय और प्राणादि की उत्पत्ति हुई है।

"कुछ दूसरे लोगों के विचार में छह ही तत्त्व है : पाँच भूत और परम पुरुष परमात्मा ने ही यह शरीर, जगत् और सभी वस्तुओं की सृष्टि कर उनमें प्रवेश किया है।

"जहाँ चार तत्त्वों का उल्लेख है, उनमें आत्मा और तीन मुख्य भूत-पृथ्वी, जल और तेज का ही समावेश है। ये तीन भूत ही विभिन्न शरीरों में आत्मा की आवृत कर रखते हैं। इन्हीं चारों से जगत् की उत्पत्ति हुई है।

"जहाँ तत्त्वों की संख्या सतरह बतलायी है, उनमें पाँच भूत, पाँच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा आत्मा का समावेश है। जहाँ सोलह संख्या दी हुई है, वहाँ आत्मा में ही मन को गिना गया है। जो तत्त्वों की संख्या तेरह बतलाते हैं, उनके अनुसार पाँच भूत,पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक मन, एक जीवात्मा और एक परमात्मा- ये तेरह हैं।

"जहाँ ग्यारह संख्या दी गयी है, उसमें आत्मा, पाँच भूत और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ही ली गयी हैं। नौ तत्त्व मानने वाले आठ प्रकृतियाँ- मन, बुद्धि, अहंकार तथा पाँच भूत और पुरुष — इन्हीं को तत्त्व मानते हैं।

“इस प्रकार ऋषियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से तत्त्वों की गणना की है। सबका कथन ठीक ही है; क्योंकि वे सभी युक्तिसंगत हैं। क्या विद्वानों के कथन में कोई दोष हो सकता है?"

प्रकृति तथा पुरुष

उद्धव जी ने कहा : “कृष्ण! यद्यपि स्वरूपतः प्रकृति और पुरुष दोनों एक- दूसरे से भिन्न हैं, तथापि उनका भेद साधारणतः नहीं जान पड़ता है, क्योंकि वे कभी भी अलग-अलग नहीं मिलते हैं। प्रकृति में पुरुष और पुरुष में प्रकृति प्रतीत होती है।

“हे पुण्डरीकाक्ष! हे सर्वज्ञ प्रभो! आप कृपा करके अपनी युक्तियुक्त वाणी से मेरे मन का सन्देह निवारण कीजिए। आपकी कृपा से ही लोगों को ज्ञान प्राप्त होता है और आपकी ही माया-शक्ति से उनके ज्ञान का नाश हो जाता है। आप ही अपनी माया की गति को जानते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा: "हे पुरुषश्रेष्ठ! प्रकृति और पुरुष वास्तव में भिन्न है। वे दोनों सर्वथा भिन्न तत्त्व हैं। प्रकृति जड़ एवं परिवर्तनशील है। पुरुष चेतन और अपरिवर्तनशील है। यह शरीर तीन गुणों के क्षोभ से ही बना है। यह जगत् भी तीन गुणों से ही बना हुआ है। तीन गुणों के संघात से इस विश्व का निर्माण हुआ है; अतः यह परिणामी है।

"हे प्रिय उद्भव ! मेरी त्रिगुणात्मिका माया इन तीनों गुणों के द्वारा अपने विकार और भेद-वृत्तियाँ उत्पन्न कर देती है। विकारात्मक सृष्टि के तीन भाग है-अध्यात्म, अधिदेव और अधिभूत।

नेत्रेन्द्रिय अध्यात्म है, रूप अधिभूत है, नेत्र में स्थित सूर्य देवता का अंश अधिदैव है। ये तीनों परस्पर एक-दूसरे के आश्रित है; किन्तु आकाश में स्थित सूर्य इनसे मुक्त है।

"इस भाँति अधिभूत आदि इन तीनों का कारण आत्मा भी इनसे परे है। वही अपनी स्वयं ज्योति से सभी प्रकाशों को प्रकाश प्रदान करता है। इसी भाँति त्वचा, श्रोत्र, रसना, नासिका और चित्त के भी तीन-तीन भेद जानने चाहिए। त्वचा, स्पर्श और वायु; श्रोत्र, शब्द और दिशा; जिह्वा, रस और वरुण; नासिका, गन्ध और अश्विनीकुमार; मन, संकल्प और चन्द्रमा; बुद्धि, विवेक और ब्रह्मा; चित्त, स्मृति और वासुदेव; अहंकार, अभ्यास और रुद्र – इन त्रिविधों का परस्पर सम्बन्ध जान चाहिए।

"प्रकृति से महत्तत्त्व बनता है और महत्तत्त्व से अहंकार बनता है। इस भाँति यह अहंकार गुणों के क्षोभ से उत्पन्न हुआ प्रकृति का ही विकार है। इसके तीन भेद है—वैकारिक, तामस और ऐन्द्रिय (सात्त्विक, तामस और राजस)। यह अहंकार ही अज्ञान के रूप में मोह और भ्रम का कारण है। (सात्त्विक अधिदैव है, तामसिक अधिभूत है और राजसिक अध्यात्म है।)

“आत्मा है या नहीं, इसका विवाद तथा विचारधाराओं के भेद के कारण उत्पन्न विवाद केवल आत्म-साक्षात्कार न करने के कारण ही होते हैं। इस भाँति यद्यपि यह सब विवाद निष्प्रयोजन ही है; किन्तु जो अपने वास्तविक स्वरूप से विमुख हैं, वे इस विवाद से मुक्त नहीं हो सकते।"

पुनर्जन्म

उद्धव ने कहा : "हे प्रभो! आपसे विमुख प्राणी अपने कर्मों के द्वारा कैसे ऊँचे-नीचे लोकों में आते-जाते रहते हैं? स्थूल बुद्धि वाले प्राणियों की समझ में यह बात तो आ ही नहीं सकती। वास्तव में इस संसार में ऐसे लोग है ही नहीं जो इस को जानते हों; क्योंकि सभी आपकी माया से मोहित हो रहे हैं।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा "मनुष्यों का मन कर्म संस्कारों का संस्कारों के अनुसार पाँच इन्द्रियों के साथ एक शरीर से दूसरे शरीर में एक लोक से दूसरे लोक में आता जाता रहता है। आत्मा इससे पृथक् है, फिर भी अहंकार के वश में हो कर यह मन का अनुसरण करता है।

"मृत्यु के अनन्तर मन ऐसे देखे या सुन हुए विषय का चिन्तन करता है, जिन्हें मनुष्य का कर्म उसके सामने रखता है। यह जिस विषय का चिन्तन करता है उसी में तदाकार हो जाता है और पूर्व चिन्तन विषयों की चेतना नहीं रखता। इसके परिणामस्वरूप पूर्वापर अनुसन्धान करने वाली स्मृति नष्ट हो जाती है। नये शरीर का स्मरण रह जाता है और पुराना भूल जाता है।

"जब जीव अपने वर्तमान शरीर में प्रगाढ़ आसक्ति के कारण अथवा किसी कारणवश अपने पूर्व शरीर को पूर्णतः भूल जाता है, शरीर का यह सर्वथा भूल- जाना ही मृत्यु है। मृत्यु के अनन्तर मनुष्य को देव-शरीर अथवा निम्न योनियों का शरीर, जिससे वह दण्ड भोगता है, प्राप्त होता है। देवयोनि में अधिक सुखोपभोग के कारण और पशु आदि योनियों में असह्य कष्ट के कारण वह अपने पूर्व- शरीर को सर्वधा भूल जाता है। शरीर का विनाश मृत्यु नहीं है; वरन् जीव का अपने पूर्व- शरीर में अध्यास ही मृत्यु है। जीव अपने नये शरीर में लीन हो जाता है और अपने पूर्व-शरीर को सर्वथा भूल जाता है। पूर्व शरीर से उसके मन का सम्बन्ध पूर्णतया कट जाता है। पहले शरीर के विचार से यही उसकी मृत्यु है ।

"जीव जब किसी नये शरीर को अभेद-भाव से 'मैं' के रूप में स्वीकार कर लेता है, तब उसे ही जन्म कहते हैं। यह स्वप्न अथवा मनोरथ के समान ही है।

"स्वप्न अथवा मनोरथ-काल में मनुष्य स्वप्न शरीर को ही सत्य मान बैठा है, उसी तरह मृत्यु के उपरान्त जीव नये शरीर के साथ आसक्त हो कर उस शरीर में पुनर्जन्म ग्रहण करता है। पूर्व--जन्म के तथा अपने सम्बन्ध की याद नहीं रहती; क्योंकि मृत्यु तथा नये शरीर ने स्मृति को तोड़ दिया है। वह स्वयं को नया मनुष्य मानता है. परन्तु वास्तव में वह नवीन नहीं है।

"उत्तम, मध्यम और अधम, इस प्रकार तीन भेद आत्मवस्तु में इन्द्रियों के आश्रय मन से ही भासता है। उनमें अभिमान करने से आत्मा बाहय और आभ्यान्तर भेदों का हेतु विदित होने लगता है जैसे दुष्ट पुत्र को उत्पन्न करने वाला पिता पुत्र के शत्रु-मित्र आदि के लिए भेद का हेतु हो जाता है। प्यारे उद्धव ! प्रति क्षण ही जीवों की उत्पत्ति और विनाश होता रहता है; परन्तु काल की गति सूक्ष्म और तीव्र होने के कारण ही यह दीख नहीं

पड़ता। जैसे काल के प्रभाव से दीप शिखा, जल-प्रवाह अथवा वृक्ष के फलों की अवस्थाएँ निरन्तर अविच्छिन्न रूप से बदलती रहती हैं वैसे ही प्राणियों की आयु आदि भी निरन्तर बदलती रहती हैं।

"जैसे ज्योतियों के विषय में यह समझना और कहना कि यह वही दीपक है और प्रवाह के विषय में यह कहना और समझना कि यह वही जल है, मिथ्या है, वैसे ही यह कहना और समझना कि यह वही आदमी है, मिथ्या है, जैसा कि बहुत से व्यर्थ जीवन व्यतीत करने वाले लोग अपने मन में सोचते और कहते रहते हैं। दीप-शिखा और जल निरन्तर बदलते रहते हैं। दीप-शिखा प्रति-पल पहले से भिन्न होती है, जल का प्रवाह किसी एक स्थान पर प्रति-क्षण दूसरा जल लाता रहता है। अज्ञानी मनुष्य यह विश्वास करता है कि एक ही शरीर जारी रहता है; अतः उसकी समझ और बातें भ्रामक हैं।

"वह भ्रान्त मनुष्य तो अपने कर्मों के बीज द्वारा न तो जन्मता है और न मरता ही है। वह अमर है। आत्मा के प्रति जन्म और मृत्यु का विचार ही भ्रम है । भ्रान्ति के कारण अजन्मा उत्पन्न होता-सा और अमर मरता-सा प्रतीत होता है, जैसे काष्ठ में अग्नि। यद्यपि अग्नि कल्पान्त तक बनी रहती है, फिर भी वह पैदा होती और नष्ट होती-सी दिखायी देती है। गर्भाधान, गर्भवृद्धि, जन्म, बाल्यावस्था, कौमार्य, युवावस्था, अधेड़ावस्था, वृद्धावस्था और मृत्यु —ये नौ अवस्थाएँ शरीर की हैं।

“शरीर के सम्बन्ध में इन काल्पनिक ऊँची-नीची अवस्थाओं को गुणों के संग से कुछ लोग अपनी मान लेते हैं और कुछ लोग परमात्मा की कृपा अथवा विवेक प्राप्त होने से उनका परित्याग कर देते हैं।

“पिता को पुत्र के जन्म से और पुत्र को पिता की मृत्यु से अपने जन्म-मरण का अनुमान कर लेना चाहिए। इनका द्रष्टा आत्मा, जो यह जानता है कि जन्म और मृत्यु शरीर के हैं, न तो जन्म से और मृत्यु से ही प्रभावित होता है।

"जो वृक्ष को बीज से उगते हुए और नाश होते हुए देखता है, वह वृक्ष से पृथक् है। वैसे ही शरीर का द्रष्टा अथवा साक्षी भी शरीर से सर्वथा पृथक् है।

"अविवेकी पुरुष ही जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसता है। अज्ञानी पुरुष इस भाँति आत्मा को प्रकृति (शरीर) से पृथक् नहीं देखते और दोनों को एक ही मानते हैं। वे विषय-भोगों में मोहित हो जाते हैं और अपने लिए जन्म-मृत्यु का अनन्त श्रृंखला का निर्माण करते हैं।

"मनुष्य सात्त्विक कर्मों की आसक्ति से ऋषि या देवता, राजसिक कर्मों की आसक्ति से असुर या मनुष्य तथा तामसी कर्मों की आसक्ति से भूत-प्रेत या पशु-पक्षी बनता है।

"जैसे मनुष्य गीत और नृत्य को देख कर स्वयं उसका अपने मन में करने लगता है, वैसे ही जीव बुद्धि के गुणों को देख कर उनका अनुकरण करने लगता है।

"जैसे हिलते हुए जल में प्रतिबिम्बित वृक्ष भी हिलते मालूम होते हैं, जैसे घुमाये जाने वाले नेत्र के साथ पृथ्वी भी घूमती हुई दिखायी पड़ती है, वैसे ही हे उद्धव ! आत्मा का विषयानुभव-रूप संसार मिथ्या ही है।

"जन्म और मृत्यु स्वप्न के समान ही असत्य है; परन्तु जैसे स्वप्न के पदार्थों का स्वप्न में अस्तित्व है, वैसे ही उनका भी अस्तित्व है। यद्यपि विषय असत्य है, फिर भी उन लोगों का संसार-चक्र कभी निवृत्त नहीं होता, जो सदा विषयों का ही चिन्तन करते रहते हैं—जैसे स्वप्न में प्राप्त बुरे अनुभव जागे बिना दूर नहीं होते।

"अतः हे उद्धव ! इन बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा विषयों को न भोगो। अपने मन को कभी भी कामनाओं से कलुषित न करो और न इसे इन्द्रिय-मार्ग से बाहर भटकने दो। ऐसा समझ लो कि यह नानात्व का भ्रम अज्ञान तथा आत्म-साक्षात्कार न प्राप्त होने के कारण ही है।

“दूसरे लोग जो कुछ भी तुम्हारे प्रति कहें अथवा करें, उसकी कुछ भी परवाह न कर एकाग्र भक्ति, धैर्य, विवेक, विचार तथा ध्यान के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करो।

"असाधु पुरुष तुमसे चाहे जो कुछ भी करें, यदि वे मारें-पीटें, अपमान करें, उपहास करें, निन्दा करें, बाँधे, आजीविका छीन लें, ऊपर थूकें, तुम्हें शारीरिक कष्ट पहुँचायें, तपस्या से विचलित करने के लिए मल-मूत्र फेंकें, यदि वे अज्ञानी लोग तुम्हें भाँति-भाँति के कष्ट दें अथवा कठिनाइयों में डालें तो भी स्मरण रखो कि तुम अमर आत्मा हो और यदि तुम अपने चित्त को शुद्ध रखोगे और यह अनुभव करोगे कि तुम अमर आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं हो, तो तुम्हें कुछ भी प्रभावित अथवा कलुषित नहीं कर सकेगा।"

सहनशीलता

(एक तितिक्षु का गीत अवन्ती के ब्राह्मण का इतिहास)

उद्भव जी ने कहा "दुर्जनों द्वारा किये गये तिरस्कार की उपेक्षा करना अथवा सहन करना और मन को शान्त रखना बहुत ही कठिन है। जो आपके भक्त है, जिन्हें आपकी कृपा में दृढ विश्वास है, जिन्होंने आपके चरण कमलों का आश्रय ग्रहण कर लिया है, जो आपके उपदिष्ट भागवत-धर्म के आचरण में संलग्न हैं, जो शान्त-चित्त है, उन पुरुषों के अतिरिक्त महान् पण्डित भी प्रकृति की कमजोरियों अथवा आपकी बलवती माया पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता है प्रभु मानव स्वभाव फिर भी स्वभाव ही है। यह मनुष्य के लिए बहुत ही बलवान् है। वक्ताओं में शिरोमणि! हे जगदीश्वर! अन्तर्यामी! कृपा करके उस मन की शान्ति की प्राप्ति के उपाय बतलाइए जिससे साधारण मनुष्य भी दुष्टों के तिरस्कार और उपहास की उपेक्षा कर सके। कृपा करके इस भाँति हमें उपदेश दीजिए जिससे कि हम उसे धारण कर सकें।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा "हे बृहस्पति के शिष्य उद्धव जी इस संसार में ऐसे पुरुष नहीं है जो दर्जनों की कटु वाणी से बिद्ध होने पर अपने मन को संभाल सके।

"मर्मस्थलों पर निशाना लगा कर छोड़े गये तीक्ष्ण बाण भी मनुष्य को उतनी पीड़ा नहीं पहुँचाते, जितनी पीड़ा उसे दुष्टों के कटु और कठोर बचनों से पहुँचती है जो कि हृदय को सदैव बींधते रहते हैं।

उद्धव जी! मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाऊँगा तुम मन लगा कर सुनो। इसे एक भिक्षुक ने गाया था। उसको दुष्टों ने बहुत सताया; परन्तु उसने धैर्य तथा सहनशीलता से सब कुछ सहन कर लिया और यह सोचा कि यह सब उसके पूर्वजन्मों के कर्मों का फल है।

"अवन्ती में एक धनी ब्राह्मण रहता था परन्तु वह अत्यन्त दुःखी जीवन व्यतीत करता था। उसने सांसारिक नीच कर्मों के द्वारा धन उपार्जन किया। उसने व्यवसाय किया। वह बहुत ही कृपण, लोभी और क्रोधी था। वह दान में कुछ भी व्यय नहीं करता था। वह अपने सगे-सम्बन्धियों का मधुर वाणी से स्वागत भी नहीं करता था। वह अपने, अपने स्त्री-पुत्र तथा दास दासी इत्यादि के सुख का भी ध्यान नहीं - रखता था। वह मनुष्य रूप में लोहे की तिजोरी था जिसमें धन सुरक्षित रखा जा सके। उसके घर में धर्म-कर्म का नाम भी न था।

"उसकी कृपणता तथा दुष्ट स्वभाव के कारण उसके पुत्र तथा सम्बन्धी उसे नहीं चाहते थे। उसकी स्त्री, लड़की और नौकर उससे इतने दुःखी हो गये थे कोई भी उसके इच्छानुसार कार्य नहीं करता था। वह केवल धन-संग्रह करने में आनन्द मानता था। वह धर्महीन था। उसने कभी भी जीवन का सुख अनुभव नहीं किया । इस भाँति उसने लोक-परलोक दोनों ही खो दिये। पाँच महायज्ञों के भागी देवता गण भी बहुत नाराज हो गये।

''हे उदार उद्धव! पाँच महायज्ञों के भागियों के तिरस्कार के कारण उसके पुण्य का भण्डार समाप्त हो गया। जिस धन को उसने बड़े कष्ट और परिश्रम से एकत्र किया था, वह भी नष्ट हो गया।

"उद्धव जी उसके कुछ धन को उसके सम्बन्धियों ने छीन लिया। कुछ चोरों के हाथ लगा। कुछ दुर्घटना आदि देवी प्रकोप से नष्ट हो गया। कुछ काल की कारण नाश हुआ। कुछ को अन्य लोगों ने तथा राजा ने ले लिया। जब उसकी सम्पति जाती रही तो सम्बन्धियों ने भी उसका साथ छोड़ दिया। उसका धन न तो कभी धर्म-कार्य में ही लगा और न उसने उससे भोग ही भोगे। इस विचार से उसके हृदय को बहुत आघात पहुँचा।

“अपनी दयनीय दशा का चिन्तन करके उसे अश्रुपात होने लगा और उसका गला रूंध गया। उसको संसार के प्रति महान् दुःख हुआ। उसे सांसारिक वैभव और भोगों के प्रति तीव्र वैराग्य हो गया।

"वह अपने मन में कहने लगा मुझे बहुत ही कटु अनुभव हो रहा है। मुझे धिक्कार है। मैं इसी योग्य हूँ। धन को एकत्र करने में मैंने अपने शरीर को इतना कष्ट पहुँचाया है। इस धन को मैंने न तो धर्म-कर्म में लगाया और न ही इससे कामनाओं की पूर्ति ही की न तो मैंने पुण्य का ही अर्जन किया और न सुखोपभोग ही किये।

"प्रायः कृपण को अपने धन से कभी भी सुख नहीं मिलता है। यह इस संसार में उसके दुःख का कारण बनता है और मरने पर उसे नरक की ओर ले जाता है और उसकी आत्मा को क्षति पहुँचाता है।

"तनिक-सा भी लोभ यशस्वी पुरुषों की धवल कीर्ति और गुणियों के श्रेष्ठ गुण को वैसे ही नष्ट कर डालता है जैसे कि थोड़ा-सा सफेद दाग सारे सौन्दर्य का हरण कर लेता है।

"धन के अर्जन में, अर्जन के पश्चात् उसकी वृद्धि करने में, उसकी रक्षा करने में, उसका व्यय करने में, उसके नाश और उपभोग करने में मनुष्यों को केवल श्रम, भय, चिन्ता तथा भ्रम ही अनुभव करना पड़ता है।

''चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, शराब और जुआ - मनुष्यों के इन पन्दरह अनर्थो का मूल धन ही है । इसलिए श्रेयकामी मनुष्य को अर्थ नाम वाले अनर्थ को दूर से ही छोड़ देना चाहिए ।

"भाई, स्त्री, पिता, मित्र सभी थोड़े से धन के लिए अलग हो जाते हैं और शीघ्र ही एक-दूसरे के शत्रु बन जाते हैं।

"थोड़े से धन के लिए ये लोग सुब्ध और क्रोधित हो जाते हैं। वे अपने पूर्व सम्बन्ध को भुला बैठते हैं और ईर्ष्यावश दूसरे के मार्ग में बाधा डालते और एक-दूसरे पर आक्रमण करते और हत्या कर बैठते हैं।।

"देवताओं के भी स्पृहणीय मनुष्य जन्म को और उसमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मण शरीर प्राप्त करके जो उसका अनादर करते हैं और अपने सच्चे स्वार्थ (आत्म-साक्षात्कार) का नाश करते हैं, वे अशुभ गति को प्राप्त होते हैं।

"मानव-जन्म स्वर्ग तथा मोक्ष का द्वार है। इसको प्राप्त कर ऐसा कौन मनुष्य है। जो अनर्थो के धाम में फंसे।

"जो देवता, ऋषि, पितर, प्राणी, जाति-भाई और दूसरे भागीदारों को धन में उनका भाग नहीं देता और अपने ही उपयोग में लाता है, वह यक्ष के समान रखवाली करने वाला कृपण अधोगति को प्राप्त होता है।

"मैंने अपनी आयु और शक्ति को प्रमादवश धन इकट्ठा करने में व्यर्थ ही नष्ट कर दिया है। विवेकी जन इनके द्वारा ही मोक्ष तक प्राप्त कर लेते हैं। अब वृद्धावस्था में मैं क्या कर सकता हूँ।

"विद्वान् लोग भी यह जानते हुए कि धन ही सभी बुराइयों का मूल कारण हैं, इस धन की प्राप्ति के लिए क्यों व्यर्थ चेष्टा करते हैं? अवश्य ही यह संसार किसी की माया से अत्यन्त विमोहित हो रहा है।

"जो मनुष्य काल के पंजों में पड़ा हुआ है, उसको धन से धन देने वालों से, भोग-वासनाओं से और भोग-वासनाओं को पूर्ण करने वाले पदार्थों से क्या लाभ है ? जन्म-मृत्यु के अनन्त चक्र में डालने वाले कर्म से क्या लाभ है?

“निस्सन्देह सर्वदेव-स्वरूप भगवान् मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न है; क्योंकि उन्होंने मुझे इस दशा में पहुँचाया है, जिससे कि मुझे वैराग्य की प्राप्ति हुई। जन्म-मृत्यु-रूप संसार सागर को पार करने के लिए यह वैराग्य मेरे लिए नौका या पतवार के समान है।

"यदि मेरी आयु शेष हो तो मैं उसे तपस्या में लगाऊँगा। मैं आत्मा में ही सन्तुष्ट रहूंगा। मैं परमार्थ की प्राप्ति के लिए ही सब कुछ करूंगा । मैं धर्मपरायण जीवन व्यतीत - करूँगा और मोक्ष-लाभ के लिए प्रयास करूँगा। तीनों लोकों के स्वामी देव गण मेरे इस संकल्प का अनुमोदन करें। राजा खट्वांग ने तो एक घण्टे में ही भगवद्-धाम को प्राप्त कर लिया था।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा "अवन्ती के ब्राह्मण ने अपने मन में इस प्रकार निश्चय करके सभी कामनाओं का उन्मूलन कर डाला और अहंकार की हृदय ग्रन्थि का भी उच्छेदन कर डाला। अब वह शान्त मन हो गया।

"वह अपने मन, इन्द्रिय और प्राणों को पूर्ण रूप से वश में कर पृथ्वी पर स्वच्छन्द विचरण करने लगा। वह भिक्षा के लिए ही नगर और गाँवों में जाता था। कोई जान नहीं पाता था कि वह कौन है। दुष्ट मनुष्य उस बुड्ढे अवधूत को घेर कर उसका तिरस्कार करते और उसके साथ दुर्व्यवहार करते थे।

“कोई उसका दण्ड ले लेता तो कोई उसका भिक्षापात्र और कमण्डलु । कोई उसका आसन और रुद्राक्ष माला ले जाता तो कोई उसके कन्धे का वस्त्र ही ले लेता था।

"कभी-कभी वे उसकी वस्तुओं को वापस देने का दिखावा करते; परन्तु जब वह निकट आता तो वे उसकी हँसी उड़ाते और देने से इनकार कर देते। कभी-कभी वे वस्तुओं को वापस दे कर फिर छीन लेते थे। जब वह किसी नदी या सरोवर के तट पर बैठ कर भोजन कर रहा होता, तो वे उसके ऊपर थूक देते थे। जब वह मौन रहता तो उसे बोलने के लिए विवश करते थे और यदि वह वैसा न करता तो उसे पीटते थे।

"दूसरे लोग कहते, 'यह आदमी चोर है।' कोई-कोई उसे रस्सी से बाँध देते थे और कोई कहता था, 'इसे मार डालो, मार डालो।' कुछ लोग उसका तिरस्कार करते हुए व्यंग करते थे और कहते थे, 'वह दृष्ट है और धार्मिक होने का ढोंग कर रहा है। जब सब सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर कुटुम्ब वालों ने परित्याग कर दिया, तब इसने यह जीवन-वृत्ति धारण कर ली।'

"वह बहुत ही बलवान् है। वह सब तिरस्कार को सहन कर जाता है और पर्वत के समान अडिग रहता है। वह बगुले के समान ही बहुत दृढ़ निश्चयी है और मौन रह कर अपना काम बनाना चाहता है।

"कोई उसकी हँसी उड़ाता, तो कोई-कोई उसे रस्सी से खम्भे या वृक्ष में बाँध देते जैसे कि खिलौने या पक्षी के साथ खिलवाड़ करते हैं।

"उसे जो कुछ भी भौतिक, दैविक और दैहिक कष्ट होता, उन्हें वह समझता कि ये पूर्व जन्मों के कर्म फल हैं, इसलिए उन्हें अवश्य ही धैर्यपूर्वक सहन करना साहिए।

"यद्यपि नीच लोग उसका तरह-तरह से तिरस्कार और अपमान करते थे, यद्यपि उन लोगों ने उसे धर्म-पथ से डिगाने की भी चेष्टा की थी, वह दृढ़ता से अपने धर्म में स्थित रहा और उसने निम्नांकित गीत गाया-

"ब्राह्मण ने कहा: मेरे सुख अथवा दुःख का कारण न यह शरीर है, न ये मनुष्य है न देवता है, न ग्रह है और कर्म अथवा काल आदि ही है। श्रुतियाँ और महात्मा जन कहते हैं कि मन ही सुख और दुःख का परम कारण है; क्योंकि यही ससार-चक्र को चला रहा है।

"मन ही राग और इच्छाओं की सृष्टि करता है। यह विभिन्न गुणों की और उनकी वृत्तियों की सृष्टि करता है और उनके द्वारा ही भले-बुरे कर्म होते हैं। इन कर्मों से ही मनुष्य संसार-श्रृंखला में आबद्ध हो कर अपने कर्मानुसार अनेक प्रकार के जन्म ग्रहण करता है।

"आत्मा स्वयंप्रकाश, निष्क्रिय और मन की क्रियाओं का मूक साक्षी है। यह जीवन का सखा है। अज्ञान के कारण मन को स्वीकार करके कर्मों का कर्ता बन बैठता है। वास्तव में तो मन ही सब-कुछ करता है। जीव कामनाओं के द्वारा विषय-पदार्थों का भोग करता है तथा बन्धन में पड़ जाता है।

"दान, अपने वर्णाश्रम-धर्म का पालन, यम, नियम, वेदाध्ययन, सत्कर्म, एकादशी उपवास आदि व्रत—इनसे मन का संयम होता है। मन का समाहित हो जाना ही परम योग है।

"जिसका मन शान्त है और समाहित है, उसके लिए दान आदि सत्क्रमों का क्या लाभ? जिसका मन असंयमित एवं चंचल है, उसको भी इन दान आदि से क्या लाभ ?

"इन्द्रियाँ और उनके अधिष्ठाता देव मन के ही वश में है; परन्तु मन किसी के भी वश में नहीं है। वह सब देवों से अधिक शक्तिशाली देव है। अतः जो अपने अपने वश में कर लेता है, वही सब देवों का देव है।

"मन अत्यन्त शक्तिशाली तथा दुर्जय शत्रु है। इसमें अदम्य बल है। यह मर्मस्थानों को ही बिद्ध करता रहता है। इस अन्तःशत्रु को विजय न कर कुछ मूर्ख लोग बाह्य जगत् के लोगों को जीतने का प्रयत्न करते हैं और उन्हें अपना शत्रु, मित्र तथा उदासीन आदि बना लेते हैं।

"मोहवश मनुष्य यह समझ कर कि 'यह शरीर मेरा है' भटकते रहते हैं। वे मन कल्पित शरीर को 'मैं' और 'मेरा' मान बैठते हैं। वे "यह मैं हूँ, वह दूसरा है' के भ्रम में पड़ जाते हैं। इस भांति वे अत्यन्त अज्ञानान्धकार में ही भटकते रहते हैं।

"यदि शरीर ही सुख-दुःख का कारण है तो उनसे आत्मा का कोई सम्ब नहीं, क्योंकि इनका सम्बन्ध तो दो शरीरों से है, जो एक ही मिट्टी से बने हुए है, अतः वे दोनों शरीर वास्तव में एक ही है। यदि मनुष्य का सुख-दुःख का कारण मान लिया जाये तो एक ही सत्-चित्-आनन्द-रूप आत्मा उन सबमें निवास करता है। असावधानीवश कभी किसी मनुष्य की जिह्वा अपने ही दाँतों से कट जाये, तो उस पीड़ा के लिए मनुष्य किस पर क्रोध करेगा ?

"यदि दुःख के कारण देवता हैं, तो भी इससे आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि इसका सम्बन्ध उन देवताओं से है जो उन दो इन्द्रियों के अधिष्ठाता है। इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देव सभी प्राणियों में एक ही है। यदि आप किसी व्यक्ति के हाथ पर प्रहार करें तो हस्तेन्द्रिय के अधिाता देव इन्द्र (प्रहार करने वाले तथा प्रहार को सहन क वाले) दोनों हाथों में एक ही हैं। इसमें आत्मा का क्या सम्बन्ध ? आत्मा तो सदा अप्रभावित रहता है। यदि किसी मनुष्य को अपने ही शरीर के एक अंग से दूसरे अंग को चोट लग जाये, तो वह भला किस पर क्रोधित हो ?

"यदि आत्मा सुख-दुःख का कारण है तो स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में किसी दूसरे के द्वारा कुछ नहीं होता। उस दशा में कारण अपना आप ही है। सुख और दुख अपना ही स्वरूप है; क्योंकि आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं यदि दूसरा कुछ प्रतीत होता है तो वह मिथ्या है। तब क्रोध का निमित्त ही क्या हो सकता है? किससे मनुष्य क्रोध करे ? न तो सुख है और न दुःख। केवल आत्मा ही सत् है।

(आत्मा को यदि सुख-दुःख का कारण मानें तो सुख-दुख का अनुभव ही असत्य होगा; क्योंकि वेद आत्मा का आनन्द-स्वरूप कहते हैं और उसके अतिरिक अन्य सभी पदार्थ असत्य एवं विनश्वर है।)

"यदि ग्रहों काे सुख-दुःख का कारण मानें तो उनसे आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि ग्रह तो शरीर को ही प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही साथ एक ग्रह दूसरे ग्रह के विपरीत प्रभाव भी डालता है। आत्मा तो ग्रह और शरीर दोनों से सर्वथा परे है। मनुष्य किस पर क्रोध करे ?

"यदि कर्मों को सुख-दुःख का कारण मानें तो वे शुद्ध, निष्क्रिय अमर आत्मा को कैसे संस्पर्श कर सकते हैं; क्योंकि कर्म तो उसी के द्वारा हो सकता है, जो जड़ और चेतन उभयात्मक हो; किन्तु देह तो अचेतन है और आत्मा शुद्ध चेतन है, अतः सुख और दुःख का कारण माने जाने वाले कर्म का कोई आधार ही नहीं है, तब भला वह किस पर क्रोध करे ?

"यदि काल का सुख-दुःख का कारण मानें तो वह भला आत्मा को कैसे प्रभावित कर सकता है? क्योंकि काल तो आत्म-स्वरूप ही है। ताप का अग्नि पर और शीत का बर्फ पर उलटा प्रभाव नहीं पड़ता है। वैसे ही आत्म-

स्वरूप काल आत्मा को सुख-दुःख नहीं पहुँचा सकता। आत्मा सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से परे है। अतः कौन किस पर क्रोध करे ?

"आत्मा प्रकृति से परे है और उसे सुःख दुःखादि द्वन्द्वों का असर नहीं होता। अहंकार ही संसार का कारण है। अहंकार को ही द्वन्द्वों का स्पर्श होता है। जिसे इस बात का ज्ञान हो गया, वह किसी से कभी भी भयभीत नहीं होता।

"अति प्राचीनकाल के महर्षियों ने जिस परमात्म-निष्ठा का आश्रय ग्रहण किया था, मैं भी उसी का आश्रय ग्रहण करूँगा और इसके द्वारा तुरन्त अज्ञान सागर को पार कर जाऊँगा।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : "यह गीत उस अवधूत का गाया हुआ है, जो सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर विरक्त हो गया और सारी चिन्ताओं से मुक्त हो कर संन्यासी के रूप में पृथ्वी पर विचरण करता था तथा दुष्टों के द्वारा अपमानित और पीड़ित होने पर भी अपने धर्म-मार्ग में स्थित रहा।

"मनुष्य के सुख-दुःख का कारण दूसरा कोई नहीं है, वह स्वयं ही है। यह तो चित्त का भ्रम मात्र है। मित्र, शत्रु और उदासीन व्यक्तियों से पूर्ण दुःख तथा सुख का अनुभव करने वाला यह संसार अज्ञान के कारण मन का भ्रम मात्र है।

"इसलिए मन को मुझमें तन्मय करके वश में कर लो। अपने ज्ञान-बल से मन के कार्य-व्यापारों को नियन्त्रित करो। यही योगों का सार है। यही सारे योग का सर्वोच्च लक्ष्य एवं पराकाष्ठा है।

"जो पुरुष उस शान्त, आत्म-संयमी, ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी के इस गीत को एक चित्त से पढ़ता, सुनता अथवा गाता है, वह द्वन्द्वों के वश में नहीं होता।"

सांख्ययोग

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा "अब मैं तुम्हें प्राचीन काल के कपिलादि ऋषियों द्वारा निर्मित सांख्यशास्त्र को सुनाता हूँ, जिसे जान कर मनुष्य भेद-बुद्धि-मूलक भ्रम का तत्काल परित्याग कर देता है।

"युगों से पूर्व (प्रलय काल) में, आदि सत्ययुग में और जब मनुष्य विवेक-निपुण होते थे, उस समय विकल्प-रहित केवल एक ही वस्तु थी, वह था शुद्ध चेतन अथवा ब्रह्म । उस समय द्रष्टा दृश्य, ज्ञाता-ज्ञेय आदि का विकल्प न था। वह चिन्मात्र न था।

“वह परब्रह्म अव्यय, अद्वितीय, सत्य तथा मन और वाणी से परे है। वह ब्रह्म अपनी माया-शक्ति के द्वारा दो भागों में द्रष्टा और दृश्य के रूप में विभक्त हो गया। इन दोनों में से एक प्रकृति है जिसके कारण और कार्य—दो रूप हैं। दूसरा ज्ञान-स्वरूप है, जिसे पुरुष कहते हैं।

“जीवों को उनके कर्म-फल प्रदान करने के लिए मैंने प्रकृति को क्षुब्ध किया। पुरुष के ऐक्षण से जब मैंने उसे क्षुब्ध किया तब सत्त्व, रज और तम —ये तीन गुण प्रकट हुए। गुणों से सूत्र आविर्भूत हुआ । यह महत् कहलाता है। महत् सूत्र से सदा मिला हुआ रहता है। महत्त्व में विकार होने से अहंकार आविर्भूत हुआ। यही जीवों में मोह उत्पन्न करता है।

“अहंकार तीन प्रकार का होता है : सात्त्विक, राजस और तामस। मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता ग्यारह देवता सात्त्विक अहंकार से, इन्द्रियाँ राजसिक अहंकार से और पाँच तन्मात्राएँ तामस अहंकार से प्रकट हुए। अहंकार जड़-चेतन उभयात्मक है।

"मेरी प्रेरणा से ये सब पदार्थ आपस में मिल गये और एक अण्डे का रूप धारण कर लिया। यह अण्ड मेरा उत्तम निवास-स्थान है। जल में तैरते हुए इस अण्डे में मैं विराजमान हो गया। मेरी नाभि से विश्व-कमल की उत्पत्ति हुई। स्वयम्भू ब्रह्माजी उसी कमल में प्रकट हुए। जी

"तपस्या से शक्तिसम्पन्न हो कर विश्वात्मा ब्रह्मा जी ने मेरा कृपा प्रसाद प्राप्त करके रजोगुण के द्वारा **भूः भुवः स्वः** इन तीन लोकों की तथा इनके लोकपालों की रचना की।

"स्वः (स्वर्गलोक) देवताओं का, भुवः (अन्तरिक्ष) भूत-प्रेतादि का, भू (पृथ्वीलोक) मनुष्यों का, स्वर्गलोक के ऊपर सिद्धों का और पृथ्वीलोक से नीचे असुरों और नागों का निवास स्थान बना। त्रिगुणात्मक कर्मों के अनुसार भूर्भुवः स्व. इन तीन लोकों की प्राप्ति होती है तथा योग, तपस्या और सन्यास के द्वारा महलोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक की प्राप्ति होती है। मेरा परम धाम वैकुण्ठलोक इन सातों से परे है। उसकी प्राप्ति भक्तियोग से होती है।

"मैं ही काल हैं और सभी कर्मों के फल का विधायक हैं। यह जगत् कर्म और उनके संस्कारों से युक्त है। इस गुण प्रवाह में पड़ कर जीव डूबता उतराता रहता है। अर्थात् कभी ब्रह्मलोक की उच्चगति और कभी वृक्ष-पत्थर आदि की अधोगति को प्राप्त होता है।

“जगत् में छोटे-बड़े, मोटे-पतले जो भी पदार्थ दिखायी पड़ते हैं, वे सब प्रकृति और पुरुष — दोनों के संयोग से ही बनते हैं।

"जिसमें से एक वस्तु उत्पन्न होती है और जिसमें वह विलीन हो जाती है, वही बीच में भी है। वही सत्य है। जो किसी वस्तु के आदि और अन्त में है, वही उसके मध्य में भी है। जो किसी वस्तु का आदि और अन्त है, वही वस्तु का भी मध्य है और वही सत्य है। आभूषण, घट आदि विकारों का तो सापेक्षिक अस्तित्व है।

"जो किसी भी कार्य के आदि और अन्त में विद्यमान रहता है, वही सत्य है; एकमात्र ब्रह्म ही परम सत्य है; क्योंकि वह विकार रहित है। सभी कार्यों का आदि और अन्त है। सभी कार्यों का उपादान ब्रह्म है।

"प्रकृति इस जगत् का उपादान कारण है, पुरुष इसका अधिष्ठान है, काल गुणों को क्षुब्ध कर इसको प्रकट करने वाला है। ये तीनों-प्रकृति, पुरुष और काल वस्तुतः ब्रह्म ही हैं और वह ब्रह्म मैं ही हूँ।

'जीवों के कर्मयोग के लिए पिता-पुत्रादि के रूप से यह सृष्टि-प्रवाह निरन्तर चलता ही रहता है। यह तब तक जारी रहता है जब तक कि भगवान् के इच्छानुसार उनकी पालन प्रवृत्ति बनी रहती है।

"तब तक यह सृष्टि जिसमें मैं व्याप्त हूँ और जिसमें अनेक प्राणी जन्मते और मरते रहते हैं, पंचभूतों में लीन होने के योग्य हो जाती है। प्रलय की प्रक्रिया सृष्टि कर्म से उलटी है। जिन तत्त्वों से विकार की उत्पत्ति हुई थी, उन्हीं उन्हीं तत्त्वों में विलीन हो जाते हैं।

"शरीर अन्न में, अन्न बीज में, बीज भूमि में, भूमि गन्ध में, गन्ध जल में, जल रस मे, रस तेज में, तेज रूप में, रूप वायु में, वायु स्पर्श में, स्पर्श आकाश में और आकाश शब्द में लीन हो जाता है।

"इन्द्रियाँ अपने कारण देवताओं में, देवता सब पर शासन करने वाले मन पर और मन सात्विक अहंकार में विलीन होता है। शब्द तामस अहंकार में, शक्तिशाली अहंकार महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व गुणों में, गुण अव्यक्त प्रकृति में और प्रकृति काल में लीन हो जाती है।

"काल जीव में और जीव मुझ अजन्मा आत्मा में लीन हो जाता है। आत्मा ही परम है। वह अपने स्वरूप में स्थित रहता है। वह जगत् का सृष्टि, लय और उसके अधिष्ठान के रूप में परिलक्षित होता है।

*"जब इन प्रक्रियाओं पर ध्यान किया जाये तो चित्त में प्रपंच का भ्रम कैसे उत्पन्न हो सकता है? यदि उत्पन्न हो भी जाये तो वह उस मन में, जो इस प्रकार ध्यान करता है, कैसे टिक सकता है? क्या सूर्योदय होने पर आकाश में अन्धकार ठहर सकता है?

"मैंने तुम्हें सृष्टि से प्रलय और प्रलय से सृष्टि तक की दोनों सांख्य-विधियाँ बतला दी हैं। इससे संशय की ग्रन्थि कट जाती है। मैंने तुम्हें विस्तृत रूप से बतला दिया है कि प्रकृति की शक्तियाँ किस प्रकार सृष्टि और पुनः प्रलय के लिए कार्यशील हैं। मैं ही कार्य और कारण —दोनों का साक्षी हूँ।"

सत्त्व, रज और तम

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : “हे पुरुषश्रेष्ठ! अब मैं तीनों गुणों के प्रभाव का पृथक्-पृथक् विस्तृत रूप से वर्णन करूँगा। ध्यानपूर्वक उसको सुनो।

"शम (मनः संयम), दम (इन्द्रिय-निग्रह), तितिक्षा, विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, सन्तोष, त्याग, विषयों के प्रति अनिच्छा, श्रद्धा, लज्जा (पाप करने में संकोच), दानशीलता, सरलता, नम्रता और आत्म-रति-ये सत्त्वगुण की वृत्तियाँ है।

"इच्छा, प्रयत्न, मद, तृष्णा, अहंकार, सुख के लिए प्रार्थना करना, भेद-बुद्धि, विषय-भोग, मद जनित उत्साह, यश में प्रेम, हास्य, वीर्य और क्लिष्ट उद्योग करना-ये रजोगुण की वृत्तियाँ हैं।

"क्रोध, लोभ, मिथ्यावादिता, हिंसा, याचना, पाखण्ड, श्रम, कलह, शोक,मोह, विषाद, दीनता, निद्रा, आशा, भय और अकर्मण्यता ये तमोगुण की वृत्तियाँ हैं।

"अब उनके मेल से होने वाली वृत्तियों को सुनो। उद्धव जी! 'मैं और मेरा' की बुद्धि तीनों गुणों के मिश्रण से होती है मन, विषय, इन्द्रिय और प्राणों के द्वारा कार्य होते हैं, ये सब इन तीनों गुणों के मिश्रण की वृत्तियाँ हैं। (तुम शरीर से तदाकार बनते. हो और कहते हो, 'मैं काला हूँ, मैं दुबला हैं, मैं अन्धा हूँ।' तुम' विषयों से संबंध स्थापित करते हो और कहते हो, 'यह कोट मेरा है' आदि।)

"जब मनुष्य धर्म (सत्त्व), अर्थ (तम) और काम (रज) में संलग्न रहता है तब श्रद्धा (सात्त्विक), रति (रजोगुण) और धन (तमोगुण) की प्राप्ति होती है। यह भी गुणों का मिश्रण है।

"यदि मनुष्य प्रवृत्ति-मार्ग में अधिक रुचि रखता है और यदि वह स्वधर्माचार का पालन करता हुआ गृहस्थ-जीवन व्यतीत करता है; यह भी गुणों का मिश्रण ही है। यदि मनुष्य में शमादि सत्त्वगुण हैं तो वह सात्त्विक, यदि उसमें कामना आदि रजोगुण हैं तो राजस और यदि उसमें क्रोधादि तमोगुण हैं तो वह तामस मनुष्य है।

"जो पुरुष या स्त्री भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करती है और अपने कर्तव्य-कर्म को निष्काम भाव से करती है, उसे सत्त्वगुणी जानना चाहिए।

"जो अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए, धन और ऐश्वर्य के लिए मेरी उपासना करते हैं, उन्हें रजोगुणी जानना चाहिए; और जो दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए मेरी उपासना करते हैं, उन्हें तमोगुणी जानना चाहिए।

"सत्त्व, रज और तम —ये जीव को ही प्रभावित करते हैं, मुझे नहीं। वे मन में प्रकट हो कर जीव को विषयों में आसक्त कर उसे संसार-बन्धन में डालते हैं।

"सत्त्वगुण प्रकाशक, निर्मल और शान्त है। जब वह दूसरे दोनों गुणों को अभिभूत करता है, उस समय मनुष्य को सुख, धर्म और ज्ञान मिलता है। रजोगुण राग, भेद और प्रयत्न का कारण है। जब यह सत्त्व और तमस को अभिभूत करता है, उस मनुष्य को दुःख, कर्म, यश और धन मिलता है। तमोगुण मोह, अज्ञान और आलस्य का जनक है। जिस समय वह सत्त्वगुण और रजोगुण को अभिभूत करता है, तब मनुष्य को शोक, मोह और निद्रा की प्राप्ति होती है तथा वह हिंसक और लोलुप बन जाता है।

"जब चित्त प्रसन्न और शान्त हो, इन्द्रियाँ संयमित हों, शरीर निर्भय हो, मन राग-रहित हो, तब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है और वह मेरी प्राप्ति में सहायक होता है।

"जब काम में चित्त विक्षिप्त हो, कामनाओं की वृद्धि हो, इन्द्रियाँ चंचल हों, मन भ्रान्त हो, इन लक्षणों से रजोगुण की वृद्धि समझनी चाहिए।

"जब मन समझने में असमर्थ हो, खिन्न हो, आत्म-चिन्तन के अयोग्य हो, आलस्य और सूनापन हो, अज्ञान और विषाद की वृद्धि हो—इन लक्षणों से तमोगुण की वृद्धि जाननी चाहिए।

"सत्त्वगुण के बढ़ने पर देवताओं का, रजोगुण के बढ़ने पर असुरों का और तमोगुण के बढ़ने पर राक्षसों का बल बढ़ जाता है।

"जाग्रतावस्था सत्त्वगुण से, स्वप्नावस्था रजोगुण से और सुषुप्ति अवस्था तमोगुण से होती है। तुरीय आत्मा है। वह इन तीनों में व्याप्त है।

"सत्त्वगुण के द्वारा वेदपथगामी ब्राह्मण उत्तरोत्तर ऊपर के लोकों में ब्रह्मलोक तक जाते हैं। तमोगुण के द्वारा मनुष्य नीची-से-नीची योनियों को जाते हैं और रजोगुण से मध्य में अर्थात् मनुष्य शरीर में रहते हैं।

"यदि मृत्यु के समय मन सत्त्वगुण से पूर्ण है तो मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति होती है. यदि रजोगुण से पूर्ण है तो वह इस जगत् में पुनः मनुष्य के रूप में जन्म ग्रहण करता है और यदि तमोगुण से पूर्ण है तो वह नरक को जाता है; परन्तु हैं, जो पुरुष त्रिगुणातीत है, उन्हें मेरी प्राप्ति होती है।

"मुझे समर्पित किया हुआ अथवा निष्काम भाव से किया हुआ कर्म सात्त्विक है, फलाभिलाशा से किया हुआ कर्म राजसिक और हिंसा अथवा दम्भयुक्त कर्म तामसिक होता है।

'आत्मा को शरीर से पृथक जानना सात्त्विक ज्ञान है, इससे भिन्न अर्थात् आत्मा और शरीर को अभिन्न मानना राजस ज्ञान है और बच्चों, गूंगों आदि का असंस्कृत ज्ञान तामस ज्ञान है। मेरे स्वरूप का ज्ञान त्रिगुणातीत है।

"वन सात्विक निवास है, ग्राम राजस निवास है और सूना घर तामस निवास है। मेरा धरम निर्गुण है।

'अनासक्त-भाव से कर्म करने वाला सात्त्विक, रागान्ध हो कर कर्म करने वाला राजस और विचार-रहित हो कर काम करने वाला तामस है। मेरी शरण में रहने वाला निर्गुण कर्ता है।

"वेदान्त-शास्त्रोपदिष्ट परमात्मा में श्रद्धा सात्त्विक, दैहिक यज्ञयागादि में श्रद्धा राजस और अधर्म में श्रद्धा तामस है। मेरी सेवा में पूर्ण श्रद्धा निर्गुण श्रद्धा है।

"स्वास्थ्यप्रदायक पवित्र और अनायास प्राप्त भोजन सात्त्विक, इन्द्रियों अथवा जिह्वा को रुचिकर भोजन राजस और अपवित्र तथा स्वास्थ्य को हानिकर भोजन तामस है।

"आत्मा से प्राप्त होने वाला सुख सात्त्विक, विषयों से प्राप्त होने वाला राजस तथा अज्ञान और मोह से प्राप्त होने वाला सुख तामस है। मेरे साक्षात्कार से प्राप्त होने वाला सुख निर्गुण है।

"द्रव्य, देश, फल (स्वर्गादि), काल, ज्ञान, कर्ता, श्रद्धा, अवस्था, आकृति, निष्ठा —— ये सभी त्रिगुणात्मक हैं।

"हे पुरुषश्रेष्ठ! पुरुष और प्रकृति से व्याप्त तथा उनके आश्रित जितने भी भाव हैं और वे सभी भी जो कि देखे, सुने अथवा बुद्धि द्वारा सोचे जा सकते हैं—ये सब गुणमय हैं।

"हे सौम्य ! यही जीव को प्राप्त होने वाले संस्कार (जन्म-मृत्यु) की गति है। ये सब मनुष्य के गुण और कर्म के कारण ही होते हैं। जिस मनुष्य ने चित्त में उत्पन्न होने वाले इन गुणों पर विजय पा ली है और जो भक्तियोग द्वारा मुझमें प्रतिष्ठित है, वह मेरे स्वरूप को अथवा मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

"इसलिए ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति के साधन रूप इस मनुष्य शरीर को पा कर बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह गुणों से अपनी आसक्ति हटा दे और मेरा भजन करे।

"विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह सावधानीपूर्वक, इन्द्रियों को वशीभूत कर तथा आसक्ति-रहित हो कर मेरा भजन करे। वह सत्त्व का विकास कर रजोगुण और तमोगुण को जीत ले और सत्त्व को भी निरपेक्षता तथा मुझमें मन की एकाग्रता के द्वारा विजय करे। इस प्रकार मनुष्य गुणों के ऊपर उठ जाता है और अपना शरीर परित्याग कर मुझमें एक हो जाता है।

"ऐसा मनुष्य अपनी उपाधि जीवत्व से और चित में उत्पन्न होने वाले गुणों की वृत्तियों से मुक्त हो जाता है और मुझ ब्रह्म की अनुभूति से पूर्ण हो कर बाह्य अथवा आन्तरिक अर्थात् लौकिक एवं पारलौकिक कोई भी कार्य नहीं करता है। वह बाह्य अथवा आन्तरिक किसी भी विषय में नहीं जाता।"

ऐल गीत

भगवान् श्रीकृष्ण के कहा : "मेरे स्वरूप- ज्ञान की प्राप्ति कराने वाले इस मानव शरीर को पा कर जो प्राणी धर्म-कार्य को करता हुआ मेरी भक्ति करता है, वह अन्तःकरण में स्थित मुझ आनन्द-स्वरूप परमात्मा को पा लेता है।

"गुण ही मनुष्य में जीवत्व की क्षुद्र भावना लाते हैं। ज्ञाननिष्ठा के द्वारा गुणमयत्व के भाव से मुक्त हो जाने पर मनुष्य इस दृश्य जगत् में, जो कि भ्रान्ति या माया मात्र है, रहते हुए और असत् पदार्थों के मध्य व्यवहार करते हुए उनसे नहीं बँधता है।

"मनुष्य को उन दुष्ट तथा अयोग्य व्यक्तियों का संग नहीं करना चाहिए जो कि विषयों के सेवन और उदर-तृप्ति में लगे रहते हैं। जो इनमें से किसी का अनुगमन करता है वह वैसे ही घोर अन्धकार के गर्त में गिरता है जैसे कि अन्धे का अनुगमन करने वाला अन्धा ।

"महान् यशस्वी सम्राट् पुरूरवा (ऐल) उर्वशी से बहुत आसक्त था। उर्वशी के विरह में वह शोक और निराशा से अभिभूत था। शोक के पराभूत हो जाने पर उसे वैराग्य और त्याग उत्पन्न हुआ और उसने अपने दयनीय जीवन पर खेद प्रकट करते हुए निम्नांकित गीत गया।

"यह जान कर कि उर्वशी उन्हें अर्धरात्रि में अकेले छोड़ कर अचानक चली गयी, वह विलाप करता हुआ नग्नवदन ही उसके पीछे दौड़ा। उसने कहा, हे देवी! हे प्रिये! हे निष्ठुर! ठहरो! भागो मत!

"यद्यपि उर्वशी उसके पास वर्षों रही, फिर भी उसकी विषय-वासना तृप्त नहीं हुई। उर्वशी ने उसके चित्त को इतना आकृष्ट कर लिया था कि दिन, रात्रि और वर्ष के बीतने का उसे पता ही नहीं चला।

"ऐल (पुरूरवा) ने कहा ओ हो! मेरे मोह का विस्तार तो देखो। काम- वासना से मेरी बुद्धि पर आवरण छा गया। उसने मेरे गले को अपने भुजपाश में ऐसा बाँध रखा था कि मैं अपनी आयु को क्षय होते देख न सका।

"उसकी छलना में पड़ कर मैं यह भी न जान सका कि कब सूर्य उदय हुआ और कब अस्त। बड़े खेद का विषय है कि इस भाँति अनन्त दिन और वर्ष व्यतीत हो गये।

"मेरा मोह बहुत ही शोचनीय है। इसने मुझ नरदेव -शिखामणि चक्रवर्ती सम्राट् को स्त्रियों का क्रीड़ामृग बना दिया।

"वह स्त्री मुझ धन-धान्य और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से सम्पन्न सम्राट् को एक तिनके के समान छोड़ कर चली गयी और मैं रोता-बिलखता नंगा पीछे दौड़ता रहा।

"भला मुझमें प्रभाव, तेज और स्वामित्व कैसे हो सकता है, जो गधे के समान दुलत्तियाँ सह कर स्त्री के पीछे दौड़ता रहा। "जिसका मन स्त्री ने चुरा लिया है, उसे विद्या, तप, त्याग, वेदाध्ययन, एकान्त सेवन और मौन से क्या लाभ है ?

“विद्वत्ता की डींग व्यर्थ ही है। मुझ मूर्ख को धिक्कार है। मुझे अपने ही शुभ-अशुभ का ज्ञान नहीं है। मैं आत्माभिमानी था; इसीलिए मैं अपने को बहुत बड़ा पण्डित मानता था। मैं सम्राट् हो कर भी गधे और बैल की तरह स्त्री के वश में हो गया।

"मैं वर्षों तक उर्वशी की अधर-सुधा का पान करता रहा, फिर भी मेरी काम-वासना तृप्त नहीं हुई। वह घी की आहुति दिये हुए अग्नि की भाँति प्रज्वलित होती गयी।

"आत्माराम जीवन्मुक्तों के स्वामी भगवान् अधोक्षज के अतिरिक्त ऐसा अन्य कौन समर्थ है जो विषयासक्त मन को, वारांगनाओं द्वारा अपहृत मन को शुद्ध एवं मुक्त कर सके।

"यद्यपि उदार देवी (उर्वशी) ने श्रुति की युक्तियों द्वारा समझा कर मुझे विषयों से विलग करने का प्रयास भी किया; परन्तु मेरी बुरी प्रकृति इच्छाओं के दमन करने में असमर्थता के कारण मेरे मन का मोह दृढ़ ही बना रहा।

"उस देवी का कुछ भी दोष नहीं है। उसने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा है। मुझे ही अपनी इन्द्रियों को वश में करना था। मैं ही अपराधी हूँ। उस रस्सी ने भला उस व्यक्ति को क्या हानि पहुँचायी, जो रस्सी के स्वरूप को न जान कर उसमें सर्प की कल्पना कर बैठे ?

"माया अत्यन्त शक्तिशाली है। अज्ञानवश यह मलिन, अपवित्र, दुर्गन्धपूर्ण तथा क्षयशील शरीर आकर्षण एवं प्रेम का केन्द्र बन जाता है, मानो कि उसमें पुष्पोचित सुगन्ध, सौन्दर्य और सुकुमारता आदि गुण हैं। इस अभ्यास का कारण अविद्या है। शरीर में सुगन्धि, सुन्दरता आदि का आरोप अज्ञान के कारण ही होता है।

"यह शरीर माता-पिता की, स्त्री की, स्वामी की, अग्नि की, कुत्ते और गीधों की, अपनी अथवा सम्बन्धियों की सम्पत्ति है—यह निश्चय कर सकना सरल नहीं है। विष्ठा, कीट और राख में परिणत होने वाले इस घृणित शरीर से मोहासक्त हो कर लोग कहते हैं, 'मनोहर नासिका और मधुर मुस्कान से युक्त उस रमणी का मुख कितना सौन्दर्यमय है!'

"त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, पुट्ठा, मेदा, मज्जा, अस्थि, मल-मूत्र तथा दूसरी अपवित्र वस्तुओं से भरे हुए इस शरीर में जो रमण करता है, उस व्यक्ति में और कीड़ों में क्या अन्तर है?

"विकेकशील मनुष्य को स्त्री और स्त्री लम्पट पुरुषों का संग नहीं करना चाहिए; क्योंकि विषय और इन्द्रियों के संयोग से ही मन में विकार उत्पन्न होते हैं, अन्यथा नहीं।

"जो वस्तुएँ देखी अथवा सुनी नहीं गयी हैं, उनके लिए मन में वासना नहीं उत्पन्न होती। अतः जो पुरुष अपनी इन्द्रियों का दमन करते हैं, उनका मन निश्चल और शान्त हो जाता है। वह शान्त और ईश्वर-चिन्तन के उपयुक्त हो जाता है।

"अतः इन्द्रियों से स्त्री और स्त्रीलम्पटों का संग नहीं करना चाहिए; क्योंकि विद्वानों के लिए भी अपनी इन्द्रियाँ और मन विश्वसनीय नहीं हैं। फिर मेरे जैसे (धन, बल, पद, मोह और अहंकार से पूर्ण) व्यक्ति के विषय में कहना ही क्या ?"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : "इस प्रकार गाते हुए नृपेन्द्र पुरूरवा ने उर्वशी-लोक का परित्याग कर दिया। ज्ञान का उदय होने से उसका मोह जाता रहा। उसने मेरा साक्षात्कार कर आत्मानन्द को प्राप्त किया।

"इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को कुसंग से बचना चाहिए और सत्पुरुष तथा ज्ञानी जन का संग करना चाहिए। उनकी संगति से वे असंग बनेंगे और उनके चित्त की सभी वासनाएं जाती रहेंगी।

"सन्त किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखते। वे स्वतन्त्र होते हैं और परिग्रह नहीं रखते। वे अपने चित्त को मुझमें लगाये रहते हैं। वे सर्वत्र मेरा ही दर्शन करते हैं। वे अहन्ता-ममता से मुक्त तथा द्वन्द्वों से परे होते हैं। वे सब प्रकार के राग से मुक्त होते हैं।

"हे भाग्यवान् उद्धव जी! वे नित्य निरन्तर मेरी ही लीला-कथा करते हैं और पुरुष मेरी कथाओं को सुनते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं।

"जो लोग आदर और श्रद्धा के साथ मेरी लीला-कथाओं को सुनते, गाते अथवा उनमें प्रीति रखते हैं, वे मेरे परायण हो जाते हैं और मेरा प्रेम तथा भक्ति प्राप्त करते हैं।

“जिसने मुझ अत्यन्त गुण-सम्पन्न, सर्वथा पूर्ण और सत्-चित्-आनन्द- स्वरूप परब्रह्म की प्राप्ति कर ली है, क्या अभी भी उसे कुछ पाना शेष रहा है?

"जैसे अग्निदेव का सेवन करने वाले व्यक्ति का शीत, भय और अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही जो सन्त पुरुषों का संग करता है, उनकी सेवा करता तथा उनके पास रहता है, उसके भी अज्ञान, संसार का भय तथा अन्य सभी अशुभ जाते रहते हैं।

"जो लोग इस घोर संसार में डूब-उतरा रहे हैं, उनके लिए ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी परम आश्रय हैं, जैसे जल में डूबते हुए लोगों के लिए दृढ़ नौका।

जैसे अन्न प्राणियों का जीवन है, वैसे ही आर्त प्राणियों का मैं रक्षक हूँ। जैसे धर्म ही परलोक में मनुष्य की सम्पत्ति है, वैसे ही संसार से भयभीत लोगों के लिए सन्त ही आश्रय हैं।

"जैसे सूर्य उदय हो कर लोगों को एक बाह्य नेत्र प्रदान करता है; उसी प्रकार सन्त जन उनको अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। सन्त ही साक्षात् देवता हैं और सच्चे सुहृद हैं। सन्त ही मेरा स्वरूप परमात्मा हैं।"

क्रिया-योग तथा मूर्ति-पूजा

उद्धव जी ने कहा : "हे भक्तवल्लभ प्रभो! आप कृपा करके अपनी आराधना-रूप क्रिया-योग का वर्णन कीजिए। भक्त जन किस प्रकार से और किन साधनों से आपकी पूजा करते हैं?

"हे देवर्षि नारद, भगवान् व्यासदेव तथा आचार्य बृहस्पति कहते हैं कि मनुष्यों को मोक्ष-प्राप्ति के लिए यह विशेष सक्रिय साधना है।

"हे प्रभो! यह योग आपके मुखारविन्द से निकलने पर पूज्य ब्रह्मा जी ने इसका अपने पुत्र भृगु आदि को और भगवान् शिवजी ने अपनी अर्धांगिनी पार्वती जी को उपदेश किया। उसे मैं सभी वर्णाश्रमों के लिए, यहाँ तक कि स्त्री-शूद्रादि के लिए भी, परम कल्याण का सर्वोत्तम उपयुक्त साधन मानता हूँ।

"हे कमलनयन ! हे विश्वेश्वरों के भी ईश्वर! मैं आपका प्रेमी और भक्त हूँ। मुझे आप कर्म के बन्धन से मुक्त करने वाले इस साधन को बतलाइए।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा: "कर्मकाण्ड का विस्तार अनन्त है। मैं इसे प्रारम्भ से संक्षेप में विधिपूर्वक बतलाऊँगा।

"मेरी पूजा की तीन विधियाँ हैं—वैदिक, तान्त्रिक और मिश्रित । मनुष्य अपनी इच्छा और रुचि के अनुकूल इन तीनों विधियों में से किसी भी एक विधि से मेरी आराधना कर सकता है।

"अपने कुल के नियमानुसार यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् मनुष्य श्रद्धा और भक्ति के साथ किस प्रकार मेरी आराधना करे, उसे मुझसे सीखो।

"मूर्ति में, वेदी में, अग्नि में, सूर्य में, जल में, हृदय में अथवा ब्राह्मण में, इनमें से चाहे किसी में भी, वह पूजा की आवश्यक सामग्री द्वारा गुरु-रूप मुझ परमात्मा की आराधना भक्तिपूर्वक निष्कपट-भाव से करे।

"वह दन्तधावन तथा मुख और अंग-प्रक्षालन करे और फिर शरीर शुद्धि के लिए स्नान करे। स्नान वैदिक और तान्त्रिक—दोनों मन्त्रों से और मृत्तिका आदि के लेप से होना चाहिए।

"प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल को शास्त्रोक्त सन्ध्या करनी चाहिए। मेरी आराधना के लिए उनका परित्याग नहीं करना चाहिए। इसके अनन्तर वह कर्म-बन्धन से छुड़ाने वाली मेरी पूजा करे और यह दृढ़ संकल्प कर ले कि वह कृपा की प्राप्ति के लिए ही आराधना कर रहा है न कि अन्य किसी कामना से।

"मेरी मूर्ति आठ प्रकार की है—पत्थर की, लकड़ी की, धातु की, मिट्टी की, बालुका की, चित्र, मणि की और मानसिक।

"मन्दिर में मेरी दो प्रकार की मूर्तियाँ हैं—चल और अचल चल मूर्तियों की विशेष उत्सवों के अवसर पर सवारी निकाली जाती है और अचल मूर्तियाँ एक ही स्थल पर रहती हैं। अचल प्रतिमा के पूजन में प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन नहीं करना चाहिए।

"चल मूर्तियों के विषय में विकल्प है; किन्तु बालुकामयी प्रतिमा में यह अनिवार्य है। मूर्ति के अनुसार पूजा की विधि में भी भेद है। साधारण प्रतिमाओं में प्रति बार पूजा के समय मेरा आवाहन और विसर्जन करना चाहिए; परन्तु अचल मूर्तियों के तथा शालिग्राम की पूजा के समय ऐसा करना आवश्यक नहीं है। मृत्तिका की मूर्ति तथा चित्र को स्नान नहीं कराना चाहिए। इनका केवल मार्जन ही करना चाहिए। दूसरी मूर्तियों को स्नान कराना चाहिए।

"पूजा के योग्य उत्तम पदार्थ जो प्राप्त हो सकें, उनसे ही मूर्तियों में मेरी पूजा करनी चाहिए। सच्चा भक्त तो जो कुछ भी आ जाये, उससे अथवा भावना मात्र से हृदय में मेरी आराधना कर सकता है।

"पाषाणादि मूर्तियों की स्नान और अलंकार से, वेदी की मन्त्रों से, अग्नि में घृत-मिश्रित आहुति से, सूर्य की अर्घ्यदान और स्तोत्रों से तथा जल की तर्पण से उपासना मुझे बहुत प्रिय है। भक्त का श्रद्धापूर्वक अर्पित किया हुआ जल भी मुझे बहुत प्रिय है। फिर तो चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से जो पूजा करता है, उसका तो कहना ही क्या ? जो मेरा भक्त नहीं है, यदि वह बहुत-सी सामग्री भी मुझे भेंट करे, फिर भी मैं उससे प्रसन्न नहीं होता और न उसे मेरी कृपा ही प्राप्त होती है।

"उपासक पहले स्नान करे और फिर पूजा की सब सामग्री इकट्ठी करे। पूजा-काल में सामग्री लाने के लिए वह आसन से न उठे। वह पूर्व या उत्तर की दिशा को मुख कर कुश पर बैठे और फिर मेरी पूजा करे। यदि मूर्ति है, तो उसे मूर्ति की ओर मुख करके बैठना चाहिए।

"पहले अंगन्यास और करन्यास करे; फिर मूर्ति में मन्त्रन्यास करके पहले दिन की समर्पित की हुई सामग्री प्रतिमा पर से हाथ हटाये और उसको साफ करे। इसके बाद वह जल के कलश की और प्रोक्षणपात्र की विधिवत् पूजा करे।

"वह उस जल को पूजा के स्थान, पूजा की सामग्री तथा अपने शरीर पर छिड़के और तीन पात्रों पर भी जल छिड़क कर उनमें जल भर कर रख दे और फिर पूजा की सामग्री रखे।

"उपासक पाद्य, अर्घ्य और आचमन-तीनों पात्रों को क्रमशः हृदय-मन्त्र '**नमः**' से, शिरो-मन्त्र '**स्वः**' से तथा शिखा मन्त्र '**बषट्**' से अभिमन्त्रित कर फिर तीनों को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करे।

"इसके पश्चात् उपासक वायु और अग्नि के द्वारा शुद्ध हुए अपने शरीर में ही हृदय-कमल में स्थित परम सूक्ष्म और श्रेष्ठ मेरी जीवकला का ध्यान करे। सिद्ध लोग भी नादकला के अन्त में इसी कला का ध्यान करते हैं।

"आत्मा सारे शरीर में व्याप्त है। उपासक इस शरीर में पूजा करे और जब मेरे भाव से उसका शरीर भर जाये, तब वह मूर्ति में मेरा आवाहन करे और अंगन्यास कर मेरी पूजा करे।

"वह मेरे आसन के विषय में ऐसी भावना करे कि धर्मादि देवता इसके अंग हैं और इस पर शक्तियाँ विराजमान हैं। उस आसन के ऊपर प्रकाशमान कर्णिका तथा केसर से युक्त अष्टदल कमल हैं। इसके अनन्तर वह भोग और मोक्ष की प्राप्ति की वैदिक और तान्त्रिक विधि से पाद्य, आचमन, फल-फूल आदि मुझे निवेदन करे।

"इसके अनन्तर वह सुदर्शन चक्र, पांचजन्य शंख, गदा, खड्ग, धनुष, बाण, हल, मूसल — मेरे इन आयुधों की तथा कौस्तुभ मणि, वनमाला तथा वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का पूजन करे।

"नन्द, सुनन्द, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद, कुमुदेक्षण, गरुड़, दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेन, गुरु और देवता इन पाषदों तथा दूसरों की इनके स्थान में अर्घ्यादि से पूजा करे।

"यदि पर्याप्त धन हो तो चन्दन, खस, कपूर, केसर, अरगजा आदि सुगन्धित वस्तुओं से सुवासित जल से मूर्तियों को प्रतिदिन स्नान कराना चाहिए। सुवर्णधर्मानुवाक् महापुरुषविद्या, पुरुषसूक्त तथा राजनादि सामगायन आदि का पाठ करना चाहिए।

"वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पत्र-पुष्प की माला, गन्ध और लेप से भक्त प्रेमपूर्वक यथोचित मेरा अलंकार करे।

"उपासक श्रद्धा और निष्कपट भाव के साथ मुझे पाद्य, आचमन, गन्ध, चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप तथा सुन्दर वस्तुएँ समर्पित करे।

'यदि सामर्थ्य हो तो वह खीर, घी में बने हुए पदार्थ, अनेक प्रकार के मिष्टान्न,दही, व्यंजन, दाल, घी, मक्खन, पूड़ी, हलुआ, लड्डू आदि का नैवेद्य लगाये।

"प्रतिमा को दूध, तेल आदि से स्नान कराना चाहिए। भक्त मेरा मुख, दाँत, पाँव आदि धोये; वह मुझे दर्पण दिखाये; नाना पदार्थों का मुझे भोग लगाये तथा पूर्णिमा, अमावस्या, एकादशी आदि विशेष पर्वो पर मेरे लिए गान नृत्य आदि का आयोजन करे।

"शास्त्रोक्त विधि के अनुसार निर्मित तथा मेखला, गर्त एवं वेदी से युक्त कुण्ड में वह अग्नि की स्थापना करे और जब वह भली प्रकार प्रज्वलित हो जाये तो वह उसे अपने हाथों से एकत्र कर दे।

"वेदी के चारों ओर शास्त्रोक्त विधि से कुशा घास बिछा कर उस पर जल छिड़के। इसके बाद अन्वाधान कर्म करके अग्नि के उत्तरी ओर हवन सामग्री रखे और प्रोक्षणी पात्र से एक चम्मच जल ले कर प्रोक्षण करे। वह अग्नि में मेरा ध्यान करे।

"वह इस प्रकार ध्यान करे — मेरी मूर्ति तपाये हुए सोने की भाँति दमक रही है, हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं, आनन्दमय प्रसन्न मुख-मुद्रा है, कमल की केसर के समान पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं, प्रकाशमान्, मुकुट, कंकण, करधनी और सुन्दर बाजूबन्द से विभूषित हैं, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिहन और जगमगाती हुई कौस्तुभमणि है और वनमाला पहने हुए हैं। इस भाँति मेरा ध्यान और पूजा करने के अनन्तर घृत में डूबी हुई समिधाओं की आहुति दे और '**प्रजापत्यै स्वाहा**' इस मन्त्र से आज्यभाग और आधार नामक दो आहुति दे और '**अग्नायै स्वाहा**' इत्यादि मन्त्र से घृत में डुबो कर अन्य हवन सामग्री की आहुति दे । वह मूलमन्त्र '**ॐ नमो नारायणाय**' से तथा पुरुषसूक्त के सोलह मन्त्रों से हवन करे। वह विधिवत् धर्मादि देवताओं को और अग्नि को स्विष्टकृत आहुति दे ।

"पूजा समाप्त करके वह मूर्ति को नमस्कार करे, तब वह पार्षदों को भी भोग दे। इसके अनन्तर वह परब्रहम-स्वरूप भगवान् नारायण को स्मरण करता हुआ '**ॐ नमो नारायणाय**' मन्त्र का जप करे।

"भोग के अनन्तर वह मुझे आचमन कराये और मेरे प्रसाद को विष्वक्सेन को अर्पित करे। अब वह मुझे मुखवास और ताम्बूल अर्पित करे और फिर मेरी पूजा करे।

"वह मेरी ही लीलाओं को गाये, मेरे ही गुणों का वर्णन करे, नृत्य करे, मेरी लीलाओं का अभिनय करे और मेरी लीलाओं को सुने सुनाये तथा कुछ समय तक उसी आनन्दमय स्थिति में पड़ा रहे।

"वेद और पुराणों के स्तोत्रों अथवा प्राकृत भाषा में रचे हुए गीतों से वह मेरी स्तुति करे और 'भगवन् मुझ पर प्रसन्न हों, मुझ पर कृपा करें" यह कहता हुआ मुझे दण्डवत् नमस्कार करे।

'अपने शिर को मेरे चरणों में रखे और दोनों हाथों से (दाहिने हाथ से दायाँ और बायें हाथ से बायाँ) चरण पकड़ कर वह कहे : 'भगवन्! मृत्यु-रूप मगर से संकुल इस संसार-सागर से मैं भयभीत हो रहा हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिए। मैंने आपकी शरण ग्रहण की है।'

"इस भाँति मेरी पूजा कर वह मुझे समर्पित किये हुए कुछ पुष्पों को आदरपूर्वक अपने शिर पर धारण करे और यदि विसर्जन करना आवश्यक हो तो वह प्रतिमा में आरोपित ज्योति को अपने हृदय में स्थित परम ज्योति में लीन कर ले और इस भाँति मूर्ति से मेरा विसर्जन करे।

"किसी भी प्रतिमा में जिसमें कि उसको श्रद्धा हो, किसी भी समय और किसी भी विधि से जिसमें उसकी रुचि हो, उपासक मेरी पूजा कर सकता है; क्योंकि मैं सभी वस्तुओं में व्याप्त हूँ, मैं सर्वात्मा हूँ और मैं समस्त प्राणियों के और उसके हृदय में भी स्थित हैं।

"जो मनुष्य इस प्रकार वैदिक तथा तान्त्रिक क्रियायोग के द्वारा मेरी उपासना करता है, वह इस लोक और परलोक में मुझसे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है।

"मनुष्य को चाहिए कि वह सुदृढ़ मन्दिर का निर्माण कराये और उसमें प्रतिमा स्थापित करे। मन्दिर के साथ सुन्दर पुष्पों के उद्यान बनवाये। वह भूमि, दुकान, नगर और ग्राम दान कर दे जिससे कि नित्य की पूजा, पर्व की यात्रा और उत्सव लगातार करते रहें, ऐसा करने से उसे मेरे समान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

"मेरी मूर्ति की प्रतिष्ठा करने से मनुष्य सम्राट् का पद, मन्दिर का निर्माण कराने से त्रिलोकी का राज और पूजा करने से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। इन तीनों के द्वारा उसे मेरे समान पद प्राप्त होता है।

"जो निष्काम भाव से मेरी उपासना करता है, वह मुझे प्राप्त कर लेता है और जो इस भाँति क्रियायोग के द्वारा मेरी उपासना करता है, उसे मेरी प्राप्ति होती है।

"जो अपनी दी हुई अथवा दूसरों की दी हुई देवता और ब्राह्मणों की सम्पत्ति का हरण करता है, वह विष्ठा का कीड़ा बनता है और करोड़ों वर्षों तक कीड़ा ही बना रहता है।

"इस पाप को करने वाले को दूसरे जन्म में जो फल मिलता है, वही फल उनको भी मिलता है जो उसे इस कार्य में सहायता, प्रेरणा अथवा अनुमोदन करते हैं; क्योंकि वे इस कार्य के भागीदार हैं। पाप की मात्रा अधिक होने से उसी अनुपात से दण्ड भी अधिक मिलता है।

"इसके (प्रतिमा स्थापन, मन्दिर निर्माण आदि) कर्ता को जो फल प्राप्त होता है, वही फल ऐसे कामों में सहायता, प्रेरणा अथवा अनुमोदन करने वाले को भी प्राप्त होता है; क्योंकि सबने ही अपना महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया है। परलोक में उनकी देन के अनुसार ही उन्हें फल भी अधिक या कम मिलता है।"

ज्ञान-योग

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : "यह जान कर कि इस सारे जगत् का उपादान एक परमात्मा ही है और एक ही प्रकृति और पुरुष इसमें व्याप्त है और पुरुष प्रकृति से स्वरूपतः एक है— मनुष्य को किसी दूसरे व्यक्ति के स्वभाव और कर्म की न तो प्रशंसा करनी चाहिए और न निन्दा ही।

"जो पुरुष दूसरों के स्वभाव और उनके कर्मों की प्रशंसा अथवा निन्दा करते हैं, वे जगत् को सत्य मानने लग जाते हैं और अपने परमार्थ-साधन से च्युत हो जाते हैं। वे शीघ्र ही भटक जाते हैं। मन को गलत दिशा में ले जाने के कारण वह विपथ-गामी हो जाता है।

"ये इन्द्रियाँ राजस अहंकार के कार्य हैं। जब वे निद्रा के वशीभूत हो जाती हैं, तब जीव अपनी बाह्य चेतना खो देता है और झूठे सपने देखता है अथवा मृत्यु के समान प्रगाढ़ निद्रा का अनुभव करता है। वैसे ही वह मनुष्य भी करता है जो वस्तुओं में भेद अथवा नानात्व के दर्शन करता है। वह अज्ञान के कारण अपने अन्दर शाश्वत आत्मा का अनुभव नहीं करता है।

"कौन-सी वस्तु भली है और कौन-सी बुरी और किस मात्रा तक वह भली या बुरी है ? इस प्रकार के प्रश्न द्वैत में उठते ही नहीं; क्योंकि द्वैत स्वयं ही असत् है। जिसने आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लिया है और जो सर्वत्र एक ही आत्मा के दर्शन करता है, उसके लिए इस संसार में क्या भला है, क्या बुरा और क्या सत् ? जो वस्तुएँ वाणी से कही जा सकती हैं अथवा मन से सोची जा सकती हैं, वे सभी मिथ्या हैं।

"छाया, प्रतिध्वनि और रज्जु में सर्प का आभास आदि यद्यपि सर्वथा मिथ्या है, फिर भी वे कुछ-न-कुछ प्रभाव रखती हैं। वैसे ही देहादि वस्तु भी मृत्यु अथवा शरीर के प्रकृति में विलय तक भय आदि का संचार करती है।

'यह आत्मा ही विश्व बनता है और वही बनाता भी है। वही इसका रक्षक भी है और वही रक्षित भी है। वही इसका संहार करता है और वही लय भी होता है। ब्रह्म ही जगत्-सा प्रतीत होता है, जैसे रस्सी सर्प मालूम पड़ती है।

"आत्मा अथवा ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु नहीं है। आत्मा की आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—ये तीनों प्रतीतियाँ सर्वथा निर्मूल हैं। त्रिगुणमयी त्रिविधता माया का ही कार्य है। प्रकृति की यह त्रिविधता माया और तीनों गुणों की सृष्टि है।

"मैंने जिस ज्ञान और विज्ञान का वर्णन किया है, उसे जो पुरुष जान लेता है, वह न तो किसी की प्रशंसा करता है और न निन्दा ही। वह जगत् में सूर्य के समान भेद-भाव रहित हो विचरण करता है (सूर्य गंगा जी के पवित्र जल और गन्दी नालियों को, राजप्रासादों और झोपड़ी को समभाव से ही प्रकाशित करता है)।

"प्रत्यक्ष, अनुमान, शास्त्र और आत्मानुभूति द्वारा यह जान कर साद्यन्त वस्तुएँ असत् होती हैं, मनुष्य को राग-रहित हो इस संसार में विचरण करना चाहिए।"

उद्धव जी ने कहा: "यह जन्म-मृत्यु-रूप संसार स्वयं-प्रकाश आत्मा, द्रष्टा को नहीं और न यह (अनात्मा) शरीर, दृश्य को है। तब यह किसे होता है?

"आत्मा अव्यय, गुणों से रहित, शुद्ध, स्वयं-प्रकाश, सबसे अप्रकट है। वह अग्नि के समान प्रकाशित करने वाला है। परन्तु शरीर जड़ है। अतः इन दोनों में से जन्म - मृत्यु रूप संसार किसको है? एक तो यन्त्र चालक है और पुर्जा है। जन्म - मृत्यु - रूप संसार इन दोनों में से किसी को भी नहीं हो सकता। तब यह होता कैसे है ?"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा "जब तक आत्मा और शरीर, इन्द्रियों और प्राणों का सम्बन्ध है, तब तक अविवेकी पुरुष को यह सत्य मालूम होता है। जब तक ज्ञान-कर्मेन्द्रियाँ मन को बाहर ले जाती हैं, तब तक भ्रान्ति और अज्ञान के कारण जन्म - मृत्यु की श्रृंखला बनी ही रहती है।

"यद्यपि इस संसार का अस्तित्व नहीं है; किन्तु जो विषयों का चिन्तन करते रहते हैं, उनके लिए संसार का अस्तित्व नहीं मिटता, जैसे कि स्वप्न के दुःखद अनुभव।

"निद्रित व्यक्ति को ही स्वप्न के अनुभव दुःखदायी होते हैं, परन्तु जो जग रहा है, उसे वे भ्रम में नहीं डाल सकते। उसी भाँति अज्ञान ही मोह उत्पन्न कर मनुष्य जन्म-मृत्यु-रूप संसार की रचना करता है। आत्म-साक्षात्कार होने पर वह मुक्त हो जाता है और यह मोह जाता रहता है। के

"शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा और जन्म-मृत्यु —ये अहंकार के सम्बन्ध में दृष्टिगोचर होते हैं, आत्मा में नहीं।

"मनुष्य शरीर से आसक्त हो कर देह, इन्द्रिय, प्राण और मन को अपना स्वरूप मान बैठता है। वह उनमें निवास करता है और 'जीव' बन जाता है। वह गुण और कर्मों का बना हुआ लिंग-शरीर धारण करता है और काल-रूप ईश्वर के अधीन हो कर संसार में भटकता फिरता है और सूत्र, महत् आदि नामों से पुकारा जाता है।

"मुनि जन गुरुदेव से प्राप्त ज्ञान- खड्ग को गुरु सेवा से तीक्ष्ण बना कर इस अहंकार का आमूल उच्छेदन कर डालते हैं जो कि मन, वाणी, प्राण और शरीर में व्याप्त है और अनासक्त हो कर संसार में विचरते रहते हैं।

"विवेक ही ज्ञान है। इसकी प्राप्ति वेद और शास्त्रों के स्वाध्याय, तपस्या, अपरोक्षानुभूति, उपदेश आदि से होती है। इस संसार के आदि में जो था और अन्त में भी जो रहेगा, वही मध्य में भी रहता है। वह मूल कारण और प्रकाशक काल-रूप परमात्मा है। यही ज्ञान है।

"जैसे विविध आभूषणों में, जब वे आभूषण के रूप में रहते हैं तब भी, जब वे आभूषण नहीं बने थे उस समय भी और जब वे आभूषण के रूप में नहीं रहेंगे, उस काल भी सोना ही रहता है। इस भाँति इस जगत् के आदि, मध्य और अन्त में मैं ही हूँ।

"ब्रह्म ही विशुद्ध विज्ञान है। तीन अवस्थाओं के कारण तीन गुण हैं। तुरीय जो इन तीनों से परे है, वही सत्य है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- इन तीनों अवस्थाओं में कर्ता एक ही है। जब वह जागता रहता है तब वह स्वप्न नहीं देख सकता। जब एक अवस्था होती है तो इतर दोनों अवस्थाओं का अभाव रहता है। तर्क और प्रमाणादि के द्वारा आपको ज्ञान होगा कि ब्रह्म ही सत्य है।

"जो आदि और अन्त में नहीं रहता, वह मध्य में भी नहीं रहता। यह नाम मात्र ही है। जिससे जो पदार्थ बनता है और जिसके द्वारा प्रकाशित होता है, उसी का अस्तित्व कहा जा सकता है। यही मेरा मत है। जिसका नाम और रूप है और जो मन की पहुँच के अन्दर है, वह सब मिथ्या ही है। इस विकारमय जगत् का पहले अस्तित्व नहीं था। यह रजोगुण का कार्य है। यह ब्रह्म का ही विस्तार है। ब्रह्म के कारण ही इसकी प्रतीति होती है। ब्रह्म अपने-आपमें ही स्थित है। वह स्वयं प्रकाश है। वह दूसरों को प्रकाशित करता है। ब्रह्म ही इन्द्रिय, उनके विषय, तन्मात्राएँ, मन और पंचभूत तथा उनके अधिष्ठाता देव के रूप में प्रकट होता है।

“विवेक, स्वाध्याय, तपस्या तथा नाम-रूप के निषेध द्वारा आत्मा के विषय के सम्पूर्ण सन्देहों का निवारण कर मुनि को अपने आनन्द-स्वरूप आत्मा में मग्न हो जाना चाहिए और सब प्रकार की विषय-वासनाओं से अलग रहना चाहिए।

"शरीर आत्मा नहीं है; क्योंकि यह शरीर भौतिक है। इन्द्रिय, उनके देवता, प्राण, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, इन्द्रियों के विषय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और प्रकृति आत्मा नहीं है; क्योंकि ये सब जड़ हैं।

"जिसने मेरे स्वरूप को जान लिया है, उसको इन त्रिगुणात्मक इन्द्रियों के नियन्त्रण से लाभ ही क्या? और, यदि वे बहिर्मुखी हैं तो उनसे उसे हानि ही क्या है? बादल घिर आयें अथवा तितर-बितर हो जायें, इससे सूर्य को क्या ?

"जिस तरह आकाश वायु, जल, पृथ्वी अथवा ऋतु के गुणों से प्रभावित नहीं होता है, उसी प्रकार यह कूटस्थ आत्मा भी जन्म-मृत्यु-दायक सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण से प्रभावित नहीं होता है। वह इनसे सर्वथा परे है।

“फिर भी अनन्य भक्ति के द्वारा जब तक राग तथा मन के मल पूर्णतः निर्मूल न हो जायें, तब तक मनुष्य को माया-निर्मित इन विषयों के सम्पर्क से बचना चाहिए।

"जब तक रोग भली-भाँति दूर नहीं हो जाता है, तब तक बारम्बार कष्ट देता रहता है; उसी तरह जिस मन की वासनाएँ और कर्म-संस्कार पूर्णतः भस्म नहीं हो गये हैं, वह विषयों में आसक्त अपूर्ण योगी को बेधता रहता है और उसका पतन भी लाता है।

'मित्र, सम्बन्धी और शिष्यादि के रूप में देवताओं द्वारा प्रेरित बाधाओं के कारण पथ भ्रष्ट हुआ अपूर्ण योगी पूर्वाभ्यास के कारण अपने आगामी जन्मों में योगाभ्यास में ही लग जाता है। वह प्रवृत्ति-मार्ग को नहीं ग्रहण करता है।

"प्राणी पूर्व संस्कारों से प्रेरित हो कर आजीवन किसी-न-किसी कर्म में ही प्रवृत्त रहता है और विकारों को प्राप्त होता रहता है। परन्तु योगी जो आनन्द-स्वरूप आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है, वह शरीर में स्थित रहने पर भी विषय-वासना और तृष्णा से मुक्त रहता है और कर्मों से प्रभावित नहीं होता।

"जिसने अपने चित्त को आत्मा में स्थित कर लिया है, वह चाहे खड़ा हो, बैठा हो, चलता हो, सोया हो, खाता हो अथवा और कोई स्वाभाविक कर्म करता हो, उसे अपने शरीर की चेतना नहीं रहती है।

'ज्ञानी पुरुष यदि बाह्य विषयों को देखता भी है तो वह उन्हें सत् अथवा अपनी आत्मा से भिन्न नहीं मानता है; क्योंकि युक्तियों, प्रमाणों और विवेक के द्वारा वह पहले ही निषेध कर चुका है जैसे निद्रा से उठा हुआ मनुष्य स्वप्न के पदार्थों की परवाह नहीं करता है।

"जो मनुष्य बन्धन में है, उसको गुणों तथा कर्मों से निर्मित शरीर अज्ञान के कारण आत्मा से भिन्न नहीं जान पड़ता । ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेने पर वे निवृत्त हो जाते हैं; परन्तु न तो आत्मा का ग्रहण होता है और न त्याग ही ।

"जैसे सूर्य उदय हो कर मनुष्यों के नेत्रों के सामने से अन्धकार का आवरण दूर कर देता है, किसी नयी वस्तु का वह निर्माण नहीं करता है। उसी तरह मेरे स्वरूप का ज्ञान पुरुष की बुद्धि से अज्ञान का आवरण नष्ट कर देता है।

"यह आत्मा स्वयं प्रकाश, अज, अप्रमेय, चेतन, सर्वज्ञ, अद्वितीय, अखण्ड, वाणी से परे तथा वाणी एवं प्राणादि का प्रवर्तक है।

"अज्ञान तभी तक रहता है जब तक कि अद्वितीय आत्मा में विविधता की कल्पना बनी रहती है; क्योंकि आत्मा ही इस भ्रम का अधिष्ठान है।

"जब मन यह विकल्प कर लेता है कि द्वैत है, तो भ्रम की उत्पत्ति होती है। वास्तव में आत्मा ही सत् है। द्वैत की भावना सर्वथा निर्मूल है।

"अपने पाण्डित्य पर गर्व करने वाले कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि विभिन्न नाम और रूप में ग्रहण किया जाने वाला यह पंचभौतिक द्वैत ही युक्तियुक्त और सत्य है। वे वेदान्तिक दृष्टि को अर्थवाद मानते हैं; किन्तु तत्वज्ञानियों की ऐसी धारणा नहीं है।

"यदि किसी अपरिपक्क योगी का शरीर साधना-काल में ही रोगादि उपद्रवों के कारण साधना के अयोग्य को जाये, तो उसके लिए निम्नांकित निदान हैं:

“उसे यौगिक धारणा द्वारा कुछ व्याधियों को भस्म कर डालना चाहिए। चन्द्रमा तथा सूर्य पर धारणा के द्वारा गर्मी और शीत पर विजय पानी चाहिए। कुछ रोगों को प्राणायाम-युक्त आसनों द्वारा दूर करना चाहिए और कुछ दूसरों को तपस्या, मन्त्र और औषधि के द्वारा नष्ट करना चाहिए।

“उसे कुछ विघ्नों को मेरे चिन्तन, नाम-स्मरण और कीर्तन द्वारा जीतना चाहिए और कुछ (मद, अहंकारादि) को सिद्ध योगियों की सेवा द्वारा दूर करना चाहिए।

"कुछ योगी विविध उपायों द्वारा इस शरीर को बलवान् तथा अक्षय युवा बना करके केवल सिद्धियों की प्राप्ति के लिए योगाभ्यास करते हैं। बुद्धिमान् पुरुष इसका समर्थन नहीं करते; क्योंकि ऐसा प्रयास व्यर्थ ही है। वृक्ष में लगे फल के समान इस शरीर का एक न एक दिन पतन तो होना ही है।

"यदि नित्य के योगाभ्यास से योगी का शरीर सुदृढ़ तथा निरोग हो जाये, तो वह इन सिद्धियों में विश्वास करके अपनी साधना न छोड़ दे। वह ऐसा विश्वास न कर ले कि यह शरीर नित्य रहेगा। इस सिद्धि को वह जरा भी मूल्य न दे। वह उस योग का परित्याग करके मुझमें ही संलग्न रहे।

"जो योगी मेरा आश्रय ले कर और मुझे ही अपना सर्वस्व समझ कर इस योग का अभ्यास करता है और सारी कामनाओं का परित्याग कर देता है, वह विघ्न- बाधाओं से पराजित नहीं होता है। वह आत्मानन्द की अनुभूति प्राप्त करता है।”

भक्ति-योग

उद्धव जी ने कहा: “मैं समझता हूँ जिसने अपने मन और इन्द्रियों को वश में नहीं किया है, उसके लिए यह योग-साधना बहुत ही कठिन है। हे अच्युत! आप मुझे सरल शब्दों में लेता है। समझाइए कि मनुष्य किस उपाय से अनायास ही मोक्ष प्राप्त कर

"हे पुण्डरीकाक्ष ! अधिकांश योगी जब अपने मन को एकाग्र करने का प्रयास करते हैं, तब उन्हें अपने मन को वश में करने में अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

"मार्ग की कठिनाइयों एवं बाधाओं के कारण, मन का समत्व प्राप्त करने में असमर्थ रहने के कारण, मन का नियन्त्रण करने में असफल होने के कारण अथवा मन के साथ युद्ध करते-करते थक कर साधक निराश हो जाते हैं।

'अतएव, हे कमलनयन, हे विश्वेश्वर! हंस (सारासार का विवेक रखने वाले, केवल सारतत्त्व ग्रहण करने वाले—जैसे जल मिश्रित दूध से हंस केवल दूध को ही पीता है) सदा प्रसन्नता से आपके आनन्ददर्शी चरण-कमलों का आश्रय लेते हैं। आपके भक्तों को माया स्पर्श नहीं करती है; अतः योगाभ्यास का अभिमान उनमें नहीं होता है।

"जिन्हें अपनी योग-साधना का अभिमान हो जाता है, उन्हें आपकी माया अपने वश में कर लेती है। अच्युत! आप सबके सुहृद हैं। आप अपने अनन्य शरणागत सेवकों के अधीन हो जायें, इसमें क्या कोई आश्चर्य की बात है ? क्योंकि यद्यपि आप विश्वेश्वर हैं और आपकी चरण पीठिका पर अपने दिव्य किरीटों को रगड़ते हुए ब्रह्मा, इन्द्रादि लोकेश्वर भी आपको साष्टांग नमस्कार करते हैं, फिर भी आपने राम के रूप में स्वेच्छा से बन्दरों और रीछों से मैत्री करना पसन्द किया। आप सबके स्वामी, आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं। आप अपने आश्रितों को वर देने वाले हैं। आप अपने भक्तों को जो कुछ देते हैं, उसे जान कर ऐसा कौन है जो आपको छोड़ देगा? कोई स्वर्गादि के सुखों को क्यों वरण करेगा, जिनसे आपकी विस्मृति हो जाती है? लौकिक अथवा पारमार्थिक सुख के लिए आपको छोड़ कर अन्य देवताओं की कौन उपासना करेगा? हम सब आपकी चरण-रज के उपासक हैं। हमारे लिए क्या अप्राप्य है ? हे प्रभो! आप समस्त प्राणियों के बाहर गुरु-रूप में और उनके अन्तःकरण में अन्तर्यामी के रूप में स्थित हो कर उनके सारे अशुभों को मिटा देते हैं और अपने स्वरूप को उनके प्रति प्रकट करते हैं। ज्ञानी लोगों को आपके स्मरण मात्र से आनन्द प्राप्त होता है, यदि वे ब्रह्मा के समान भी लम्बी आयु पायें, तब भी वे आपके उपकारों का बदला नहीं चुका सकते।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा : "मैं तुम्हें धर्म का मार्ग बतलाता हूँ, जिसका श्रद्धापूर्वक आचरण करने से मनुष्य मृत्यु को जीत सकता है और अमरत्व प्राप्त कर सकता है। मनुष्य को मेरे लिए ही सब काम करने चाहिए। वह सदा मेरा स्मरण करे, अपना मन और हृदय मुझे समर्पित करे और उसका मन मेरे धर्मों में रम जाये।

"वह ऐसे पवित्र स्थानों में रहे, जहाँ भक्त साधु जन निवास करते हों। मेरे भक्त चाहे देवता, राक्षस अथवा मनुष्य—कोई भी हैं, वे जैसा आचरण करते हैं, वैसे ही वह भी करे। "पर्व के अवसरों पर सबके साथ मिल कर अथवा अकेले ही नृत्य, गान आदि के आयोजन राजोचित वैभव के साथ करे। शुद्ध अन्तःकरण से वह मुझ आत्मा को ही समस्त प्राणियों और अपने हृदय में स्थित देखे। मैं आकाश के समान ही बाहर और भीतर हूँ तथा सर्वव्यापी एवं शुद्ध हूँ।

"वही मनुष्य ज्ञानी समझा जाता है, जो शुद्ध ज्ञान में स्थित है, सभी प्राणियों में मेरा दर्शन करता है और उनका सम्मान करता है तथा ब्राह्मण और चाण्डाल में, चोर और ब्राह्मण-भक्त में, सूर्य और भिखारी में, क्रूर और दयालु में एक मुझे ही देखता है।

" जो नित्य-निरन्तर सभी वस्तुओं में मेरी ही भावना करता है, वह स्पर्धा, घृणा, ईर्ष्या, तिरस्कार और अहंकार से मुक्त हो जाता है।

'अपने मित्र यदि हँसी करें तो उनकी ओर ध्यान न दे कर तथा देह-दृष्टि, जिसके कारण लज्जा मालूम होती है, को त्याग कर चाण्डाल, गौ, गधे और कुत्ते तक प्रत्येक प्राणी को पृथ्वी पर लेट कर साष्टांग प्रणाम करे।

"जब तक वह सम्पूर्ण प्राणियों को मेरा स्वरूप न मानने लग जाये, जब तक वह सबमें मेरा दर्शन न करने लग जाये, तब तक उसे मन, वाणी और कर्म के द्वारा इस भाँति मेरी उपासना करते रहनी चाहिए।

"जो पूर्वोक्त विधि से चिन्तन करता है, उसे सर्वत्र आत्मा के दर्शन करने से जो ज्ञान प्राप्त होता है, जिसके परिणाम स्वरूप उसके लिए सब कुछ ब्रह्म ही हो जाता है।

"सर्वत्र ब्रह्म के ही दर्शन करने से उसके सम्पूर्ण सन्देह जाते रहते हैं और वह समस्त कर्मों से उपराम हो जाता है। वह सम्पूर्ण बाह्य विषयों से अपने को समेट लेता है।

"सभी प्राणियों में एकमात्र मेरी ही सत्ता का अनुभव करना, समस्त प्राणियों को मन, वाणी और कर्म से मेरा ही स्वरूप समझना — इसको ही मैं अपनी उपासना का सर्वश्रेष्ठ साधन मानता हूँ।

"हे प्रिय उद्धव जी । जो कोई भी निष्काम भाव से मेरी उपासना करता है, वह न तो कभी पथ भ्रष्ट होता है और न उसकी कोई सेवा ही व्यर्थ जाती है। इस भागवत- धर्म का स्वल्प आचरण भी, इसका प्रारम्भ मात्र भी व्यर्थ नहीं जाता। भागवत-धर्म में भय का किंचित् मात्र भी स्थान नहीं है। यदि निरर्थक कर्म भी निष्काम भाव से मुझे समर्पित कर दिये जायें, तो वे धर्म ही बन जाते हैं। यह धर्म निर्गुण तथा निष्काम है; इसीलिए मैंने इसे सर्वोत्तम निश्चय किया है। धर्म का नियम यह है कि फलाकाक्षा से रहित हो कर्तव्य कर्मों का अनुष्ठान करने से श्रेय की प्राप्ति होती है। भय, शोकादि के कारण भागना, रोना-चिल्लाना आदि नगण्य कर्म भी निष्काम भाव से यदि मुझे समर्पित कर दिये जायें तो ये धर्म बन जाते हैं।

"विवेकियों का विवेक और बुद्धिमानों का चातुर्य इसी में है कि वे इस विनाशी एवं असत्य शरीर के द्वारा मुझ अविनाशी एवं सत्य-वस्तु को प्राप्त कर लें।

"मैंने तुम्हें पूर्ण ब्रह्म-विद्या को संक्षेप तथा विस्तार के साथ, समन्वयात्मक तथा विश्लेषणात्मक शैली से समझा दिया। यह देवताओं को भी सुगमतया बोधगम्य नहीं है। यही ब्रह्मविद्या का सार हैं।

"मैंने युक्ति एवं अनुभव के द्वारा ज्ञान का पथ स्पष्ट रूप से तुम्हें दिखला दिया। जो इसको जान लेता है, उसके सारे संंशय नष्ट हो जाते हैं और वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

"तुम्हारे और मेरे इस संवाद में, तुम्हारे प्रश्न और मेरे उत्तर में, वेदों का रहस्य भरा पड़ा है। जो पुरुष इसको पढ़ेगा और समझेगा, वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

"जो पुरुष इस संवाद को मेरे भक्तों को स्पष्ट रूप से समझायेगा, उसे अवश्य ही मेरी कृपा प्राप्त होगी और वह मुझमें तल्लीन हो जायेगा। उसे ब्रह्म का पूर्ण और स्पष्ट ज्ञान होगा। मैं उसके प्रति अपने को प्रकट कर दूँगा।

"जो पुरुष प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस परम पवित्र एवं पावनकारी संवाद का पाठ करेगा और इस ज्ञान-दीप द्वारा दूसरों को मेरा दर्शन करायेगा, वह पवित्र हो जायेगा ।

"जो नित्यप्रति इसे श्रद्धापूर्वक सुनेगा, उसे मेरी भक्ति की प्राप्ति होगी और वह कर्म - बन्धन में नहीं पड़ेगा।

"हे प्रिय सखा उद्धव ! क्या तुमने ब्रह्म का स्वरूप भली-भाँति समझ लिया ? क्या तुमने ब्रह्म को दृढ़ रूप से ग्रहण कर लिया? क्या तुम्हारे सन्देह दूर हो गये ? क्या तुम्हारा कष्टदायक शोक जाता रहा ?

"तुम इसका उपदेश दाम्भिक, नास्तिक, शठ, अश्रद्धालु, भक्तिभाव-हीन तथा अविनीत को न करना।

"जो पुरुष इन दोनों से मुक्त है, जो ब्राह्मण-भक्त है, जो साधु एवं पवित्र है, जो भक्तिभाव सम्पन्न है— चाहे वह शूद्र अथवा स्त्री ही क्यों न हो, उसी को इसका उपदेश करना।

"जब इसे जान लिया, तो फिर जिज्ञासु के लिए कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है, जैसे जिसने अमृत-सुधा का पान कर लिया, उसको फिर किसी दूसरी वस्तु के खाने-पीने की वासना नहीं रहती।

"मनुष्य को ज्ञान, कर्म, योग और राज्य शासन से जिन पदार्थों की प्राप्ति होती है वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूप फल तुम्हारे लिए मैं ही हूँ।

"जिस समय मनुष्य सम्पूर्ण कर्मों का परित्याग कर देता है और मुझे आत्मार्पण करता है, मैं उसको श्रेष्ठ बना देता हूँ। तब वह अमृतत्व प्राप्त कर लेता है और मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेता है।"

उद्धव जी ने कहा : "हे ब्रह्मा के मूल कारण! जिस मोह के महान् अन्धकार में मैं पड़ा हुआ था, आपकी उपस्थिति में वह पूर्णतः जाता रहा। भला जो व्यक्ति अग्नि के पास खड़ा हो, उसको शीत, अन्धकार और भय क्या पीड़ित कर सकते हैं?

'आपने कृपा करके अपने सेवक मुझको ज्ञान-दीप दे दिया है। भला ऐसा कौन होगा जो आपकी कृपा को जानते हुए आपके चरण-कमलों को छोड़ कर किसी दूसरे की शरण ले ?

'आपने आत्म-ज्ञान की तलवार से दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्वतवंशी यादवों के प्रति मेरे उस सुदृढ़ पाश को काट डाला है, जिसे सृष्टि-वृद्धि के लिए आपकी माया ने फैला रखा था।

"हे योगेश्वर! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझ शरणागत को आप कृपा करके अपने चरण-कमलों में अविचल एवं अक्षय भक्ति प्राप्त करने का उपाय बतलाइए। कृपा करके मुझे ऐसा मार्ग बतलाइए जिससे मेरा चित्त भविष्य में भी आपके चरणों की भक्ति में लीन रहे।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "उद्धव जी ! तुम मेरी आज्ञा से मेरे आश्रम बदरी को चले जाओ। वहाँ मेरे चरणों से निकली हुई पवित्र अलकनन्दा के दर्शन से अपने दोषों और पापों को दूर कर डालो। उसके स्पर्श तथा उसमें स्नान से तुम पवित्र हो जाओगे। वृक्षों के वल्कल-वस्त्र धारण करना, वन के कन्दमूल खाना, सांसारिक पदार्थों तथा सुखों की वासना का परित्याग कर दो। शीतोष्ण आदि कठिनाइयों को सहना । शान्त एवं सौम्य रहना । इन्द्रियों को वश में रखना। आत्मा में चित्त को स्थित करना । ज्ञान और विज्ञान से सम्पन्न हो कर जो कुछ तुमने मुझसे सीखा है, उसे चिन्तन एवं अनुभव करना। मेरे भागवत-धर्म में निरत रहना। अपना मन, हृदय और वाणी मुझमें लगाये रखना। तब तुम तीनों गुणों की गतियों को पार कर मुझ परमात्मा को प्राप्त करोगे।"

उद्धव को भगवान् के प्रति इतना प्रेम था कि वे उनसे विलग होने में असमर्थ थे। वे शोक से कातर हो गये। वे श्रीकृष्ण से अलग नहीं हो सकते थे। अन्त में उन्होंने भगवान् को बार-बार नमस्कार किया, उनकी चरण पादुकाओं को अपने शिर पर रख कर बदरी के लिए चल पड़े।

भगवान् को अपने हृदय में आसीन कर परम भक्त उद्धव जी विशाला (बदरिकाश्रम) पहुँचे और वहाँ भगवान् के उपदेशों का पूर्णतः पालन कर भगवान् स्वरूप में लीन हो गये। के

जिन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा योगी जन करते रहते हैं, उन्होंने ही अपने प्रेमी भक्त उद्धव को इस ज्ञानामृत का दान किया। यह आनन्द-सागर का सार है। जो कोई श्रद्धा के साथ इसका सेवन करता है, वह संसार से मुक्त हो जाता है और अपने सत्संग से संसार को भी मुक्त करता है।

मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ, जो सारे जगत् के मूल कारण हैं, जो वेदों को प्रकट करने वाले हैं, जिन्होंने अपने भक्तों को संसार से मुक्त करने के लिए यह ज्ञान और विज्ञान-रूप वेदों का सार निकाला है, जैसे कि उन्होंने समुद्र से अमृत निकाला था और अपने भक्तों और दासों को पिलाया था।

तृतीय अध्याय

भागवत-धर्म

भागवत-पथ

एक दिन देवर्षि नारद जी भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव जी के यहाँ पधारे। वसुदेव जी ने उनकी पूजा की तथा उनसे यह बात कही : ब्रह्मन् ! मुझे इस भागवत-धर्म के विषय में उपदेश कीजिए जिससे भगवान् प्रसन्न होते हैं और जिसको श्रद्धापूर्वक सुनने तथा निष्कपट भाव से आचरण करने से मनुष्य इस जन्म-मृत्यु-रूप भयावह संसार से मुक्त हो कर नित्य सुख प्राप्त करता है।

नारद जी ने कहा : हे नरश्रेष्ठ! आपका यह निश्चय बहुत ही सुन्दर है। यह भागवत-धर्म सारे विश्व को पवित्र करने वाला है। इसके श्रवण, पठन और मनन से, इसका आचरण करने तथा अनुमोदन करने से मनुष्य सद्यः पाप मुक्त हो जाता है, चाहे उसने कितना ही जघन्य पाप क्यों न किया हो। आज आपने मुझे परम कल्याणकारी भगवान् नारायण का स्मरण करा दिया है, जिनका नाम-श्रवण अथवा कीर्तन करने से परम पुण्य की प्राप्ति होती है।

मैं इस सम्बन्ध में विदेह के महाराज और ऋषभ के पुत्र नौ योगीश्वरों के संवाद का प्राचीन इतिहास आपसे कहूँगा।

स्वायम्भुव मनु के एक पुत्र प्रियव्रत थे। इनके पुत्र नाभि हुए। नाभि के पुत्र ऋषभ हुए। ये ऋषभ नारायण के अंश थे। मोक्ष-धर्म का उपदेश करने के लिए उन्होंने अवतार लिया था। उनके सौ पुत्र हुए, जो सभी वेदों के पारगामी थे। उनमें भरत सबसे बड़े थे। वे भरत नारायण के परम भक्त हुए। इन्हीं के नाम से यह देश भारतवर्ष कहलाया। कुछ काल तक इस भूमि पर राज्य करने के पश्चात् उन्होंने राज्य का परित्याग कर दिया और तपस्या तथा भगवान् की उपासना की और तीन जन्मों में वे भगवान् को प्राप्त हुए।

ऋषभ के सौ पुत्रों में से नौ पुत्र संन्यासी हो गये। वे ब्रह्म-विद्या में निपुण थे। उनके नाम थे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, ट्रमिल, चमस और करभाजन।

वे इस व्यक्त-अव्यक्त जगत् को भगवद्-रूप तथा अपनी आत्मा से अभिन्न अनुभव करते थे। वे जब और जहाँ जाना चाहते थे, जा सकते थे। वे देवता, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग, चारण, विद्याधर आदि के लोकों में स्वच्छन्द विचरते रहते थे।

इस प्रकार विचरण करते हुए एक बार वे भारतवर्ष में वहाँ आ पहुँचे, जहाँ महात्मा निमि एक महान् यज्ञ कर रहे थे।

राजा निमि ने उनको आसनों पर बिठाया तथा विधिवत् पूजा आदि करने के पश्चात् यह बात कही : यह मानव-शरीर बहुत दुर्लभ है। यह क्षणभंगुर भी है। भगवान् के भक्तों से मिलना तो बहुत ही कठिन है। इस संसार में आधे क्षण का सत्संग भी मनुष्यों के लिए परम निधि है, अतः इस अवसर से लाभ उठा कर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि यदि आप हमें सुनने का अधिकारी समझते हों तो आप कृपा करके हमें भागवत-धर्म का उपदेश करें जिससे भगवान् सुगमतया प्रसन्न होते हैं और अपने भक्तों को अपने-आप तक को दे डालते हैं। आप हमें उस निःश्रेयस को प्राप्त कराने वाले धर्म का उपदेश करें।

कवि का उपदेश

कवि ने कहा : भगवान् अच्युत के चरणों की उपासना ही परम कल्याण को प्राप्त कराती है। जो लोग इस तुच्छ शरीर को शुद्धात्मा समझ कर मोह में पड़े हुए हैं, उस भगवान् अच्युत के चरण-कमलों का निरन्तर ध्यान तथा सेवा उनको समस्त भयों से मुक्त कर देते हैं। भागवत-धर्म सभी वस्तुओं में सर्वत्र नारायण की सत्ता का अनुभव करने तथा परम आनन्द एवं मुक्ति प्राप्त करने की शिक्षा देता है। उन धर्मों को मुझसे पूर्णतया जान लो जिनके अनुष्ठान से भगवान् प्रसन्न होते हैं और उनकी प्राप्ति होती है। इनको भगवान् ने अज्ञानी पुरुषों को अपनी प्राप्ति के लिए स्वयं बतलाया था। भागवत-धर्म के आचरण से मनुष्य विघ्नों से पीड़ित नहीं होता है जैसा

कि योग-मार्ग में है। इस मार्ग में पथ-भ्रष्ट होने के भय बिना, यह जाने बिना कि वह कहाँ जा रहा है और क्या कर रहा है, मनुष्य आँखें बन्द किये हुए दौड़ सकता है। वह संसार के अन्धकारमय गर्त में पुनः पतित नहीं होता है। जिस भक्त ने भगवान् की कृपा प्राप्त कर ली है, वह कभी भी शोक सन्तप्त नहीं होता। जो-कुछ भी वह शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, अहंकार से अथवा स्वभाव से करे, वह सब भगवान् नारायण की सेवा में समर्पित कर दे। अहंकार का अशेष परित्याग, सारे काम भगवान् के सेवक के रूप में करना तथा उनकी कृपा पर पूर्ण रूप से आश्रित रहना—यही भागवत-धर्म का रहस्य है। वह सारे कर्मों के फल तथा उनके कर्तृत्व की भावना भगवान् को ही अर्पित कर दे। श्रद्धा और विश्वास के द्वारा आप उनकी सर्वव्यापकता का अनुभव कर सकते हैं।

द्वैत-भावना ही सारे भय का कारण है। द्वैत-भावना के ही कारण जीव शरीर तथा दूसरे असत् पदार्थों को अपना स्वरूप मान लेता है, अहंकार अथवा भगवान् से अलग होने के विचार का पोषण करता है, भगवान् से विमुख बन जाता है तथा वह आत्म-विस्मृत हो जाता है। भगवान् की माया ही इसका कारण है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह भगवान् का सच्चा भक्त बने, भगवान् की कृपा पर ही पूर्णतया आश्रित रहे तथा भगवान् को ही अपना सखा, गुरु और ईश्वर समझे। ईश्वर से विमुख पुरुष भगवान् को भुला देता है। तब उसमें यह भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि 'मैं यह शरीर हूँ।' यह भ्रम भगवान् की माया के कारण होता है। द्वैत के विचार से ही भय उत्पन्न होता है; अतः बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह भगवान् का अनन्य एवं अक्षुण्ण भक्ति से भजन करे। वह अपने गुरु को ईश्वर अथवा आत्मा ही जाने। उसे अपने गुरु और भगवान् में निष्कपट भक्ति होनी चाहिए।

यद्यपि यह विविधतामय जगत् वास्तव में नहीं है; परन्तु स्वप्न की भाँति इसकी प्रतीति इसका चिन्तन करने वाले को मन के कारण होती है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह अपने मन का नियन्त्रण करे; क्योंकि मन से ही इस नानात्वपूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है। भक्त को भगवान् की अवतार-लीलाओं का निरन्तर श्रवण, उनके गुणों और नामों का जोरों से गायन करते रहना चाहिए। वह लोगों की निन्दा अथवा उपहास की चिन्ता किये बिना आसक्ति-रहित हो कर इस संसार में विचरण करे।

जो भक्त भगवान् की निरन्तर सेवा करता है और अपने प्रियतम हरि के नाम-गायन से जिसमें भगवान् के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया है, भक्ति-भाव से द्रवित हृदय हो वह हँसता, रोता, गाता और नाचता है। उसका मन भावातिरेक में डूब जाता है और उसे बाह्य पदार्थों का भान ही नहीं होता। वह दृश्य जगत् की सुध-बुध खो कर अकेला भगवान् के साथ विचरण करता है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी में ग्रह-नक्षत्रों में; प्राणी, दिशा, वृक्ष, नदी, झील तथा सागर में वह सर्वत्र भगवान् हरि के रूप का ही दर्शन करता है और उन्हें प्रणाम करता है।

जो इस प्रकार भगवान् का भजन करता है और उनकी शरण ले लेता है, उसे भगवान् के प्रति प्रेम, अनुभव तथा वैराग्य–इन तीनों की प्राप्ति एक-साथ हो जाती है जैसे कि भोजन करने वाले को भोजन करने के साथ ही

तुष्टि, पुष्टि और क्षुधा- निवृत्ति–तीनों हो जाती हैं। अन्त में भागवत परम शान्ति अथवा मोक्ष को प्राप्त कर है। वह किसी प्राणी से घृणा नहीं करता। वह सबका मित्र होता है। उसका चित्त सदा भगवान् के चरण-कमलों में लगा रहता है। वह सदा पवित्र रहता है। उगते हुए सूर्य के समान वह अपनी चरण रज से समस्त जगत् को पवित्र बनाता है।

हरि का उपदेश

तब निमि ने पूछा : भागवत के लक्षण क्या है? वह किन चिह्नों से पहचाना जाता है? वह दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करता है? वह कैसे बोलता है? वह क्या बोलता है? वह कैसा आचरण करता है? उसके दूसरे और क्या लक्षण हैं, जिनसे वह इस संसार में स्पष्ट रूप से पहचाना जा सके ?

हरि ने उत्तर दिया वही परम भागवत है जो समस्त प्राणियों को ब्रह्म ही समझता है और उन्हें अपनी आत्मा में, जो कि वास्तव में ब्रह्म ही है, स्थित देखता है। जो जड़-चैतन्य समस्त प्राणियों में भगवान् के वैसे ही दर्शन करता है जैसे कि अपनी आत्मा में और समस्त प्राणियों को भगवान् में और अपनी आत्मा में स्थित देखता है, वह सर्वश्रेष्ठ भक्त है।

जो भगवान् से प्रेम, उनके भक्तों और शरणागतों से मित्रता, अज्ञानियों पर कृपा तथा अपने शत्रुओं और भगवान् की निन्दा करने वालों की उपेक्षा करता है, वह मध्यम कोटि का भक्त है।

जो भगवान को केवल मूर्तियों में स्थित मान कर उनकी पूजा-अर्चा करता है। भगवान् तथा उनके भक्तों एवं दूसरे प्राणियों में उनकी उपासना नहीं करता, वह साधारण श्रेणी का भक्त है। जो भगवान् की केवल मन्दिरों में ही उपासना करता है; परन्तु भगवान् के दूसरे रूपों के उपासकों के प्रति उदार नहीं है तथा भगवान् की सर्वव्यापकता का अनुभव नहीं करता, वह प्रारम्भिक श्रेणी का भक्त है।

वह पुरुष उत्तम भागवत है, जो इन्द्रियों के द्वारा विषयों का ग्रहण तो करता है; परन्तु (इच्छा के प्रतिकूल) विषयों से न तो द्वेष करता है और न (अनुकूल) विषयों से हर्षित हो जाता है। वह इस जगत् को विष्णु की माया के रूप में देखता है।

वह पुरुष उत्तम भागवत है, जो भगवान् हरि के ध्यान की शक्ति से जन्म, मृत्यु, क्षुधा, पिपासा, भय, कष्ट आदि जीवन के विकारों से प्रभावित नहीं होता है; क्योंकि ये शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि को ही प्राप्त होते हैं। पूर्ण भक्त यह जानता है कि जन्म और मृत्यु कर्मजात शरीर के ही हैं तथा क्षुधा और पिपासा प्राणों के धर्म हैं। वह यह भी जानता है कि मन ही भेद-भाव और अहंकार की सृष्टि करता है जिससे भय उत्पन्न होता है और जीव भगवान् के साथ अपने सम्पर्क को खो बैठता है। वह जानता है कि बुद्धि वासना और तृष्णा को तथा इन्द्रियाँ सुख-दुःख के भाव को उत्पन्न करती हैं। पूर्ण भक्त इनसे सर्वथा असंग रह कर भगवान् की स्मृति में ही सदा तन्मय रहता है। और भगवान् को अपने से अभिन्न मानता है।

वह पुरुष उत्तम भागवत हैं, जिसके हृदय में वासना और कर्म के बीज नहीं हैं और जिसके लिए भगवान् वासुदेव ही एकमात्र शरण हैं; क्योंकि वह सम्पूर्ण कर्मों को अहंकार रहित हो भगवान् की अर्चा के रूप में ही करता है और क्योंकि उसका चित्त सदा भगवान् में ही निवास करता है, अतः उसके कर्म नये संस्कार उत्पन्न नहीं करते और वह जन्म-मृत्यु से मुक्त हो जाता है।

वह भगवान् का प्रिय है, जिसे अपने शरीर में अहंभाव नहीं है तथा जो जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम और जाति के कारण अपने को श्रेष्ठ नहीं मानता है।

उत्तम भागवत में सम्पत्ति अथवा शरीर के प्रति अपना और पराया का भेद-भाव नहीं रहता। वह सभी प्राणियों को समदृष्टि से देखता है। उसका मन सदा शान्त रहता है।

वह पुरुष उत्तम भागवत है, जो त्रिभुवन के वैभव के लिए भी भगवान् का विस्मरण नहीं करता तथा जो भगवान् के उन चरण कमलों को पल मात्र के लिए भी नहीं भुलाता, जिनको कि देवता और दूसरे लोग ढूँढ़ते रहते हैं।

तीन डगों में सारी वसुन्धरा को मापने वाले भगवान् के चरणों की अँगुली के नख की मणि चन्द्रिका से जिन भक्तों के हृदय का सन्ताप एक बार दूर हो चुका है. उनमें वह पुन: कैसे आ सकता है? चन्द्रोदय होने पर सूर्य का ताप कैसे रह सकता है? जैसे जब चन्द्रमा उदय हो कर संसार को अपनी शीतल किरणों से परिप्लावित कर देता है, तब मनुष्य को सूर्य के ताप का स्मरण नहीं रहता है, वैसे ही वह भक्त भी, जो भगवान् के चरण कमलों का नित्य ध्यान करता है, संसार-ताप को पुन: कभी स्मरण नहीं करता क्योंकि उसकी वासनाएँ सदा के लिए नष्ट हो जाती है।

वह पुरुष श्रेष्ठ भागवत है, जिसका चित्त भगवान् के चरण कमलों से प्रेम और भक्ति की डोर से बँधा हुआ है। अनजाने में भी नामस्मरण करने पर अनेक पापों को नष्ट करने वाले भगवान् हरि उसका कभी भी त्याग नहीं करते।

दुःख अथवा आपत्ति में विवशतावश या स्वभाव के कारण अनायास ही भगवान् का नामोच्चारण सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर देता है। यदि ऐसी बात है, तो यह बात सहज ही में जानी जा सकती है कि प्रेम-रज्जु से बँधे हुए भगवान् जिसके हृदय में सदा निवास करते हैं, वह परम भागवत है।

अन्तरिक्ष का उपदेश (माया की शक्ति का निरूपण)

राजा निमि ने पूछा : यह भगवान् की माया का स्वरूप क्या है, जो कि बड़े-बड़े विद्वानों को, ज्ञानियों को भी मोहित कर देती है? भागवतीय ज्ञानपूर्ण आपकी वाणी संसार की ज्वाला से परितप्त मेरे लिए बहुत ही

शान्तिदायक तथा लाभकारी है। उसको सुनने से मैं कभी भी नहीं थक सकता। भगवान् के गुणों का वर्णन करने वाले आपके वचनामृत पान करने से मैं तृप्त नहीं हुआ। यही संसार के असह्य ताप और पीड़ा की एकमात्र औषधि है।

अन्तरिक्ष ने कहा भगवान् की माया वह शक्ति है जो जगत् की उत्पत्ति, पालन तथा विनाश का कारण है। अपनी इस माया-शक्ति के द्वारा ही भगवान् एक से अनेक हो जाते हैं। यही जीव के अज्ञान का कारण है, जिससे वह त्रिगुणातीत ब्रह्म को शरीरधारी और गुणों के अधीन मान लेता है।

सम्पूर्ण जगत् के मूल कारण, आदि पुरुष परमात्मा ने इन पाँच महाभूतों से छोटे-बड़े पदार्थ बनाये, जिनसे कि जीव अपने को ब्रह्म से अभिन्न अनुभव कर सके।

जीव को गुणों का उपभोग कराने के लिए वे उनमें प्रवेश कर गये। वे मन के पृष्ठभाग में स्थित रह कर बिजलीघर की भाँति काम करते हैं, जहाँ से जीव मन तथा दश इन्द्रियों के द्वारा कार्य करने की शक्ति प्राप्त करता है। स्वयं भगवान् ही मन तथा इन्द्रियों के रूप में प्रकट होते हैं।

जीव अन्तर्यामी के द्वारा प्रकाशित इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करता है। वह शरीर और विषयों में आसक्त हो जाता है। वह सोचता है कि यह शरीर ही आत्मा है और इसको ही अपना स्वरूप मान लेता है। अहंकार के कारण वह जन्म-मृत्यु के अनन्त चक्र में फँस जाता है।

वह कर्म फल की इच्छा से कर्मेन्द्रियों से बहुत से काम कराता है और उनके अनुसार सुख-दुःख का अनुभव करता है।

वह कर्म-प्रवाह में पड़ कर उन कर्मों के परिणाम स्वरूप अनेक योनियों में घूमता हुआ अगणित कष्टों को भोगता है। वह प्रलय-पर्यन्त जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता रहता है।

प्रलय के समय अनादि और अनन्त काल द्रव्य एवं गुण-रूप इस व्यक्त सृष्टि को उसके मूल कारण माया, मूल प्रकृति अथवा अव्यक्त की ओर खींच लेता है।

उस समय सौ वर्षों तक वर्षा नहीं होती। सूर्य अपनी प्रखर किरणों से तीनों लोकों को तपा डालता है। पाताल लोक में संकर्षण के मुँह से निकली हुई अग्नि वायु की प्रेरणा से चारों दिशाओं में सम्पूर्ण वस्तुओं को भस्म कर डालती है।

इसके बाद सौ वर्षों तक बादल हाथी की सूँड के समान मोटी-मोटी धाराओं से जल-वृष्टि करते हैं और यह विराट् सृष्टि जल मग्न हो जाती है।

ब्रह्मा अव्यक्त अथवा मूल प्रकृति में लीन हो जाते हैं, जैसे ईंधन के समाप्त होने पर अग्नि बुझ जाती है।

वायु पृथ्वी के गुण गन्ध को खींच लेती है और पृथ्वी जल के रूप में हो जाती है। वायु जल के गुण रस को खींच लेती है और जल अग्नि में लीन हो जाता है। अग्नि का रूप छिन जाता है और वह वायु में लीन हो जाती है। वायु का गुण स्पर्श छिन जाता है और वह आकाश में लीन हो जाता है। आकाश का गुण छिन जाने से वह प्रकृति में लीन हो जाता है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि अपने अधिष्ठाता देवताओं के साथ अहंकार-तत्त्व में विलीन हो जाते हैं।

इस भांति भगवान् की यह माया जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाली हैं। यह त्रिगुणमयी है। राजन्! मैंने भगवान् की माया का वर्णन आपसे कर दिया है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?

प्रबुद्ध का उपदेश (माया के सन्तरण का उपाय)

राजा निमि ने पूछा हे महर्षि! जिसका मन नियन्त्रित नहीं है तथा जो स्थूल बुद्धि वाला है, वह इस माया को कैसे पार कर सकता है? अब आप कृपा करके मुझे यह बतलाइए।

योगीश्वर ने कहा: यदि तुम दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति करना चाहते हो तो देखो कि जो व्यक्ति विषय-परायण जीवन व्यतीत करता है, वह दुःख से छुटकारा पाने तथा आकांक्षित सुख प्राप्त करने में असफल होता है। धन मनुष्य को शाश्वत सुख नहीं प्रदान कर सकता। इसकी प्राप्ति में भी बड़ी कठिनाई है। यह सदा ही विपत्ति, कष्ट और दुःख ही लाता है। इसी भाँति घर, पुत्र, मित्र, सम्बन्धी, पशु आदि भी अनित्य होने से सुख-रूप नहीं हैं।

संसारी मनुष्य सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिए अपनी शक्ति को लगा देता है, परन्तु उसको अपने इस प्रयास में सदा दुःख और श्रम ही प्राप्त होते हैं; क्योंकि चिर अभिलषित सुख अनित्य एवं असत् है। वह अपने लिए तथा अपनी स्त्री और बच्चों के लिए सुख-साधन संचय करने में घोर परिश्रम करता है; परन्तु उन वस्तुओं के साथ ही उसका श्रम और उत्तरदायित्व भी बढ़ता जाता है और उसके फल-स्वरूप उसे क्षणिक अथवा विनश्वर सुख ही प्राप्त हो पाता है।

कर्म द्वारा प्राप्त होने वाले लोक भी नाशवान् ही हैं। वे परिवर्तनशील एवं विनश्वर हैं। इस लोक के पुण्य कर्मों द्वारा अर्जित स्वर्ग-सुख भी क्षणिक तथा विनश्वर है। उनमें भी दुःख का लेश विद्यमान है। जैसे राजा लोग अपने से अधिक शक्तिशाली दूसरे राजाओं से भय अथवा ईर्ष्या करते हैं वैसे ही जीव भी स्वर्ग में अपने कर्मों के सुख का उपभोग करता हुआ उन दूसरे जीवों से ईर्ष्या करता है जो कि उसके समान अथवा उससे अधिक सुख भोग रहे होते हैं। जब वह दूसरों को उनकी अवधि समाप्त होने पर स्वर्ग से पतित होते हुए देखता है तो उसे भय लग जाता है कि इसी भाँति एक दिन उसके भी वहाँ के आवास का अन्त होना है।

अतः आत्म-सुख-कामी बुद्धिमान् पुरुष को ऐसे गुरु की शरण लेनी चाहिए, जिसका मन पूर्ण शान्त हो, जो वेदों का पूर्ण ज्ञाता हो और परब्रह्म में स्थित हो।

वह गुरु की निष्कपट भाव से सावधानीपूर्वक सेवा करे तथा उसकी आज्ञा का पालन करे तथा उससे भागवत-धर्म की शिक्षा ग्रहण करे। वह अपने गुरु की अपने इष्टदेव के समान ही सेवा करे। यही भगवान् को प्रसन्न करने तथा उनकी कृपा प्राप्त करने के योग्य बनने का निश्चित साधन है।

वह अनासक्ति का अभ्यास करे तथा साधुओं की संगति करे। वह छोटों के प्रति दया, बराबर वालों से मित्रता तथा बड़ों का आदर करे। उसे अपने चित्त और शरीर को पवित्र रखना चाहिए। उसे अपने जीवन को दृढ़ नियमों से अनुशासित करना चाहिए। उसे अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। उसे क्षमाशील होना चाहिए तथा व्यर्थ की बकवास नहीं करनी चाहिए। वह वेदों का स्वाध्याय करे। वह सरलता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा का पालन करे तथा सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वों में समत्व-भाव रखे।

सर्वत्र आत्मा अथवा ईश्वर के दर्शन करो। सबमें ईश्वर की व्यापकता का अनुभव करो। अपने को सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त करो। अपने को घर के बन्धन में न डालो। जो सुगमता से मिल जाये, वही वस्त्र धारण करो। जो कुछ भी भोजन प्रारब्धवश मिल जाये, उसे ही ग्रहण करो। जो कुछ भी मिले, उसी से सन्तुष्ट रहो।

भागवत-शास्त्र में श्रद्धा रखो; परन्तु दूसरे शास्त्रों की निन्दा न करो। अपने मन, वाणी और कर्म पर नियन्त्रण रखो। सत्य बोलो। शान्त रहो। इन्द्रियों का नियन्त्रण करो।

भगवान् की लीलाओं, गुणों और अवतारों का श्रवण, कीर्तन और ध्यान करो। अपनी सारी चेष्टाएँ भगवान् के लिए ही करो। यज्ञ, दान, तप, जप, पुण्य कार्य और अपने स्त्री, पुत्र तथा अपना जीवन भी भगवान् को अर्पित कर दो।

जो भक्त भगवान् श्रीकृष्ण को ही अपना एकमात्र आश्रय मानते हैं, उनसे प्रेम करो। सभी चर-अचर प्राणियों में भगवान् को व्याप्त समझ कर उनकी पूजा करो तथा उन सन्तों की पूजा करो जिन्होंने भगवान् का साक्षात्कार कर लिया है।

भागवतों की संगति में भगवान् के गुणों का गायन करना तथा परस्पर प्रेम करना सीखो। भगवान् के गुणों की परस्पर चर्चा करो और एक-दूसरे को स्मरण कराओ, यहाँ तक कि उनकी चर्चा से तुम्हारा शरीर पुलकित हो जाये और उनके प्रेम में आत्म-विस्मृत हो नाचो और गाओ।

संसार से निवृत्त भगवद् भक्त भगवान् के चिन्तन में कभी रोते हैं और कभी हँसते हैं। वे कभी उनके विषय में बातें करते हैं तो कभी उनके गुणों का गायन करते हैं। भगवान् का साक्षात्कार कर वे मौन हो जाते हैं और दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं।

जो इस प्रकार भागवत-धर्म की शिक्षा ग्रहण करता है तथा श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उसका आचरण करता है, उसे भक्ति की प्राप्ति होती है और वह भगवद्-परायण हो जाता है। वह भगवान् की माया को आसानी से पार कर जाता है, अन्यथा इससे पार पाना कठिन है।

पिप्पलायन का उपदेश (नारायण का स्वरूप)

राजा निमि ने कहा : जिन परब्रह्म परमात्मा को नारायण के नाम से पुकारते हैं, उनका स्वरूप क्या है? कृपा करके मुझे बतलाइए।

पिप्पलायन जी ने कहा : नारायण ही इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण हैं। वे स्वयं कारण-रहित हैं। वे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति —— इन तीनों अवस्थाओं में तथा दूसरी अवस्थाओं में भी 'सत्' रूप में विद्यमान रहते हैं। वे ही शक्ति के आलय हैं, जहाँ से शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और प्राण अपने-अपने कार्य करने की शक्ति प्राप्त करते हैं और उनकी सत्ता से शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और प्राण सत्तावान् हो कर अपना-अपना काम करते हैं। हे राजन् ! उनको ही तुम नारायण समझो ।

उस परम तत्त्व में मन, वाणी, नेत्र, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियों की गति वैसे ही नहीं है जैसे कि चिनगारियों की गति उस अग्नि में नहीं होती, जिनसे वे निकलती हैं। ब्रह्म से प्रकट हुए वेद भी उसका पूर्ण एवं अपरोक्ष रूप से वर्णन नहीं कर पाते हैं। वे 'नेति नेति' के द्वारा ही ब्रह्म का बोध कराते हैं। यद्यपि वाणी ब्रह्म को जानने का साधन है और वह ब्रह्म का विवेचन भी करती है; परन्तु वह ब्रह्म को व्यक्त नहीं कर सकती, वह केवल अनुमान के द्वारा ही उसका निर्देश करती है। आत्मा की सत्ता तो माननी ही पड़ेगी; क्योंकि सत्ता के बिना निषेध सम्भव नहीं है।

ब्रह्म ही दृश्य है, कार्य तथा अदृश्य कारण के रूप में व्यक्त होता है और वह कार्य-कारण से परे भी है; क्योंकि उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। कार्य एवं कारण ब्रह्म की ही अभिव्यक्तियाँ हैं; क्योंकि अनन्त शक्ति-सम्पन्न परब्रह्म ही कार्य और कारण का भी परम कारण है। प्रारम्भ में सृष्टि से पूर्व केवल ब्रह्म-रूप प्रकृति या माया ही थी। वह त्रिगुणमयी (सत्त्व, रज और तम) बन गयी। वही क्रिया-प्रधान होने से सूत्रात्मा, ज्ञान-प्रधान होने से महत्तत्त्व तथा अहंकार से जीवात्मा बन गया । ब्रह्म ही इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देव, इन्द्रिय, विषय, सुख-दुःख तथा दूसरे रूपों में व्यक्त हो रहा है।

ब्रह्म न तो कभी जन्म लेता है और न ही मरता है। वह न तो बढ़ता है और न घटता ही है; क्योंकि वह सभी परिवर्तनशील पदार्थों की विभिन्न अवस्थाओं का साक्षी है। वह शरीर की जन्म, वृद्धि आदि अवस्थाओं का; क्षय, मृत्यु आदि विकारों का द्रष्टा तथा ज्ञाता है। वही एक चेतन स्वरूप बाल्यावस्था, युवावस्था आदि में रहता है।

वह अपरिवर्तनशील, अविनाशी, स्वयं-प्रकाश तथा शुद्ध चेतन है। वह देश, काल और वस्तु से अपरिच्छिन्न है तथा ज्ञान-स्वरूप है। प्राणों की भाँति ज्ञान एक ही होने पर भी इन्द्रियों के सहयोग से अनेक-सा मालूम पड़ता है।

जीव अण्डज, पिण्ड, उद्भिज्ज तथा स्वेदज, इनमें से किसी भी प्राणी-वर्ग में क्यों न हो, प्राण-शक्ति उसकी स्वप्न तथा जाग्रत अवस्थाओं में उसके साथ लगी रहती है; परन्तु सुषुप्ति में जब इन्द्रिय और अहंकार के कार्य-कलाप बन्द हो जाते हैं, तब जीव अपने निर्विकार सच्चिदानन्द-स्वरूप को ही प्राप्त होता है; क्योंकि उस अवस्था में राग, द्वेष आदि का आधार लिंग-शरीर नहीं रहता। निद्रा से उठ जाने के पश्चात् निद्रा-काल के सुख की अनुभूति की जो स्मृति बनी रहती है, वह आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करती है।

निद्रावस्था में जब इन्द्रियाँ और अहंकार निश्चेष्ट रहते हैं, तब जीव कूटस्थ ब्रह्म में निवास करता है। बहुधा यह कहा जाता है कि निद्रावस्था शून्यावस्था है; परन्तु यह भूल है। निद्रा से उठने पर मनुष्य प्रायः ऐसा कहता है, 'मैं सुख से सोया।' इससे यह प्रमाणित होता है कि सुषुप्ति- -अवस्था में कोई तत्त्व मूक साक्षी था, जिसने उस आनन्द का अनुभव किया; परन्तु उसे आनन्द के कारण का ज्ञान नहीं है । सुषुप्ति के अपने अनुभव से तुम सरलता से यह समझ सकते हो कि जीव का वास्तविक स्वरूप आनन्द ही है; परन्तु वह उसका अनुभव नहीं कर पाता, क्योंकि इन्द्रिय और मन उसे निरर्थक पदार्थों की खोज में भटकाते रहते हैं।

अहंकार का अथवा भगवान् से अलग होने का विचार ही सब दुःखों का कारण है। भगवान् से अलग होने का विचार भ्रम ही है। तुम्हें इस भ्रान्ति को दूर करना चाहिए। यदि अहंकार की भावना जाती रही तो तुम अपने वास्तविक दिव्य स्वरूप के आनन्द का अनुभव प्राप्त करोगे।

जब मनुष्य भगवान् के चरण-कमलों को प्राप्त करने की इच्छा से की हुई तीव्र भक्ति के द्वारा अपने चित्त के राग-द्वेषादि सारे मलों को नष्ट कर डालता है, तब उसे आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है जैसे कि निर्विकार नेत्रों से सूर्य का प्रकाश प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ता है।

आविर्होत्र का उपदेश (कर्म-योग)

राजा निमि ने कहा : आप हमें कर्म-योग का उपदेश कीजिए, जिसके द्वारा शुद्ध हो कर मनुष्य अति शीघ्र अपने को कर्म-बन्धन से मुक्त कर सके तथा उस आत्मज्ञान को प्राप्त कर सके जो कि परम नैष्कर्म्य के द्वारा ही प्राप्त होता है। इसके पूर्व यही प्रश्न मैंने अपने पिता महाराजा इक्ष्वाकु के सामने ब्रह्मा जी के पुत्र सनकादि ऋषियों से पूछा था; परन्तु उन्होंने उत्तर नहीं दिया। उनके चुप रहने का क्या कारण था? कृपा करके मुझे बतलाइए।

इस पर आविर्होत्र ने कहा: कर्म के तीन भेद हैं- (१) कर्म, (२) अर्कम तथा (३) विकर्म। ये विभाजन वेदों के अनुसार है। यह लौकिक व्यवस्था नहीं है। वेद ईश्वर-स्वरूप है। अतः इन आदेशों का पालन करना अनिवार्य है। यह वाद-विवाद का लौकिक विषय नहीं है। बड़े-बड़े विद्वान् भी इनके अभिप्राय का निर्णय करने में चकरा जाते हैं।

कर्म का विषय बहुत ही गहन एवं दार्शनिक है। उस समय तुम बच्चे ही थे, इससे तुम कर्म के सिद्धान्त एवं रहस्य को हृदयंगम न कर पाते; इसीलिए ब्रह्मकुमारों ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

वेदों में अपरिपक्व विचार वालों के लिए अनुशासन हैं। वेद परोक्षवादी हैं। उनका वास्तविक तात्पर्य उनके शब्दों से प्रकट होने वाले अर्थ से भिन्न है। जैसे पिता बालक को मिठाई आदि का प्रलोभन दे कर कड़वी औषधि खिलाता है, वैसे ही वेद भी स्वर्गादि का प्रलोभन दे कर जीव को श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त करता है। कर्तव्य कर्मों का विधान मनुष्य को कर्म-फल से मुक्त करने के लिए औषधि के समान ही है।

जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं किया है और जो वेदोक्त कर्मों के करने में उपेक्षा करता है, वह अज्ञानी व्यक्ति विहित कर्मों का आचरण न करने के कारण विकर्म-रूप अधर्म ही करता है और बार-बार जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता रहता है।

फल की अभिलाषा को छोड़ कर जो वेदोक्त कर्मों का ही अनुष्ठान करता है और अपने उन कर्मों को तथा उनके फल को भगवान् को समर्पित कर देता है, उसे नैष्कर्म्य अवस्था प्राप्त होती है, जिसमें कर्म और उसके फल उसे प्रभावित नहीं करते। वेदों में जो कर्म-फल का वर्णन है, वह तो मनुष्य की कर्म में रुचि उत्पन्न करने तथा उसे कर्म में नियोजित करने के अभिप्राय से है।

जो पुरुष अविद्या, अहंकार, वासना और कर्म-रूप हृदय-ग्रन्थि को शीघ्र काटना चाहता है, उसे चाहिए कि वैदिक पद्धति के साथ, तान्त्रिक पद्धति से भी भगवान् की आराधना करे।

पहले उसे गुरु की कृपा प्राप्त करनी चाहिए तथा उनके द्वारा उपनिष्ट पूजा-विधि का अनुसरण करना चाहिए, तब भगवान् की जो मूर्ति उसे बहुत प्रिय हो, उसी के द्वारा परम पुरुष की आराधना करनी चाहिए।

पवित्र हो कर वह भगवान् की मूर्ति के सामने बैठे और प्राणायाम तथा अन्य क्रियाओं के द्वारा शरीरादि की शुद्धि करे और तब भगवान् की पूजा करे।

वह पुरुष तथा पूजा की अन्य सामग्री को, पृथ्वी को, मूर्ति को तथा अपने-आपको पवित्र करे। वह आसन पर जल छिड़के और फिर जो कुछ भी सामग्री प्राप्त है, उसी से भगवान् पूजा करे।

वह पाद्य, अर्घ्य आदि जल-पात्रों को स्थापित करे। वह चरण धोना तथा आचमन के लिए जल देने आदि की प्रारम्भिक पूजा करे। तदनन्तर मुख्य मन्त्र के द्वारा हृदय में जिस रूप का ध्यान किया था, उसे मूर्ति में आरोपित करे।

उसे पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण आदि समर्पित करते हुए भगवान् की पूजा करनी चाहिए। वह भगवान् को चन्दन, पुष्प, अक्षत, माला, धूप, दीप, नैवेद्य अर्पित करे। वह भगवान् की स्तुति करे और उनको साष्टांग नमस्कार करे।

वह अपने को भगवन्मय ध्यान करते हुए भगवान् के विग्रह का पूजन करे। वह निर्माल्य को अपने शिर पर रखे और भगवान् की मूर्ति को यथास्थान रख कर पूजा करके पूजा को समाप्त करे। अन्त में वह ऐसा ध्यान करे कि भगवान् स्वधाम में विश्राम कर रहे हैं।

जो पुरुष इस प्रकार अग्नि, सूर्य, जल, अतिथि और अपने हृदय में विद्यमान मान कर उनकी पूजा करता है, वह शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

द्रुमिल का उपदेश (अवतार-कथा)

राजा निमि ने कहा : हे योगीश्वर! भगवान् के भूत, वर्तमान तथा भविष्य के विभिन्न अवतारों का कृपा करके वर्णन कीजिए। कृपा करके भगवान् की उन लीलाओं का वर्णन कीजिए, जो स्वेच्छा से ग्रहण किये हुए विविध अवतारों में उन्होंने की, कर रहे हैं और आगे करेंगे।

द्रुमिल ने कहा : जो भगवान् के अनन्त गुणों की गणना चाहता है, वह बुद्धिमान् नहीं है। वह बालक के समान ही अबोध है। यह सम्भव हो सकता है कि कोई बहुत दिनों तक प्रयास के बाद पृथ्वी के धूलिकणों की गणना कर ले; परन्तु अखिल शक्ति के आश्रय भगवान् के दिव्य गुणों को गिन सकना सम्भव नहीं है।

आदि देव नारायण ने अपने-आपसे निर्मित पाँच भूतों के द्वारा विराट् शरीर ब्रह्माण्ड का निर्माण किया और अपने अंश से उसमें प्रवेश कर गये। तब वे 'पुरुष' कहलाये।

तीनों लोक उनका शरीर है। उनकी ही इन्द्रियों से सबकी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ बनी हैं। वे ही अवलम्ब हैं, जिनसे समस्त जीवधारियों की ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ अपने कर्म में समर्थ होती हैं। वे स्वतः ज्ञान-स्वरूप हैं। उनसे ही समस्त ओज और शक्ति का संचार होता है। उनका श्वास जगत् के ओज और क्रिया-शक्ति का स्रोत है। वे ही सत्त्व, रज और तम के द्वारा इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के आदि प्रवर्तक हैं।

पहले-पहल वे प्रथम पुरुष जगत् की उत्पत्ति के लिए रजोगुण के अंश से ब्रह्मा । वे इसकी स्थिति के लिए अपने सत्त्वगुण के अंश से विष्णु बने। विष्णु ही यज्ञपति हुए। हैं। वे धर्म और ब्राह्मणों के रक्षक हैं। वे इस जगत् के लिए अपने तमोगुण के अंश से रुद्र बने। यही प्रजा की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का निरन्तर प्रवाह है।

भगवान् ने ऋषिश्रेष्ठ शान्तात्मा 'नर' और 'नारायण' के रूप में अवतार लिया। वे दक्ष की कन्या तथा धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ से उत्पन्न हुए। लोगों को निष्काम कर्म की शिक्षा उपदेश तथा आदर्श के द्वारा देना तथा कर्म बन्धन से छुड़ाने वाले आत्म-तत्त्व को समझाना ही उनके अवतार ग्रहण का उद्देश्य था। वे अब भी तपस्या कर रहे हैं। तीनों लोकों के ऋषि-मुनि उनकी वन्दना करते हैं।

जब इन्द्र को यह पता चला कि 'नारायण' बदरिकाश्रम में उग्र तपस्या कर रहे हैं, तब वह बहुत ही भयभीत हुआ। उसने सोचा कि नारायण इस उच्च पद को प्राप्त करना चाहते हैं । इन्द्र को नारायण ऋषि की महिमा का पता न था। उसने उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए कामदेव को उनके साथी वसन्त, शीतल वायु तथा अप्सराओं के साथ भेजा। कामदेव के बाणों तथा अप्सराओं के कटाक्षों की मुनि पर वर्षा होने लगी।

नारायण ऋषि को यह पता चल गया कि यह इन्द्र की ही करतूत है। उन्होंने भय से काँपते हुए काम, वायु और अप्सराओं से मुस्करा कर कहा : भय का कोई कारण नहीं है। आप मानवीय अतिथि हैं। आपने हमारी सूनी कुटिया को पवित्र कर दिया है, अतः हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए। हमारी कुटिया के जीवन को धन्य बनाइए।

राजन्! जब भगवान् ने उन्हें अभयदान देते हुए इस प्रकार कहा, तब देवताओं के शिर लज्जा से झुक गये। उन्होंने नारायण से कहा : प्रभो! हम लोगों पर आपकी यह कृपा कोई असाधारण बात नहीं है। आप माया से परे हैं। आपके चरण-कमलों की बड़े-बड़े आत्माराम ऋषि-मुनि वन्दना करते रहते हैं।

देवताओं ने कहा जो लोग आपका भजन करते हैं, उन्हें देवताओं द्वारा उपस्थित की हुई बहुत-सी बाधाओं का सामना करना पड़ता है; क्योंकि वे आपके परम पद को प्राप्त करने के लिए देवलोक का उल्लंघन करना चाहते हैं।

परन्तु जो लोग यज्ञादि के द्वारा देवताओं को उनका भाग देते रहते हैं, वे उनके मार्ग में विघ्न नहीं डालते। यदि आप अपने भक्त की रक्षा करना चाहते हैं तो आप सारे विघ्नों को दूर कर देते हैं। आपके भक्त आपकी कृपा से सुरक्षित रहते हैं और वे देवताओं द्वारा उपस्थित की हुई सारी विघ्न-बाधाओं को पार कर जाते हैं।

कुछ लोग भूख-प्यास, गर्मी सर्दी तथा रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के आवेगों को, जो समुद्र के समान हैं, झेल लेते हैं; परन्तु वे व्यर्थ के क्रोध के वश में आ जाते हैं, जो गाय के खुर से बने गड्ढे के समान है। वे अपनी कठिन तपस्या को खो बैठते हैं।

जब वे इस प्रकार भगवान् की स्तुति कर रहे थे, तब नारायण ने उनके आतिथ्य सेवा के लिए सौन्दर्यमयी तथा वस्त्रालंकारों से सुसज्जित बहुत-सी स्त्रियाँ प्रकट कर दीं। वे उनका मार्ग-मर्दन करना चाहते थे।

इन लक्ष्मी जी के समान रूपवती स्त्रियों के सम्मुख अप्सराओं की मुखश्री मन्द पड़ गयी। वे उनकी आभा तथा सुगन्ध से मोहित हो गये। तब देवदेवेश भगवान् नारायण ने मुस्कराते हुए उन विनत देवताओं से कहा तुम इनमें से एक को स्वर्ग के आभूषण-स्वरूप चुन लो, जो तुम्हारे अनुरूप हो।

देवों ने उनकी आज्ञा का पालन किया। उन्होंने भगवान् को मौन नमस्कार किया और उनकी पूजा की। उन्होंने उन अप्सराओं में से सर्वश्रेष्ठ 'उर्वशी' को चुना और उसके साथ स्वर्ग लोक को वापस चले गये।

वहाँ उन्होंने इन्द्र को नमस्कार किया और भगवान् नारायण के बल का वर्णन किया। सभी देवताओं ने इसे ध्यान से सुना। जब इन्द्र ने यह सब सुना, तो वे भयभीत और चकित हो काँपने लगे।

भगवान् ने हंस-रूप में अवतीर्ण हो सनकादि को ज्ञानयोग का उपदेश किया। दत्तात्रेय के रूप में अवतीर्ण हो महाराज यदु को उपदेश किया। फिर उन्होंने ही कुमार-रूप में अवतीर्ण हो कर नारद जी को आत्म-ज्ञान का उपदेश किया। वे हमारे पिता ऋषभ के रूप में अवतीर्ण हुए। संसार के कल्याण के लिए उन्होंने पुनः हयग्रीव-रूप से अवतार लिया। उन्होंने मधु-दैत्य का संहार कर वेदों का उद्धार किया, जिन्हें वह चुरा ले गया था।

मत्स्यावतार में उन्होंने मनु, इला और औषधियों की रक्षा की। वाराह अवतार ग्रहण करके पृथ्वी का रसातल से उद्धार करते समय हिरण्याक्ष का संहार किया। कूर्मावतार ग्रहण कर उन्होंने देवताओं और असुरों के अमृत-मन्थन के समय अपनी पीठ पर मन्दराचल पर्वत को धारण किया। उन्होंने आर्त गजेन्द्र को ग्राह से छुड़ाया।

उन्होंने समुद्र में डूबते हुए बालखिल्य ऋषि का उद्धार किया। वृत्रासुर को मारने के कारण लगी हुई ब्रह्महत्या से इन्द्र को बचाया। असुरों के यहाँ बन्दी बनी हुई बेचारी देवांगनाओं को उन्होंने छुड़ाया। हिरण्यकश्यप का संहार करने तथा देवताओं को कारावास से छुड़ाने के लिए उन्होंने नृसिंह अवतार ग्रहण किया।

उन्होंने देवताओं के लिए दैत्यासुर संग्राम में दैत्यपतियों का संहार किया। उन्होंने मन्वन्तरों में अनेकों कलावतार धारण करके त्रिभुवन की रक्षा की। फिर उन्होंने वामन अवतार ग्रहण कर, याचना के बहाने दैत्यराज बलि से इस पृथ्वी को ले कर अदिति के पुत्र देवताओं को दे दिया।

हैहयवंशी क्षत्रियों के विनाश के लिए भृगुवंश में अग्नि के समान उन्होंने परशुराम का अवतार ग्रहण किया। उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-रहित बना डाला। उन्होंने सीतापति राम का अवतार लिया और समुद्र में पुल बाँध कर लंकापति दशशीर्ष रावण का संहार किया। उनके नाम का स्मरण मात्र ही लोगों के मल को नष्ट करने वाला है।

इसके अनन्तर वे पृथ्वी का भार उतारने के लिए यदुवंश में जन्म लेंगे। वे ऐसे बहुत से कार्य करेंगे, जिन्हें देवता भी नहीं कर सकते। वे ही भगवान् बुद्ध के रूप में उन लोगों को अपने वाद-विवाद से मोहित कर लेंगे, जो कि यज्ञ के अधिकारी न होते हुए भी यज्ञ करते हैं, तब वे कलियुग के अन्त में कल्कि अवतार ले कर शूद्र राजाओं का वध करेंगे।

हे महाबाहु राजन्! भगवान् नारायण के ऐसे अनेक जन्मों और कर्मों का वर्णन किया गया है।

चमस का उपदेश

राजा ने कहा : हे योगीश्वरो! आप श्रेष्ठ आत्मज्ञानी हैं। कृपा करके बतलाइए कि जो भगवान् का भजन नहीं करते, जिनकी कामनाएँ अनन्त हैं तथा मन और इन्द्रियाँ भी जिनके वश में नहीं हैं, ऐसे लोगों की क्या गति होती है ?

चमस ने कहा : चारों वर्ण और चारों आश्रम अपने विशेष गुणों के साथ विराट् पुरुष के चार अंग मुख, भुजा, जघा और चरण से उत्पन्न हुए। सत्त्व, रज और तम आदि गुणों की प्रधानता के अनुसार मन के शान्ति आदि लक्षणों के अनुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में उनका विभाजन हुआ।

इन चारों वर्णों और आश्रमों में रहने वाले जो मनुष्य भगवान् का, अपने जन्मदाता का ही भजन नहीं करते हैं, वे अपने स्थान से अधः पतित हो कर नरक में जाते हैं।

स्त्री-शूद्रादि बहुत से लोग भगवान् की कथा सुनने और उनके गुणानुवाद के कीर्तन से बहुत दूर हो गये हैं। वे तुम्हारे जैसे भगवद् भक्तों की दया के पात्र हैं। तुम्हारे जैसे राजाओं को उनके लिए भी आवश्यक सुविधा प्रदान करनी चाहिए, जिससे वे भी मोक्ष प्राप्त कर सकें।

यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जन्म से, यज्ञोपवीत संस्कार से तथा वेदाध्ययन से भगवान् के चरणों तक पहुँच सकते हैं; तथापि वे वेदों के अर्थवाद में, उनमें वर्णित बहुत से विनश्वर भोगों में मोहित हो जाते हैं।

वेद - विहित कर्मों के रहस्य का उन्हें ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है। वे अपने को पण्डित मान कर अभिमान करने लग जाते हैं; परन्तु वे वास्तव में वे होते हैं पूर्ण अज्ञानी ही। वे निरर्थक बातों में और साधारण से विषयों के व्यर्थ वितण्डावाद में फँसे रहते हैं। वेदों के कर्मकाण्ड में कर्म फल का वर्णन है, जो कि वास्तव में विनाशशील है। वे उनकी शब्द-माधुरी से प्रलुब्ध हो जाते हैं।

जिनमें रजोगुण की अधिकता होती है, वे क्रूर होते हैं। वे कामुक होते हैं और विषय-भोग में ही लिप्त रहते हैं। वे सर्प की भाँति प्रतिशोध लेते हैं। उनमें दम्भ और अभिमान होता है। वे भगवद् भक्तों का उपहास करते रहते हैं।

वे विषय-परायण जीवन व्यतीत करते हैं। वे स्त्रैण होते हैं और स्त्रियों की ही उपासना करते हैं। वे अपने ही विषय की परस्पर चर्चा करते हैं। वे अन्न-दान अथवा गुरु-दक्षिणा दिये बिना ही यज्ञ करते हैं और उसकी विधि का पालन नहीं करते हैं। यज्ञ का रहस्य समझे बिना ही वे यज्ञानुष्ठान करते हैं। वे अपनी क्षुधा तथा रसना को तुष्ट करने के लिए पशुओं की हत्या करते हैं। वे इसके परिणाम को नहीं जानते हैं।

वे दुष्ट धन, , वैभव, कुलीनता, विद्या, दान, सौन्दर्य, बल और कार्य क्षमता के मद से फूल जाते हैं। वे घमण्ड से अन्धे हो कर भगवान् तथा उनके भक्तों का अपमान करते हैं।

वेदों में सर्वान्तर्यामी तथा आकाशवत् सर्वव्यापी भगवान् के ऐश्वर्य का वर्णन है; परन्तु वे मूर्ख वेदों की वाणी पर ध्यान ही नहीं देते। वे वेदों के वास्तविक तात्पर्य को समझ नहीं पाते और उनके मन्त्रों को अपने उद्देश्य, इच्छा और कल्पना के अनुसार तोड़ते-मरोड़ते हैं तथा अपनी उद्देश्य-सिद्धि के लिए उनका अपने ढंग से अर्थ निकालते हैं।

मैथुन, मांस और मद्य की ओर मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उसमें प्रवृत्त करने का कोई विधान नहीं है। विवाह और यज्ञ के द्वारा शास्त्रों ने उन पर नियन्त्रण ही किया है। यद्यपि विवाहित होने पर स्त्री-भोग, यज्ञ में पशु-वध तथा सौत्रामणी-यज्ञ में मद्यपान की व्यवस्था शास्त्रों ने की है; परन्तु उनका वास्तविक उद्देश्य लोगों को इनमें प्रवृत्त कराना नहीं, वरन् लोगों को उनसे पराङ्मुख करना ही है। मन को इनसे एकाएक अलग कर सकना सम्भव नहीं है; इसीलिए शास्त्र यज्ञ में मांस भक्षण तथा सौत्रामणी-यज्ञ में मद्य सेवन की अनुमति देते हैं।

लोग यह नहीं जानते कि धन का एकमात्र समुचित उपयोग है धर्मार्जन करना तथा उस धर्म के द्वारा ज्ञान और शान्ति प्राप्त करना। लोग अपने धन को स्वार्थों में या काम-भोग में ही नष्ट करते हैं। वे यह नहीं देखते कि वे किसी भी क्षण मृत्यु के शिकार हो सकते हैं, जो उनके शिर पर मँडरा रही है।

विशेष कार्यों में सुरा का सूँघना विहित है, पीने का नहीं। यज्ञ में पशु के आलभन का विधान है, हिंसा का नहीं। शास्त्रों में मांसभक्षण की अनुमति नहीं है। सन्तान उत्पन्न करने के लिए ऋतु-काल में अपनी धर्म-पत्नी से सम्भोग करने की आज्ञा है, विषय-भोग के लिए नहीं। परन्तु लोग अपने इस विशुद्ध धर्म को जानते ही नहीं।

वे अज्ञानी, दुष्ट तथा अभिमानी लोग अपनी जिह्वा की तुष्टि के लिए जिन पशुओं की हत्या करते हैं, वे ही पशु नरक में उनका भक्षण करते हैं।

वे अपने तथा अपने बाल-बच्चों के शरीर से आसक्त रहते हैं; परन्तु दूसरे शरीरों में रहने वाले अपने ही आत्मा एवं सर्वान्तर्यामी भगवान् से द्वेष करते हैं; अतः वे घोर नरक में पड़ते हैं।

जिन लोगों ने आत्मज्ञान प्राप्त नहीं किया है और जिनकी धर्म, अर्थ तथा काम में ही श्रद्धा है और जो यह सोचते हैं कि शरीरादि शाश्वत हैं, वे अपनी ही आत्मा का हनन करते हैं।

वे विषय-भोगों में रत रहते हैं। उनकी कामनाएँ कभी भी शान्त नहीं होतीं। वे अपनी ही आत्मा का हनन करते और अज्ञान को ही ज्ञान मानते हैं। अन्त में अपनी ही अभिलाषाओं में निराश होते हैं। उनकी आशाएँ भग्न हो जाती हैं और असफल होने पर वे दुःखी होते हैं।

जो लोग भगवान् वासुदेव से विमुख हैं, कामनाओं के वर्तमान होते हुए भी काल उन्हें अकस्मात् ही उनके परिवार से छीन ले जाता है। घर, बच्चे, मित्र और सम्पत्ति को, जिन्हें वे इतने श्रम और कष्ट से एकत्रित करते हैं, विवश हो कर यहीं छोड़ जाना पड़ता है। न चाहते हुए भी वे बलात् अन्धकारमय नरक में ढकेल दिये जाते हैं।

करभाजन का उपदेश

राजा निमि ने कहा : भिन्न-भिन्न युगों में किन-किन नाम, रूप तथा विधियों से भगवान् की उपासना की जाती है ? कृपा करके मुझे वही बताइए ।

करभाजन ने कहा : सत्य (कृत), त्रेता, द्वापर और कलि-इन चारों युगों में भगवान् के रंग, नाम, आकार और आश्रम भिन्न-भिन्न होने से उनकी उपासना भी विभिन्न विधियों से की जाती है।

सत्ययुग में भगवान् का रंग श्वेत होता है। उनके चार भुजाएँ होती हैं तथा वे जटा, वल्कल-वस्त्र, मृगचर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्ष की माला, दण्ड और कमण्डलु धारण करते हैं।

उस युग में मनुष्य शान्त होते हैं, उनमें वैरभाव अथवा घृणा नहीं होती। सब मित्र और समान होते हैं। वे तपस्या, ध्यान तथा मन और इन्द्रियों के निग्रह द्वारा भगवान् की आराधना करते हैं।

उस युग में हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त, परमात्मा आदि नामों के द्वारा भगवान् का गायन किया जाता है।

त्रेता युग में भगवान् का रंग लाल होता है। उनके चार भुजाएँ होती हैं। वे तीन मेखला धारण करते हैं तथा उनके ललाट पर स्वर्णिम केश की लटें होती हैं। सम्पूर्ण वेदों के सार-रूप भगवान् साक्षात् यज्ञ-स्वरूप रहते हैं। यज्ञ-रूप में ही उनकी आराधना होती है और मुक, खुवा आदि चिह्नों को धारण करते हैं।

उस युग में मनुष्य धर्मनिष्ठ होते हैं और वेदों का पठन-पाठन करते हैं। वे सब वेदों में उनकी सत्ता मान कर यज्ञ द्वारा उनकी आराधना करते हैं।

इस युग में भगवान् विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त और उरुगाय आदि नामों से भगवान् का गायन किया जाता है।

द्वापर युग में भगवान् का रंग श्याम होता है। वे पीताम्बर वस्त्र तथा आयुध धारण करते हैं और श्रीवत्स आदि चिह्नों से पहचाने जाते हैं।

राजन्! इस युग में भगवान् का साक्षात्कार करने के अभिलाषी मनुष्य वैदिक एवं तान्त्रिक विधियों से परम पुरुष के रूप में उनकी आराधना करते हैं।

हे वासुदेव जी! संकर्षण! हम आपको नमस्कार करते हैं। भगवान् प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को हम नमस्कार करते हैं। ऋषि नारायण, महात्मा नर, विश्वेश्वर, विश्वरूप और सर्वभूतात्मा भगवान् को हम नमस्कार करते हैं। हे राजन् ! द्वापर युग में इस प्रकार मनुष्य जगदीश्वर भगवान् की स्तुति करते हैं।

कलियुग में लोग तन्त्रों के अनेक विधि-विधान से भगवान् की जैसी पूजा करते हैं, उसे सुनो। भगवान् का श्रीविग्रह जो कृष्ण वर्ण, कान्तिवान् तथा सर्वांगीण सुन्दर है, जो आभूषणों से अलंकृत, आयुधों से सुसज्जित तथा पार्षदों से सुसेवित है, उसी रूप की बुद्धिमान् पुरुष स्तुति तथा उपासना करते हैं।

हे महापुरुष! आप शरणागत के रक्षक हैं। आपके चरणारविन्द सदा ध्यान करने योग्य हैं। वे समस्त संकटों का निवारण करते तथा समस्त अभीष्ट पदार्थों को देने वाले हैं। वे तीर्थ-स्वरूप हैं। शिव और ब्रह्मा उनको नमस्कार करते हैं। वे ही आश्रय लेने योग्य हैं। वे भक्तों की समस्त विपत्तियों का विनाश करते हैं और संसार सागर में नौका के समान हैं। मैं आपके उन चरण-कमलों को नमस्कार करता हूँ।

हे महापुरुष! आप महान् धर्मनिष्ठ हैं। आप पिता के वचन मात्र से देवताओं के लिए भी वांछनीय और दुस्त्यज्य राज्यलक्ष्मी का परित्याग कर वन में चले गये और वहाँ अपनी प्रियतमा सीता जी की प्रार्थना पर आपने मायामृग का पीछा किया। मैं आपके चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ।

राजन्! इस भाँति विभिन्न युगों में भक्त गण अपने युग-विशेष के अनुरूप पूर्वोक्त विधि से सम्पूर्ण पुरुषार्थों के स्वामी भगवान् हरि की आराधना करते हैं।

विभिन्न युगों के गुणों को जानने वाले ज्ञानी जन कलियुग को श्रेष्ठ मानते हैं; क्योंकि इस युग में भगवन्नामोच्चारण मात्र से ही, उनके गुणों के गायन मात्र से ही मनुष्य को आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है।

जीव जन्म-मृत्यु के अनन्त पथ में भटक रहे हैं। उनके लिए आत्म-साक्षात्कार से बढ़ कर अन्य कोई लाभ नहीं है; क्योंकि यही शाश्वत शान्ति तथा संसार-शृंखला से मुक्ति प्रदान करता है।

कृतयुग की प्रजा कलियुग में जन्म लेना चाहती है; क्योंकि भगवान् हरि के नाम-कीर्तन से ही वे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, अतः नारायण के बहुत से भक्त कलियुग में उत्पन्न होंगे।

राजन्! द्रविड़ देश में नारायण के बहुत से भक्त हैं, क्योंकि इस देश में ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी, प्रतीची, महानदी आदि सरिताएँ बहती हैं। जो इन नदियों का जल पान करते हैं, वे प्रायः भगवान् वासुदेव के भक्त हो जाते हैं।

हे राजा निमि! सम्पूर्ण कर्मों का परित्याग कर जिसने शरीर, मन और हृदय से शरणागतवत्सल भगवान् के चरणों की शरण ले ली है, वह देवताओं, ऋषियों, पितरों, अन्य प्राणियों तथा अतिथियों का न तो दास रहता है और न उनका ऋणी ही।

यदि कोई प्रेमी भक्त अन्य सम्पूर्ण पदार्थों के प्रति आसक्ति तथा कामनाओं का परित्याग कर भगवान् के चरणों की शरण लेता है, यदि वह संयोगवश, अविचार अथवा अन्य कारणों से कोई पाप कर बैठता है अथवा वह कोई निषिद्ध कर्म कर डालता है तो उसके हृदय में विराजमान भगवान् हरि अपने प्रेमी भक्त को उन सम्पूर्ण पापों से बचा लेते हैं जो उससे दैवात् हो गया हो ।

नारद जी ने कहा वसुदेव जी नौ योगीश्वरों से इस प्रकार भागवत धर्म को सुन कर राजा निमि ने अपने ऋत्विजों तथा यज्ञ में उपस्थित अन्य लोगों के साथ योगीश्वरों की पूजा की।

योगीश्वर सबके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। राजा ने उनके उपदेशों का अनुपालन किया और परम गति प्राप्त की।

यदि तुम भी पूर्वोक्त भागवत-धर्म का श्रद्धापूर्वक आचरण करोगे और सब प्रकार की आसक्ति से रहित हो अपना जीवन व्यतीत करोगे, तो तुम भी परम पद को प्राप्त कर लोगे।

'वसुदेव जी। तुम और देवकी—दोनों ही अमर फल को प्राप्त किये हुए हो.. क्योंकि भगवान् कृष्ण तुम्हारे पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए हैं।

तुम लोगों ने श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य-स्नेह रख कर भगवान् के दर्शन, आलिंगन, बातचीत करने, एक-साथ सोने, बैठने, खिलाने आदि से अपने को शुद्ध तथा पवित्र कर लिया है।

जब शिशुपाल, पौण्ड्रक, शाल्व आदि ने सोते, बैठते, खाते, पीते समय घृणा-भाव से ही श्रीकृष्ण का स्मरण करने से सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर ली, तो जो सदा ही उनसे प्रेम करते हैं, उनके विषय में फिर कहना ही क्या है !

तुम श्रीकृष्ण को अपना पुत्र न समझो। वे सर्वात्मा, सर्वेश्वर तथा अविनाशी हैं। स्वेच्छा से धारण किये हुए मनुष्य रूप में उन्होंने अपने दिव्य स्वरूप को छिपा रखा है।

असुर राजा पृथ्वी का भार बन चुके थे। उनका संहार करने तथा सन्तों की रक्षा करने के लिए ही वे अवतीर्ण हुए। वे अपनी शक्ति को छिपा कर मानव-लीला कर रहें हैं। लोगों को मुक्त करने से उनकी कीर्ति सारे संसार में फैल रही है।

नौ योगीश्वरों का यह उपदेश, जिसे नारद जी ने वर्णन किया था, जो कोई श्रद्धा और प्रेम से पढ़ेगा और जो यह पवित्र इतिहास स्मरण करेगा, उसके सारे पाप दूर जायेंगे, उसका चित्त शुद्ध हो जायेगा और उसे परमानन्द की प्राप्ति होगी। वह संसार से मुक्त हो जायेगा। वह ब्रह्म-पद को प्राप्त कर लेगा ।

।। ॐ तत्सत् ॥